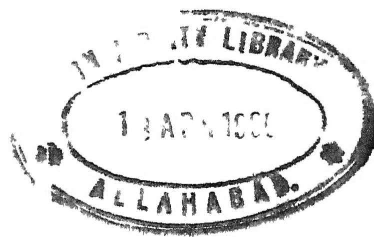
जाति-विज्ञान का आधार



हिन्दी-समिति-ग्रन्थमाला—२३

जाति-विज्ञान का आधार

लेखक

लेफ्टनेंट कर्नल जी० आर० गेयर, एम० ए०, डी० लिट०

अनुवादक

विनोदचन्द्र मिश्र, एम० ए०



प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग

उत्तर प्रदेश

प्रथम संस्करण
१९५८

मूल्य
सात रुपये

मुद्रक
सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग

प्रकाशकीय

भारत की राजभाषा के रूप में हिन्दी की प्रतिष्ठा के पश्चात् यद्यपि इस देश के प्रत्येक जन पर उसकी समृद्धि का दायित्व है, किन्तु इससे हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रों के विशेष उत्तरदायित्व में किसी प्रकार की कमी नहीं आती। हमें संविधान में निर्धारित अवधि के भीतर हिन्दी को न केवल सभी राजकार्यों में व्यवहृत करना है, वरन् उसे उच्चतम शिक्षा के माध्यम के लिए भी परिपुष्ट बनाना है। इसके लिए अपेक्षा है कि हिन्दी में वाङ्मय के सभी अवयवों पर प्रामाणिक ग्रन्थ हों और यदि कोई व्यक्ति केवल हिन्दी के माध्यम से ज्ञानार्जन करना चाहे तो उसका मार्ग अवरुद्ध न रह जाय।

इसी भावना से प्रेरित होकर उत्तर प्रदेश शासन ने हिन्दीसमिति के तत्त्वावधान में हिन्दी वाङ्मय के सभी अंगों पर ३०० ग्रन्थों के प्रणयन एवं प्रकाशन के लिए एक योजना परिचालित की है। यह प्रसन्नता का विषय है कि देश के बहुश्रुत विद्वानों का सहयोग इस सत्प्रयास में समिति को प्राप्त हुआ है, जिसके परिणाम-स्वरूप थोड़े समय में ही विभिन्न विषयों पर बाईस ग्रन्थ प्रकाशित किये जा चुके हैं। देश की हिन्दी-भाषी जनता एवं पत्र-पत्रिकाओं से हमें इस दिशा में पर्याप्त प्रोत्साहन मिला है जिससे हमें इस उपक्रम की सफलता पर विश्वास होने लगा है।

प्रस्तुत ग्रन्थ हिन्दीसमिति ग्रन्थमाला का २३वाँ पुष्प है। कई वर्षों के अध्ययन और परिश्रम के बाद इसकी रचना की गयी है। यद्यपि इसका विषय किञ्चित् जटिल है, फिर भी उसे, विभिन्न उदाहरणों और चित्रों की सहायता से, यथासंभव सरल भाषा में समझाने का प्रयत्न किया गया है। संसार में मानव की विभिन्न जातियों—काकेशियन, मंगोलियन, यूथोपियन आदि—का वर्गीकरण किस आधार पर किया गया है, उनकी क्या क्या विशेषताएँ हैं, जननिक विभिन्नता के क्या कारण हैं, जातिगत गुणों पर परिस्थितियों का कहाँ तक प्रभाव पड़ता है और पित्रागति से उनका क्या सम्बन्ध है, आदि विषयों की चर्चा इसमें की गयी है। इन विषयों की अनेक पुस्तकें अंग्रेजी, फ्रेंच तथा अन्य यूरोपीय भाषाओं में विद्यमान हैं। पश्चिमी देशों में इस सम्बन्ध में प्रचुर अनुसन्धान कार्य भी हुआ है। भारत में तो अभी इसके लिए विस्तृत क्षेत्र पड़ा हुआ है। इसी से हिन्दीसमिति ने लेखक से आग्रह कर, जब वे सागर विश्व-

विद्यालय में मानव-विज्ञान के प्राध्यापक थे, यह पुस्तक लिखायी थी। उन्होंने इसे अंग्रेजी में लिखा था जिसका अनुवाद श्री विनोदचन्द्र मिश्र ने किया है। हमें आशा है कि "मानव के जातिगत गुणों की जाति-वैज्ञानिक व्याख्या" के रूप में यह हिन्दी के पाठकों के लिए अत्यन्त उपयोगी प्रमाणित होगी।

भगवतीशरण सिंह
सचिव, हिन्दीसमिति

प्राक्कथन

इस पुस्तक की रचना में अनेक वर्ष लगे हैं। जहाँ तक मुझे स्मरण है, मैं जाति-विज्ञान[1] का विद्यार्थी उस समय से रहा हूँ जब कि मैं तरुणावस्था में ही इस विषय पर व्याख्यान देने की धृष्टता किया करता था। इसकी नींव उस समय पड़ी जब मैं अपनी रुचि के अनुसार ब्रिटेन के और सब विश्वविद्यालयों को छोड़कर दक्षिण से एडिनबर्ग विश्वविद्यालय गया तथा वहाँ पर मैंने प्रोफ़ेसर गार्डन चाइल्ड के निरीक्षण में प्राग्-इतिहास का, प्रोफ़ेसर जेहू, डा० राबर्ट कैम्पबेल तथा फिनले के निरीक्षण में भूगर्भशास्त्र एवं निर्वंश-जीवविज्ञान का और प्रोफ़ेसर आर्थर राबिन्सन से कुछ शरीर-रचना-शास्त्र का तथा प्रोफ़ेसर एलेन आगिल्वी से भूगोल का अध्ययन किया।

इन सब विषयों की शिक्षा प्राप्त कर, जो जाति-विज्ञान के लिए आधारस्वरूप हैं, तथा खुद जाति-विज्ञान की भी अनेक पुस्तकें पढ़ चुकने के पश्चात् मैंने आक्सफोर्ड के एक्ज़ीटर विद्यालय में प्रवेश किया। यह विद्यालय पश्चिम प्रदेशीय प्राचीन परिवार के सदस्य के लिए विशेष रूप से उपयुक्त है। वहाँ मानव-विज्ञान के महान् ज्ञाता तथा शिक्षक-प्रवर स्व० डा० आर० आर० मैरेट के चरणों में बैठकर मैंने स्नातकोत्तर शिक्षा प्राप्त की।

इसके साथ ही मैं कुछ समय के लिए लिवरपूल विश्वविद्यालय भी चला गया था। वहाँ मुझे सर जॉन गार्स्टैङ्ग तथा प्रोफ़ेसर टी० ई० पीट द्वारा पश्चिमी एशिया तथा मिस्र के जाति-विज्ञान के अध्ययन से और प्रोफ़ेसर राक्सबी के पथप्रदर्शन में जातीय भूगोल के अध्ययन से बड़ा लाभ हुआ तथा आनन्द मिला।

इसी बीच में श्री राबर्ट कर के साथ रहने के कारण, जो कि एडिनबर्ग के रायल

१. हिन्दी में 'जाति' शब्द का प्रयोग प्रायः ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि जातियों (कास्ट्स) के लिए ही किया जाता है। किन्तु यहाँ 'जाति' से अंग्रेजी के 'रेस' शब्द का अभिप्राय है जिसके लिए 'प्रजाति' शब्द रखा जा सकता था, पर आर्यन, मंगोलियन आदि के लिए भी 'जाति' शब्द अक्सर प्रयोग में आता है, इसलिए इस अर्थ में भी यही शब्द रहने दिया गया है। 'प्रजाति' की तुलना में यह अधिक प्रचलित और सरल भी है।

स्काटिश म्युज़ियम में जाति-वृत्त (एथनोग्राफी) के 'कीपर' के पद पर थे, मानव-विज्ञान सम्बन्धी कार्यों में अधिक सार्वजनिक रूप से संलग्न हो गया। हम दोनों ने मिलकर स्काटिश एन्थ्रापोलोजिकल सोसाइटी की नीव डाली जो इस समय भी मानव-विज्ञान की उन्नति के लिए प्रयत्न कर रही है।

इस सोसाइटी के पश्चात् ही उन दिनों में, जब कि एडिनबर्ग विश्वविद्यालय में मानव-विज्ञान का कोई विभाग न था, मानव-विज्ञान की एक संस्था की स्थापना हुई जिसका मैं १९३६ तक संचालक रहा। कुछ समय के लिए मैं प्रोफ़ेसर एच० जे० रोज़ की प्रार्थना पर, जो कि विद्वत्ता में डा० आर० आर० मैरेट के ही समान दिग्गज थे, सेण्ट एण्ड्रूज़ विश्वविद्यालय में जाति-विज्ञान का प्राध्यापक भी रहा।

इन घटनाओं के कारण अन्य देशों में हुए कार्यों से घनिष्ठ सम्बन्ध होने का अवसर प्राप्त हुआ तथा एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था के संस्थापकों में मेरा भी नाम आया। लोक-गीतों के जातिवैज्ञानिक अध्ययन के लिए इसकी बैठक प्रथम बार उपसाला विश्व-विद्यालय में तथा इसके बाद लुन विश्वविद्यालय तथा बर्लिन में हुई। इस संस्था से अमेरिका के प्रोफ़ेसर स्टिथ टामसन, आयरलैण्ड के प्रोफ़ेसर डिलार्जी तथा स्वीडेन के प्रोफ़ेसर हरमन गीजर और प्रोफ़ेसर सिड़ो तथा गीजर के सहायक डा० आके कैम्पबेल भी सम्बद्ध थे।

इसका परिणाम यह हुआ कि युद्ध-काल के पूर्व के कठिन समय में मेरे एक घनिष्ठ मित्र प्रोफ़ेसर ओटो लेहमैन ने, जो कि आल्टोना म्युज़ियम के संचालक थे तथा जिनकी मृत्यु युद्ध के पश्चात् अधिक वृद्धावस्था में हुई, मुझे सम्बन्धित संस्थाओं की ओर से कील विश्वविद्यालय, हैम्बर्ग के हेन्सियाटिक[1] विश्वविद्यालय तथा बर्लिन विश्वविद्यालय में परिदर्शक प्राध्यापक के रूप में आने को आमन्त्रित किया। यह वह समय था जब कि नात्सीवाद जोरों से अपने राजनीतिक दर्शन का मानव-विज्ञान में अन्तःक्षेप कर रहा था। इसलिए मैंने यह आवश्यक समझा कि अपने भाषणों को केवल अपने ही मतों तक सीमित रखूँ। जैसा कि आयरलैण्ड में हारवर्ड के विद्वानों के कार्यों से निश्चित हो चुका था, एक एटलाण्टिक जाति है जिसे हम भूमध्यसागर, आयरलैण्ड तथा स्काट-लैण्ड से स्वीडेन के डलार्निया[2] तथा जर्मनी के वेस्टफ़ेलिया में फैला हुआ पाते हैं।

अपने बचपन में जब मैं एडिनबर्ग में विद्यार्थी था, अप्रौढता के उत्साह में बहुत

१. Hanseatic

२. Dalarnia

लिखा करता, बोलता तथा भाषण किया करता था। जब मैं श्री मैरेट के चरणों में बैठकर सीखने के लिए पहुँचा, बिना अच्छी तरह समझे-बूझे निष्कर्षों पर पहुँचना उतना आसान नहीं रह गया था। साथ ही जो कार्य मैंने उनके साथ प्रारम्भ किया वह आश्चर्यजनक रूप से इतना विस्तृत हो गया कि अनुसन्धान के लिए जो कुछ निर्धारित करता उतना कभी भी समाप्त नहीं कर पाता। अनुसन्धान-कार्य इतना बढ़ गया कि उसके अन्तर्गत अधिक विस्तृत क्षेत्र तथा गूढ़ अन्वेषणों का समागम हो गया। इसी का परिणाम अब, अच्छा या बुरा कुछ भी हो, इस पुस्तक के रूप में आपके सामने है।

युद्ध छिड़ जाने से मुझे पहले फ़्रांस में आर्टिलरी आफ़िसर के पद पर, फिर एवरबोर्न में स्टाफ़ आफ़िसर के पद पर काम करना पड़ा। फिर इटली में एलाइड मिलिटरी सरकार के शिक्षा-सलाहकार, इटली के एलाइड कण्ट्रोल कमीशन के शिक्षा-संचालक तथा अन्त में जर्मनी में एस० एच० ए० ई० एफ़० (SHAEF) के शिक्षा तथा धार्मिक कार्यों का अध्यक्ष बन जाने के कारण जाति-विज्ञान से मेरे घनिष्ठ सम्बन्ध में बाधा पड़ी।

फिर भी इन स्थानों में भी मैं इस विषय का थोड़ा-सा कार्य कर सका। मैं अपने सरकारी पद के कारण पेलर्मो विश्वविद्यालय में सांस्कृतिक मानव-विज्ञानविषयक एक पीठ (चेयर) की स्थापना करा सका तथा सिसली की एन्थ्रापोलोजिकल सोसाइटी का निर्माण कर सका, जिसका प्रथम सभापति बनने का सौभाग्य भी मुझे प्राप्त हुआ। इसके सिवा युद्ध के होते हुए भी मैं सिसली के जाति-विज्ञान सम्बन्धी रक्त-समूह से लेकर नेपुल्स की रायल, अब राष्ट्रीय सोसाइटी, पेण्टानियाना एकेडमी, जिसके अध्यक्ष बेर्नाडोटो थे, तथा इटली के वर्तमान विदेशमन्त्री प्रोफ़ेसर गेटानो मारटिनो की अध्यक्षता में मेसीना की पेलोरिटाना एकेडमी के कार्यों तक में योगदान कर सका।

युद्ध के पश्चात् एक समय आया जब मैंने कुछ भी लिखना बन्द कर दिया तथा अपना सारा समय उस कार्य में लगाने लगा जिसमें मैं कुछ परिणामों तक पहुँच सका, जिनका, जैसा कि मुझे आशा है, कुछ मूल्य हो सकता है। उनमें से कुछ का समावेश इस पुस्तक में कर दिया गया है। विश्व जाति-विज्ञान के बहुत से पहलुओं पर मैं लिखने का विचार रखता हूँ, विशेषतः एक-दूसरे से गुँथे हुए दो विषयों पर—एक मानव-जननिक (जेनेटिक्स) तथा दूसरा जातीय परिस्थिति (इकालॉजी) पर। इस दिशा में यह रचना पहला कदम है।

यद्यपि पहले मैं उम्र के लिहाज से अधिक प्रतिभावान् और अभिमानी नवयुवक के रूप में प्रसिद्ध था, किन्तु मानव-विज्ञानसम्बन्धी जगत् में एक लम्बे समय, लगभग दस वर्षों से अधिक तक मैं मौन रहा, साथ ही मानव-विज्ञान सम्बन्धी संस्थाओं में सक्रिय

भाग न ले सका, इसलिए मेरा नाम, इस बीच में आये हुए अनेक लोगों को नया लग सकता है। जब जक मुझे विश्वास नहीं हो गया कि प्रौढ़ता की दृष्टि से मेरे विचारों से अच्छा योगदान होगा, तब तक लेखनी उठाने से मैं विरत रहा। यही कारण है बल्कि इस बात का औचित्यदर्शक तत्त्व भी, कि अब तक मैं क्यों कोई गम्भीर लेख या पुस्तक प्रकाशित नहीं करवा सका। फिर भी काफ़ी समय मौन रहने के पश्चात् मैंने जो कुछ लिखा है पाठकगण उससे समझ सकते हैं कि मै जाति-विज्ञान के क्षेत्र में कोई नया लेखक नही हूँ और न मेरे विचार ही शीघ्रता में बने है बल्कि वे काफ़ी मनन-चिन्तन के परिणाम हैं। मैं आशा करता हूँ कि मेरी यह रचना एक जटिल विषय—मानव के जाति-गत गुणों की जाति-वैज्ञानिक व्याख्या—समझने में सहायक सिद्ध होगी।

इस प्राक्कथन को मध्य भारत के आदिवासी क्षेत्र में स्थापित विश्रामगृह (सरकिट हाउस) में लिखते समय, क्षेत्र-यात्राओं में भाग लेते हुए मैं एक बार फिर मानव-वैज्ञानिक का पद ग्रहण किये हुए हूँ तथा लेख प्रकाशित करने, क्षेत्र-कार्य तथा यात्राओं को संघटित करने और मानव-शास्त्र-विभाग को भूगोल-विभाग के साथ चलाने का कार्य कर रहा हूँ।[१]

भारतीय जाति-विज्ञान से प्रत्यक्ष सम्बन्ध होना प्रत्येक का सौभाग्य नहीं है परन्तु मेरा विश्वास है कि यहाँ मानव-विज्ञान सम्बन्धी अनुसन्धान के लिए एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है। क्योंकि यह उप-महाद्वीप निग्रायड, निग्रटो, आस्ट्रालायड, मंगोलायड तथा काकेसायड; सबों के मिलने का स्थान है तथा किसी का पहले का चाहे जो भी अनुभव[२] हो, भारतीय जाति-विज्ञान की जटिलता अनुसन्धानों के लिए एक उपयुक्त विषय है।

जैसा कि मैंने अभी बतलाया है तथा जैसा आगे विस्तार से बतलाया जायगा, सभी जातियाँ भारत में आयीं है और मेरा मत है कि कोई भी, मानव-शास्त्र का अध्ययन, किसी एक महाद्वीप में सीमित करके, मनुष्यों के इस विस्तृत क्षेत्र पर विचार किये बिना, जहाँ संस्कृतियों तथा रक्त का मिश्रण पूर्ण रूप से हुआ है, पूरा नहीं किया जा सकता।

इस पुस्तक का लिखना बहुत पहले ही प्रारंभ हो गया था। इसके कुछ भाग युद्ध-

१. यह पुस्तक प्रकाशनार्थ स्वीकृत होने के कुछ समय बाद आप भारत छोड़कर इंग्लैण्ड चले गये हैं।—अनुवादक

२. मेरा अनुभव ब्रिटेन, स्कैण्डिनेविया, जर्मनी, निचले देश (हालैण्ड-बेलजियम), फ्रान्स, इटली, सिसली तथा उत्तर-पश्चिमी अफ्रीका के जाति-विज्ञान के क्षेत्र में मुख्यतः रहा है।

काल के पूर्व ही प्रकाशन के लिए तैयार हो गये थे तथा युद्ध के तुरन्त पश्चात् काफ़ी लिखा जा चुका था परन्तु अब यह पुस्तक भूमध्य सागर से उत्तरी यूरोप तक के व्यावहारिक अनुभव पर भारतीय जाति-विज्ञान की समस्याओं तथा उनके प्रकाश में दुहरायी गयी है।

परिणामतः यह उचित ही है कि यह पुस्तक, जो यद्यपि भारत के जाति-विज्ञान से ही नहीं बल्कि मानव के जाति-विज्ञान से सम्बन्धित है, प्रथम बार उत्तर प्रदेश की सरकार द्वारा हिन्दी में प्रकाशित की जाय।

जो कुछ भी मैंने लिखा है वह सभी मानव-शास्त्रज्ञों को संतोष नहीं प्रदान कर सकेगा, परन्तु मेरा विश्वास है कि वह काफ़ी ठीक सिद्ध होगा। कारण यह है कि परिणाम यों ही सरसरी तौर से नहीं निकाले गये हैं, विशेषतः उन स्थलों पर जहाँ प्रचलित सिद्धान्तों से पृथक् राय मुझे देनी पड़ी है।

फिर भी मुझे जाति-विज्ञान के वर्तमान क्षेत्र में, जहाँ जाति-वैज्ञानिकों को उन अनेक विषयों के संश्लेषण का विशेषज्ञ बनने का प्रयत्न करना पड़ता है, जो दिन-प्रतिदिन जटिल तथा विस्तृत होते जाते हैं, अपनी अयोग्यता का पूरा पूरा ज्ञान है।

पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग न करना अत्यन्त कठिन है परन्तु जहाँ तक सम्भव हो सकता है वहाँ तक मैंने उसका कम से कम प्रयोग करने का प्रयत्न किया है। मेरा ऐसा विश्वास है कि कुछ नये शब्दों के अतिरिक्त, जिनका प्रयोग कुछ नये विचारों का वर्णन करने के लिए आवश्यक है, सामान्य अंग्रेज़ी (या हिन्दी भाषा) अत्यन्त कठिन विचारों को प्रकट करने के लिए पर्याप्त होगी। फिर भी मुझे मालूम है कि यदि वैज्ञानिक वर्णन सरल तथा सीधी-सादी भाषा में किया जाय तो कुछ लोगों पर इसका अधिक प्रभाव नहीं पड़ता।

भारत का सौभाग्य है कि यहाँ अनेक भौतिक मानव-शास्त्री हैं जो जाति-विज्ञान का वास्तविक अर्थ समझते हैं, जैसे कि डा० बी० सी० गुह तथा डा० पी० सी० विश्वास। यहाँ के सांस्कृतिक मानव-शास्त्री भी, जैसे डा० डी० एन० मजूमदार इसका महत्त्व समझते हैं तथा इस विषय के ज्ञाता हैं। मेरा विश्वास है कि न केवल भारतीय जाति-विज्ञान की समस्याओं को सुलझाने के लिए ही परन्तु विश्व की जातीय समस्याओं की जटिलता दूर करने में भी भारत जो योगदान कर सकता है, इस दृष्टि से भी यह बड़े सौभाग्य की बात है।

जी० आर० गेयर
मानव-विज्ञान के प्रोफ़ेसर तथा
मानव-भूवृत्त विभाग के अध्यक्ष,
सागर विश्वविद्यालय, सागर (म. प्र.)

विश्रामगृह
जगदलपुर (बस्तर)
३–११–१९५५

विषय-सूची

प्रथम खण्ड

द्वितीय खण्ड

तृतीय खण्ड

चित्र-सूची

तालिकाओं की सूची

प्रथम भाग की भूमिका

विषय का क्षेत्र

प्रारम्भ में मानव-विज्ञान का अध्ययन विभिन्न देशों में स्वतन्त्र रूप से विकसित हुआ, अतः एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में अनेक पारिभाषिक शब्दों में विभिन्नता होना स्वाभाविक है। दुर्भाग्यवश जहाँ तक सबसे महत्त्वपूर्ण शब्द जाति-विज्ञान (एथनालॉजी) का सम्बन्ध है, यह विभिन्नता सबसे अधिक पायी जाती है।

अतः प्रारम्भ में उन विशिष्ट शब्दों की परिभाषा दे देना आवश्यक है जिनका इस रचना के विषय से सीधा सम्बन्ध है।

जाति-विज्ञान की परिभाषा

प्रारम्भिक अंग्रेज़ लेखकों ने जाति-विज्ञान पारिभाषिक शब्द का प्रयोग मानव-विज्ञान के उस भाग के लिए किया था जो मानव का सम्पूर्ण अध्ययन है तथा उसमें जातीय समूह और मनुष्यों के विकास एवं इतिहास तथा अनेकों प्रकार के मनुष्यों के पारस्परिक सम्बन्ध का अध्ययन भी सम्मिलित था।

प्रोफ़ेसर कीन तथा उनके पूर्व डा० जे० हण्ट[1] ने इसी अर्थ में इस शब्द का प्रयोग किया है।

इटली के सर्गी ने, जो एक महान जाति-वैज्ञानिक है, उसी प्रकार के शब्द **जाति-वृत्त (एथनोग्रैफ़ी)** को जाति-विज्ञान (एथनालॉजी) के ही अर्थ में प्रयुक्त किया है। जहाँ पर उन्होंने जाति-विज्ञान[2] का पुरा-जाति-विज्ञान (Palaeo-ethnology) शब्द कहकर प्रयोग किया है, वहाँ पर वही अर्थ है जैसा कि अंग्रेज़ों का जाति-विज्ञान शब्द से निकलता है।

१. १८६१, "ऑन एथनो-क्लाइमेटोलोजी" इत्यादि, ब्रिटिश एसोसियेशन, एडवान्स साइन्स, मानचेस्टर (Manchester), पृष्ठ १२९—१५०

२. जाति-वृत्त (एथनोग्रैफी) शब्द का प्रयोग उचित रूप से उसी समय किया जा सकता है जबकि किसी भौगोलिक क्षेत्र अथवा किसी दिये हुए प्रदेश के मनुष्यों या

रिपले[1] ने अवश्य ही इस शब्द को उसी अर्थ में समझा है क्योंकि उसे हम जातीय प्रकारों[2] (एथनिक टाइप्स) की चर्चा करते पाते हैं।

शब्द के उस प्रयोग की, जैसा कि आक्सफोर्ड वालों ने किया है, वही परिभाषा श्री पेनीमैन[3] (Mr. Penniman) ने ठीक उसी प्रकार की है क्योंकि उन्होंने वही परिभाषा दी है जैसी कि कोई अन्य अच्छी परिभाषा हो सकती है।

> "जाति-विज्ञान, मानव-शास्त्र की कुछ अथवा सभी विधियों द्वारा मनुष्य अथवा जातियों के तुलनात्मक अध्ययन की उपस्थापना है। नार्डिक अथवा अल्पाइन जैसी जातियाँ प्राकृतिक गुणों से तथा अंग्रेज एवं यहूदी जैसे लोग सांस्कृतिक गुणों से पहचाने जाते हैं।"

इस प्रकार किसी देश के लोगों के तुलनात्मक अध्ययन में भी जातीय विशेषताओं की अवहेलना नहीं की जा सकती, हालाँ कि जाति का शुद्ध और सीधा-सादा अध्ययन करने की अपेक्षा उस समय सांस्कृतिक तत्त्वों की ओर अधिक ध्यान जाता है।

जाति-विज्ञान मुख्यतः उन जातीय तत्त्वों का तुलनात्मक अध्ययन है जो मानव-विज्ञान की अनेक शाखाओं से सम्बन्धित हैं, जैसे तुलनात्मक भाषाएँ तथा तुलनात्मक धर्म, भौतिक संस्कृति का अध्ययन, प्रागैतिहासिक तथा वर्तमान सामाजिक रीतियाँ, जिससे किसी समय वे एक जातीय-समूह की दूसरे से तथा किसी समूह या समूहों की जो अभी हैं या पहले थे उनके पूर्वजों से सापेक्षिक स्थिति की व्याख्या हो सकती हैं।

जाति-वृत्त की परिभाषा

श्री पेनीमेन तथा वर्तमान लेखक के अनुसार यदि हम फिर से उनके कथन को लें तो, "जाति-वृत्त (एथनोग्रैफी), मानव-विज्ञान की कुछ अथवा समस्त रीतियों द्वारा मनुष्य समूह का वर्णन किया गया हो। इस प्रकार ओडर तथा विस्चुला नदियों के मध्य में पूर्वी यूरोप के मनुष्यों का अध्ययन जाति-वृत्त के अन्तर्गत उसी प्रकार है जिस प्रकार अफ्रीका की आदिम जाति अथवा प्रशान्त सागरीय द्वीपों के मनुष्यों का शुद्ध विवरणात्मक अध्ययन।

१. Ripley

२. रेसेज ऑफ़ यूरोप, पृष्ठ ७५

३. ए हण्ड्रेड यियर्स आफ़ एन्थ्रोपोलॉजी, प्राक्कथन।

एक जाति (प्रजातिं, रेस), विशिष्ट मानव-समूह अथवा क्षेत्र-विशेष का अध्ययन है।"[१] कहने का अभिप्राय यह कि यह एक तुलनात्मक अध्ययन नहीं है, क्योंकि एक बार भी इसमें तुलनात्मक अध्ययन आ जाय तो यह जाति-विज्ञान बन जाता है।

अतः जाति-वृत्त किसी निश्चित राजनीतिक अथवा भौगोलिक प्रदेश की किसी एक जाति, निवासियों, वन्य जाति अथवा विभिन्न मनुष्यों के समूह के अन्वेषक का एक वर्णनात्मक दृष्टिकोण है जिससे यह पता चलता है कि वे कौन हैं। उनकी उत्पत्ति तथा सम्बन्धों से उसे कोई मतलब नहीं।

इस प्रकार इस अर्थ में जिसे हम जाति-वृत्त (एथनोग्राफी) कहते हैं उसे ही अमेरिका के लेखक डा० फ्रैन्ज़ बोआस तथा यूरोप के अनेक लेखक जाति-विज्ञान (एथनालॉजी) कहेंगे।

जर्मनी में जाति-विज्ञान को रासेन-विशेनशाफ्ट[२] अथवा रासेन-कुन्ते कहते हैं जिसका शाब्दिक अर्थ है जातीय-विज्ञान[३]। जिसे हम जाति-वृत्त कहते हैं, उसे वे लोग जाति-विज्ञान शब्द से प्रकट करते हैं।

दुर्भाग्यवश अंग्रेज़ी के सब लेखकों ने जाति-विज्ञान शब्द का प्रयोग एक ही प्रकार से नहीं किया है। जिसे हम जाति-वृत्त कहते हैं, उसे यूरोप महाद्वीपीय देशों में प्रचलित अर्थ में न केवल अमेरिका के डा० बोआस को ही प्रयोग करते पाते हैं बल्कि कैम्ब्रिज्ञ के जाति-विज्ञान के रीडर स्वर्गीय डा० ए० सी० हेडन ने भी ऐसा ही किया है[४] (क्योंकि वह मुख्यतः, हालाँ कि पूर्णतया नहीं, एक सांस्कृतिक तथा सामाजिक मानव-शास्त्री थे), यह मानते हुए भी कि इस पारिभाषिक शब्द का अभिप्राय मुख्यतः भौतिक मानव-शास्त्र से है। उन्होंने इसके अनुबद्ध प्रयोग को भी जोड़ दिया होता, क्योंकि आक्सफोर्ड की मानव-विज्ञान की समिति के मन्त्री होने की हैसियत से श्री पेनीमैन ने उपर्युक्त परिभाषा एक वर्ष पश्चात् १९३५ में लिखी।

१. The study of a particular race, people or arca by any or all the methods of Anthropology.

२. Rassen wissenschaft; Rassenkunte.

३. वास्तव में यह वही पारिभाषिक शब्द है जिसका प्रोफ़ेसर हूटन ने जातीयता के अर्थ में प्रयोग किया है तथा जिसे हम लोग जाति-विज्ञान कहेंगे ।

४. हिस्ट्री ऑफ़ एन्थ्रोपोलॉजी, पृष्ठ १००

इस पुस्तक में 'जाति-विज्ञान' शब्द का प्रयोग

इसलिए इस पारिभाषिक शब्द के ऐतिहासिक प्रयोग पर ज़ोर देते हुए हम कह सकते हैं कि जाति-विज्ञान समस्त मानव-विज्ञान का तुलनात्मक तथा संश्लेषित पहलू है और मुख्यतः यह जातियों, जातीय समूहों तथा देश-विशेष के लोगों के विकास, भौतिक उन्नति तथा उनके पारस्परिक सम्बन्धों को महत्त्व देता है।

जहाँ जाति-विज्ञान, प्रागैतिहासिक काल की भौतिक संस्कृति अथवा तुलनात्मक भाषा या वन्य जाति, मनुष्यों तथा राष्ट्रों के इतिहास द्वारा प्रस्तुत किये गये तुलनात्मक आधार से सम्बन्वित है, वहाँ भी वह प्राकृतिक सम्बन्धों की अवहेलना नहीं कर सकता, नहीं तो उसके तुलनात्मक अध्ययन में दोष रह जायँगे तथा उसी मात्रा में उसकी व्याख्या भी त्रुटिपूर्ण रह जायगी।

जाति-विज्ञान तथा भौतिक मानव-विज्ञान

इस प्रकार जाति-विज्ञान का आधार भौतिक मानव-विज्ञान है परन्तु उसका सम्बन्ध मनुष्य से, उसकी उत्पत्ति से तथा उसकी सम्पूर्ण बनावट से है। इस प्रकार भौतिक मानव-विज्ञान का आधार होते हुए भी उसमें अन्य शास्त्रों का तुलनात्मक अध्ययन सम्मिलित है, जैसे सामाजिक मानव-विज्ञान (सोशल ऐनथ्रोपोलॉजी) (जो कि मनुष्य के सामाजिक संघटन तथा विचारों से सम्बन्धित है), सांस्कृतिक-मानव-बिज्ञान (जो कि उसके प्राविधिक रूप से सम्बन्धित है)[१] तथा किसी क्षेत्र या विशेष लोगों या आदिम जाति के मनुष्य का साधारण स्थानिक अध्ययन है (जोकि तुलनात्मक होते हुए भी अधिक विवरणीय है) और जिसे हम जाति-वृत्त (एथनोग्राफी) कहते हैं।

इसलिए यह कहना चाहिए कि मनुष्य के जातीय (रेशल) समूहों का व्यापक विश्लेषण, एक का दूसरे के साथ तथा सबका प्राचीन के साथ तुलनात्मक अध्ययन, बहुत सी प्राचीन जातियों तथा मनुष्यों के उद्‌भव का वृत्तांत, यही सब जाति-विज्ञान है। जब कि जाति-विज्ञान अधिकांशतः भौतिक मानव-विज्ञान पर ही अवलम्बित है, क्योकि उत्पत्ति तथा पारस्परिक सम्बन्ध जीव-विज्ञान के विषय हैं, यह उसके सामाजिक तथा सांस्कृतिक तत्त्वों से अनभिज्ञ नहीं है।

इस प्रकार ऐसा समझा जाता है कि भौतिक मानव-विज्ञान के विस्तृत अध्ययन

१. जब हम प्राचीन सांस्कृतिक मानव विज्ञान की बात कहते हैं तब उसे प्रागैतिहासिक पुरा विद्या कहते हैं।

में किसी भी रूप में ज़ाति-विज्ञान अथवा जातियों सम्बन्धी विद्या का वर्णन अवश्य आता है तथा जैसा कि प्राचीन तथा वर्तमान समय के आक्सफोर्ड कोश में दिये प्रयोग से मालूम होता है, जाति-विज्ञान के अध्ययन में भौतिक मानव-शास्त्र के आधार की अवहेलना नहीं की जा सकती।

मानव तथा मानव-भूवृत्त

जो हो, मानव-विज्ञान सम्बन्धी नामपद्धति का विचार करते समय एक विस्तृत क्षेत्र नहीं छूट जाना चाहिए और वह है मानव-भूगोल तथा उससे निकट सम्बन्धित मानव-भूवृत्त (एनथ्रोपो-जिआग्रैफी)। मानव-भूगोल, मानव तथा उसकी परिस्थितियों के बीच की अन्तःक्रियाओं का अध्ययन है। इसमें इसका विचार नहीं किया जाता कि वंशानुगति के कारण मनुष्य एक दूसरे से भिन्न हैं। इसमें मानव का अध्ययन परिस्थितियों से सम्बन्धित एक उपभेद की भाँति किया जाता है।

इसके विपरीत मानव-भूवृत्त, मानव-विज्ञान तथा भूगोल, दोनों की एक शाखा है जो मनुष्य की भौतिक अर्थात् जातीय विशेषताओं पर ध्यान देती है। इस प्रकार मनुष्य का उसकी परिस्थितियों के साथ अध्ययन करने में वह जाति की वंशानुगत बनावट के कारण विभिन्न गुणोंवाले जीव के रूप में उसका अध्ययन करती है। वास्तव में यह जातीय तथा मानव-विज्ञान सम्बन्धी अन्य विशेषताओं का भौगोलिक अध्ययन है।

एक तो मानव के उद्भव पर प्रभाव डालनेवाला तत्त्व तथा दूसरे उसके वितरण का मुख्य कारण होने की वजह से मानव-भूवृत्त की अवहेलना करके न तो जातीय इतिहास के विकास पर निबन्ध लिखा जा सकता है और न मानव का अध्ययन ही पूरा किया जा सकता है।

भौगोलिक मत के प्रतिपादकों में से ग्रिफिथ टेलर तथा अन्य भौगोलिक निश्चय-वादियों की रचनाएँ प्रसिद्ध हैं। उनका मुख्य दोष यह है कि मानव-विज्ञान संबन्धी तथ्यों तथा सिद्धान्तों की विशेष कर जिनका सम्बन्ध वंशानुगति से हो, यथेष्ट जानकारी नहीं है। परन्तु मानव-विज्ञान के ज्ञाताओं में, मुख्यतः जिन लोगों ने जातियों की उत्पत्ति तथा मानव के उद्भव के क्षेत्र में अध्ययन किया है, कुछ समय से यह दोष रहा है कि वे मानव-भूवृत्त से सम्बद्ध उन तथ्यों की, जिनका सम्बन्ध मनुष्य की आदतों, रहन-सहन के तरीकों आदि से है और जिन्होंने मानव-समाज के वितरण को, जैसा कि वह इस समय देख पड़ता है, प्रभावित किया है, या तो अवहेलना करते हैं या उन्हें बहुत कम महत्त्व देते हैं।

जिस प्रकार से पशु तथा पौधे स्थान-विशेष में फैलने या रहने में कुछ भौगोलिक दशाओं द्वारा संचालित होते हैं, उसी प्रकार प्रारम्भिक मनुष्य भी जो कि सूर्य, वर्षा, गर्मी तथा शीत काल से उतना स्वतन्त्र (या सुरक्षित) नहीं था जितने हम लोग हैं, बिना किसी सीमा के इन शक्तियों द्वारा नियन्त्रित था।

इसलिए प्रागैतिहासिक काल का वर्णन करना तथा अत्यन्त प्रारम्भिक मनुष्य के वितरण तथा उद्भव की, मानव-भूवृत्त के सिद्धान्तों की स्थिरता का विचार किये बिना, व्याख्या करना, यह एक विस्तृत तुलनात्मक विश्लेषण की भाँति है जो जाति-विज्ञान का सहज गुण है।

इन्हीं सब कारणों से इस पुस्तक में केवल मानव पर वंशानुगति की कार्यप्रणाली के प्रभाव का ही नहीं परन्तु मानव-भूवृत्त के प्रभाव का भी वर्णन किया गया है। साथ ही उसमें विभिन्न प्रकारों के तुलनात्मक अध्ययन का प्रयत्न किया गया है तथा इसी आधार पर उसकी वंशोत्पत्ति, इतिहास तथा सम्बन्धों को निकालने का प्रयत्न किया गया है। इस प्रकार इन विषयों का अध्ययन, जो भूगोल का एक अंश बतलाया जाता है, जाति-विज्ञान का उतना ही आधार स्वरूप है जितना कि भौतिक मानव-विज्ञान का है।

जातिविज्ञान की अवहेलना

कुछ प्रख्यात पुस्तकों के प्रकाशित होने के बावजूद वर्तमान समय में जाति-विज्ञान की ओर ध्यान न देने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। भौतिक मानव-विज्ञान, प्रागैतिहासिक पुरातत्त्व विज्ञान तथा मुख्यतः सामाजिक मानव-विज्ञान में अधिक अभिरुचि के कारण विज्ञान की अन्य शाखाओं की भाँति उन विशेषज्ञों का वर्ग उत्पन्न हो गया जिन्होंने कम से कम के बारे में अधिक से अधिक जानने का प्रयत्न किया, किन्तु अध्ययन के अधिक विस्तृत क्षेत्र के बारे में जो कम से कम जान पाये। इस विस्तृत ज्ञान की कमी के कारण जो कि जाति-विज्ञान का आधार है, उन्होंने अधिक जटिल सिद्धान्त प्रस्तुत किये, जबकि स्पष्ट ही उनसे सरलतर तथा अच्छे सिद्धान्त उपलभ्य थे। इन सबका परिणाम कभी कभी संकुचित क्षेत्र के इन विशेषज्ञों द्वारा किये गये काफी सूक्ष्म तथा प्रशंसनीय विस्तृत अन्वेषणात्मक कार्यों में देख पड़ता है, जब वे सूक्ष्मदर्शी-यंत्र (माइक्रास्कोप) से थोड़ी देर के लिए दृष्टि उठाकर अथवा जीवमितीय (बायोमीट्रिकल) अथवा सांख्यि-कीय (सामग्री) की जटिलताओं से अवकाश पाकर अपने निष्कर्षों का मूल्यांकन करते हैं और मनुष्य के इतिहास तथा सम्बन्धों से उनका मिलान करने का प्रयत्न करते हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि इन संकुचित आधारों पर जो सिद्धान्त खड़े किये जाते हैं वे विषय की विस्तृत व्याख्या करने में पूर्णतया असफल रहते हैं।

इस असफलता का मुख्य कारण जाति-वैज्ञानिकों में विस्तृत तुलनात्मक ज्ञान की कमी कहा जा सकता है।

जाहिर है कि जब इन विशेषज्ञों को अपनी ही बातों का पूरा पूरा निश्चय नहीं रहता, तब ये बहुधा जाति-विज्ञान के कुछ माने हुए तर्कों के सम्बन्ध में भी शंका प्रकट करने लगते हैं तथा जैसा कि हमारे एडिनबर्ग विश्वविद्यालय[१] के भूगर्भ-शास्त्र तथा पुरा सात्विकी विभाग[२] के अनुभवी प्राध्यापकों का कथन है, वे अनिश्चय के भँवर में फँस जाते हैं। यह चीज विशेष रूप से उन नये केन्द्रों में देख पड़ती है जहाँ विशिष्ट प्रविधियों से काम लिया जाता हो, उदाहरण के लिए रक्त-समूहों में।

इस पुस्तक के लेखक के सामने, जो स्वयं एक जाति-वैज्ञानिक है, रक्त-वैज्ञानिकों के कार्य से उत्पन्न परिणाम देखकर अब ऐसा स्पष्ट चित्र सा खिंच जाता है, जो जाति-विज्ञान के प्रतिष्ठित अवबोधों से मेल खा सकता है किन्तु अतीत काल में अनेक रक्त-वैज्ञानिकों ने (प्र)जाति-विज्ञान (एथनॉलॉजी) के अधिक व्यापक क्षेत्र से अपने कार्य का सम्बन्ध दिखलाते हुए जो निष्कर्ष निकाले थे, उनसे तत्सम्बन्धी ज्ञानवृद्धि में कोई सहायता नहीं मिली बल्कि उनके कारण विचारों की गड़बड़ी बढाने में ही मदद मिली।

इसलिए हाल के वर्षों में प्रजाति-विज्ञान की अवहेलना से मानव-विज्ञान तथा उससे सम्बन्धित अध्ययन की उन्नति में हानि पहुँची है।

जातिविज्ञान पर राजनीतिक प्रभाव

केवल इस विषय की अवहेलना के ही नहीं वरन् इसके आधारभूत तत्त्वों के सम्बन्ध में शंका प्रकट करने अथवा उनके अस्तित्व से भी इनकार करने के कई कारणों में एक कारण है विज्ञान में राजनीतिक विचारधारा का अवांछनीय प्रवेश। अवश्य ही नात्सीवाद को जाति-विज्ञान के कुछ मुख्य तथ्यों से अनुचित राजनीतिक लाभ उठाने का अवसर प्राप्त हुआ। पश्चिमी देशों में मुख्यतः अमेरिका तथा रूस में इसकी बड़ी भीषण प्रतिक्रिया हुई। इस प्रतिक्रिया के फलस्वरूप यह तो हुआ नहीं कि जाति-विज्ञान के तथ्यों के आधार पर नात्सीवाद के मिथ्या सिद्धान्त नष्ट कर दिये जाते, बल्कि हुआ यह कि जाति-विज्ञान पर ही आघात किये जाने लगे। चूंकि जाति-वैज्ञानिक जातीय विभिन्नताओं का अध्ययन करता था, उसे भी नात्सी जातीय दर्शन-शास्त्री कहकर

१. डा० फिडले (Dr. Fidlay) तथा डा० कैम्पबेल (Dr. Campbell)।
२. Palaeontology

बदनाम किया गया, भले ही उसका सारा कार्य नात्सी सिद्धान्तों के मूलभूत परिणामों के बिलकुल विपरीत रहा हो।

इसका परिणाम यह हुआ कि उसके पश्चात् बहुत सा कार्य हुआ जिसमें जाति के तथ्यों की आलोचना की गयी (जो कि वंशानुगति के अतिरिक्त कुछ नहीं है) और अनेक बार तो सत्य का बिलकुल विपर्यय ही कर दिया गया। एक नये मानव-विज्ञान की स्थापना का ही प्रयत्न किया गया, मानो १९३३ तक या तो किसी मानव-विज्ञान-वेत्ता का अस्तित्व ही न रहा हो अथवा उसके कार्य गलत रहे हों।

इसके वास्तविक प्रभावों का विवरण आगे दिया जायगा अतः उसकी चर्चा करने की यहाँ आवश्यकता नही है, सिवा इतना कहने के कि यह प्रवृत्ति अब कम हो रही है। जाति-वैज्ञानिक विचारधारा के निर्माण में राजनीतिक सिद्धान्तों का प्रभाव कम होता जा रहा है तथा उसके १९३३ से पूर्व के कार्यो पर बाद के वर्षो में जो बेतुकी बातों का जाल फैला दिया गया था वह साफ़ किया जा रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि जाति-विज्ञान का निर्माण ऐतिहासिक आधार पर ही होता चलेगा।

यह कहना आवश्यक है तथा भारतीय जाति-वैज्ञानिकों के लिए यह बड़े गौरव की बात है कि उन पर जाति-विज्ञान के विरुद्ध राजनीतिक प्रतिक्रिया का प्रभाव दूसरों की अपेक्षा कम पड़ा है तथा उनमें से शायद ही ऐसा कोई हो जो मानव के जातीय आधार को न मानता हो जिस पर जाति-विज्ञान की सारी इमारत खड़ी है।

जाति-विज्ञान का तुलनात्मक आधार

अब यदि हम पहले कही गयी जाति-विज्ञान की परिभाषा पर आयें तो हमारे गुरु तथा मित्र स्व० डा० आर० आर० मेरेट[१] के कथनानुसार 'जाति-विज्ञान वह विषय है जो बृहत तुलनात्मक तरीकों पर आधारित है।'

अवश्य ही इसमें भी खतरे हैं जैसे कि अन्य किसी प्रकार के अध्ययन के तरीके में हैं। जाति-वैज्ञानिक वह विशेषज्ञ है जो मानव-विज्ञान एवं मानव-भूवृत्त से सम्बन्धित सभी क्षेत्रों तथा उसके आगे के विषयों का अध्ययन एवं उनका संश्लेषण करता है।

स्पष्ट है कि वह सभी विषयों का विशेषज्ञ नहीं हो सकता। फिर विशेषज्ञ भी

१. Dr. R. R. Marett, आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के एक्ज़ीटर विद्यालय के रेक्टर तथा सामाजिक मानव-शास्त्र के रीडर।

तो गलती कर सकते हैं, अतः जाति-विज्ञान का ज्ञाता भी आसानी से गलतियाँ कर सकता है। परिणामतः यह हो सकता है कि अध्ययन के विशेष विषयों का संपूर्ण के साथ सामंजस्य बैठाने के लिए वह नये मतों को प्रस्तुत करे, जिसकी पुष्टि संकुचित क्षेत्र में विशिष्ट अन्वेषण करनेवालों के कार्य द्वारा न की जा सके। कुछ भी हो, निःसन्देह यह सत्य है कि सम्पूर्ण को एक भाग के उपयुक्त बनाने के लिए उसे तोड़ने या विकृत करने की अपेक्षा, जैसा कि अध्ययन के अधिक विशेषतापूर्ण क्षेत्रों के अन्वेषक करते हुए पाये जाते हैं, यह अधिक अच्छा होगा कि चाहे उसका आकार थोड़ा सा क्यों न बिगड़ जाय, एक भाग को ही सम्पूर्ण के उपयुक्त बनाने का प्रयत्न किया जाय।

अतः यह प्रकट होता है कि मानव-विज्ञान तथा मानव-विज्ञान सम्बन्धी सभी विषयों के अध्ययन के लिए जाति-विज्ञान के विकास तथा उन्नति को समझना आवश्यक है, क्योंकि उसके बिना उस प्रकार का समन्वय सम्भव नहीं जो कि उसके तुलनात्मक ढंग तथा विश्लेषण की शक्ति पर निर्भर है।

इसलिए जाति-विज्ञान के क्षेत्र में मानव-सम्बन्धी सभी शास्त्र आ जाते हैं तथा इस ज्ञान द्वारा तुलनात्मक अध्ययन इस प्रकार से किया जाता है जिससे मानव-जाति का उन जीव-वैज्ञानिक भागों में वर्गीकरण किया जा सके, जो मानव-जाति के भौगोलिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक तथ्यों से सम्बन्धित हैं।

जाति-वैज्ञानिक का कार्य पूरा होने के पश्चात् ही व्यावहारिक मानव-विज्ञान (एप्लाइड एनथ्रोपोलॉजी) तथा सुजनन विद्या (यूजेनिक्स) के क्षेत्र में मानव-विज्ञान सम्बन्धी अध्ययन का प्रयोग हो सकता है, क्योंकि उस समय तक जाति-वैज्ञानिक की तुलनात्मक विधि के संश्लेषण से उत्पन्न मानव की आवश्यक बृहत व्याख्या सम्भव नहीं होगी।

जाति-विज्ञान की केन्द्रीय स्थिति

जाति-विज्ञान, मानव-विज्ञान[१] के सभी उप-विभागों का न केवल केन्द्रबिन्दु है परन्तु यह इन शास्त्रों तथा सांस्कृतिक और मानवीय शास्त्रों के बीच वास्तविक पुल के समान है।

१. **भौतिक मानव-शास्त्र** (physical anthropology), **सामाजिक तथा सांस्कृतिक मानव-शास्त्र** (social and cultural anthropology), **प्रागैतिहासिक पुराविद्या** (prehistoric archaeology) **मानव-भूवृत्त** (anthropo-geography).

जाति-विज्ञान अपने विकास की परिधि में एक ओर इतिहास, राजनीतिशास्त्र तथा दर्शनशास्त्र से मिला हुआ है। परिणामतः जब इन विषयों का अध्ययन जाति-विज्ञान द्वारा मानव-विज्ञान के योगदान का विचार किये बिना किया जाता है तो उनमें उतनी ही कमी रह जाती है तथा उनकी नींव भी कमज़ोर रहती है। उन्हें मानव-जाति को जो संदेश देना है वह अधूरा ही रहेगा यदि वे महत्त्वपूर्ण जाति-वैज्ञानिक समूहों में विभाजित एक भौतिक मानव-वैज्ञानिक जीव की भाँति मनुष्य पर विचार नहीं करते।

अतः जाति-विज्ञान, यदि मनुष्य केवल उसका उपयोग करे तो, एक अत्यन्त उपयोगी अभिरुचि का विषय है। उसका क्षेत्र सभी प्राकृतिक शास्त्रों तक फैला हुआ है तथा मनुष्यों और जातियों के अध्ययन में केन्द्रित है, जिनमें कि समय के प्रारम्भ से ही मानव विभाजित रहा है जिसकी महत्ता अब भी है तथा रहेगी, भविष्य में सामाजिक तथा राजनीतिक उद्विकास चाहे जैसा हो।

प्रथम खण्ड

जाति-विज्ञान की मूल भित्ति,
जाति (रेस) का अर्थ, स्थायित्व, और जाति तथा जातित्ववाद

प्रथम खण्ड की भूमिका

यह खण्ड जाति-विज्ञान की भूमिका स्वरूप है तथा इसमें उसके विकास और जाति-विज्ञान सम्बन्धी विचारों के कुछ मुख्य प्रर्वतकों का संक्षिप्त विवरण है। इसके उपरान्त 'जाति' पारिभाषिक शब्द के प्राविधिक अर्थ का विवरण दिया गया है जिसका जातिवैज्ञानिक वर्गीकरण में मुख्य स्थान है। साथ ही जाति के स्थायी रूप के प्रमाणों की चर्चा इसमें है और वर्तमान समय तक जो जातिवैज्ञानिक समूह विद्यमान है, उनका भी विवेचन इसमें है।

इस अवरोक्त विवेचन के परिणाम स्वरूप यह कहा जा सकता है कि जाति-विज्ञान केवल शास्त्रीय विषय ही नहीं है बल्कि उसमें जातियों के वर्त्तमान समूहों में मिलने वाली विशेषताओं तथा गुणों का वर्णन है अत: जिन मुख्य समूहों में मनुष्य मिलता है उन्हें समझने के लिए इसका ज्ञान आवश्यक है।

अन्त में जाति-विज्ञान पर पड़नेवाले राजनीतिक सिद्धान्तों के प्रभाव का वर्णन है। आश्चर्य के साथ यह बात स्पष्ट हो जाती है कि बहुधा इनकी उत्पत्ति एक स्थान से हुई है—ये जननिक जाति-विज्ञान की अपेक्षा, जैसा कि प्राचीन जाति-विज्ञान में समझा जाता है, उपार्जितगुणवाद (Lamarkism) पर अधिक आधारित हैं।

पहला अध्याय

जाति-विज्ञान के प्रवर्तक

जाति-विज्ञान (एथनॉलॉजी) का विषय मानव-विज्ञान (एनथ्रोपॉलॉजी) तथा विशेष रूप से भौतिक मानव-विज्ञान का जाति सम्बन्धी संश्लेषण है। चूंकि मानव विज्ञान जीव-विज्ञान का प्रधान अंग है, इसलिए इस क्षेत्र में डारविन से मेण्डल तक तथा वर्तमान समय तक जो कार्य किया गया है, वह कुछ अंशों में जाति-विज्ञान के क्षेत्र में आता है। किन्तु प्रारम्भ में तथा वास्तव में प्राकृतिक चुनाव तथा पित्रागति-सिद्धान्त (मेण्डालिज्म) के ज्ञान के बहुत पूर्व ही ऐसे विद्वान् थे जो विशेष रूप से जाति-विज्ञान के क्षेत्र में रुचि रखते थे।

इसलिए जहाँ एक ओर जाति-विज्ञान का अंश होने के कारण जीव-विज्ञान उसका आभारी है, जीव-विज्ञान भी जाति-विज्ञान तथा मानव-विज्ञान के विद्वानों का आभारी है जिनमें से अधिकांश जीव-विज्ञान के युग के बहुत समय पूर्व ही नहीं बल्कि वर्तमान वैज्ञानिक अध्ययन के भी पहले कार्य प्रारम्भ कर चुके थे। उनके योगदान की अव-हेलना करने से बहुत से आवश्यक विचार तथा शक्तियां छूट जायंगी जिन्होंने प्रारम्भ में अकेले ही तथा बाद में जीव-विज्ञान के साथ मिलकर वैज्ञानिक ज्ञान के एक ऐसे क्षेत्र की स्थापना की जिसे हम जाति-विज्ञान कहते हैं।

मनुष्यों का प्रारम्भिक सेमिटिक तथा हेमिटिक वर्गीकरण

परिणामस्वरूप अधिक समय नष्ट न करके यह आवश्यक प्रतीत होता है कि संक्षेप में जाति-विज्ञान सम्बन्धी विचारधारा के मुख्य आधारों का तथा उनके कतिपय प्रवर्तकों का वर्णन किया जाय।

जातीय वर्गीकरण के तत्त्वों का वर्णन करनेवाले प्रारम्भिक विद्वानों में सुमेरि-यनों का नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने समूह की एकरूपता के लिए बालों के रंग के महत्त्व को समझा तथा 'काले सिर' शब्द का प्रयोग अपने वंश पित्र्यगुण का समानार्थक मानकर किया है।

मिस्र-निवासियों में वर्गीकरण के मूलभूत सिद्धान्तों को ग्रहण करने की अधिक

क्षमता थी। उन्हें हम उन राष्ट्रीय समूहो को, जिनसे उनका सम्पर्क हुआ, प्रकट करने के लिए एक रूढ़ रीति का उपयोग करते हुए पाते है। इसके लिए मिस्र निवासियों ने उन



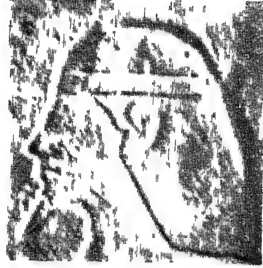
चित्र नं० १—४
(हिस्ट्री आफ़ एन्थ्रोपोलॉजी, पृष्ठ ४,)
ए० सी० हेडन (A. C. Haddon) **द्वारा।**
प्राचीन मिस्र में चित्रों के मिश्रित समूह : १८—२१, राजवंश
[इनमें चार जातीय प्रकार दिखलाये गये हैं--
१. **मिस्री** (Egyption) २. **लीबियन** (Lybyan)
३. **ईथियोपिक** (Ethiopic) ४. **सेमाइट** (Semite)
इससे स्पष्ट है कि प्राचीन मिस्र निवासियों को जाति-विज्ञान के गुणों का स्पष्ट ज्ञान था तथा इसमें जातीय प्रकारों को रंग और आकार द्वारा बतलाया है।]

जातीय गुणों का उल्लेख किया है, जो उक्त राष्ट्रीय समूहो में विशेष रूप से पाये जाते थे। इस प्रकार सुघटित चेहरा, गेहुआँ रंग तथा नीली आँखें 'एमोराइट' की विशेषताएँ मानी जाती थी।' ये लोग नार्डिक जाति के वंशज थे। ये शारीरिक लक्षण आज भी सीरिया (शाम) देश के निवासियों में कही कही देखे जा सकते है।

जिन स्थानों में जातीय विशेषता के लिए रंग का वर्णन नही किया जाता था, वहाँ भी चेहरे की आकृति तथा कापालिक आकार के विवरण से स्पष्ट होता है कि जातीय विशेषताओं का वर्गीकरण करने में उन्ही साधनों का प्रयोग किया गया है जैसा कि मिस्र निवासियों ने तथा उनसे प्रभावित फिलिस्तीन और सीरिया (शाम) के निवासियों ने किया है। यह ५ से १५ नं० के चित्रो में भली भांति प्रदर्शित है।

फिर भी विस्तृत जाति-वृत्तीय सर्वेक्षण की ओर जो प्रथम तथा वास्तविक प्रयास किया गया वह निरीक्षित भौतिक विशेषताओं की अपेक्षा ऐतिहासिक जाति-विज्ञान पर आधारित है। इसका उल्लेख हीब्रू बाइबिल के दसवें अध्याय में मिलता है। ऐसा विश्वास करने के लिए पर्याप्त कारण है कि यह संग्रह काफ़ी प्राचीन, सम्भवतः १२०० वर्ष या २००० वर्ष ईसा पूर्व का है।









चित्र नं० ५--८ (पृष्ठ १५)

(ए० एच० साइस द्वारा)

कारनाक (Karnak) से प्राप्त मिस्र-निवासियों के चित्र

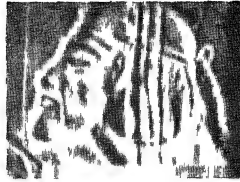
५. आर्मीनायड प्रकार के ऐशकेलन (Ashkelon) के निवासी।

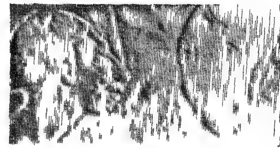
६. शैरिदाना (Shairdana) का सर। गहरी भ्रकुटि, ऊपर के लम्बे ओंठ, गाल की ऊँची हड्डियाँ, ये सब एटलान्टिक जातीय प्रकार के सूचक हैं।

७. मेडीटेरियन अथवा नार्डो-मेडीटेरिनियन प्रकार का दमिश्क (दमास्कस) का एक निवासी (लम्बी नाक, ढालदार माथा सम्भवतः नार्डिक प्रभाव के कारण है)।

८. एक शेकलशा का सर। गहरी भ्रकुटि (Supraorbital ridge) से एटलान्टिक प्रभाव का पता चलता है।

[मेडीनेट हबू (Medinet Habu) से प्राप्त, चित्र ६, ८]



चित्र नं० ९ से १२ (पृ० १६)

प्राचीन मिस्र-निवासियों के चित्र जिनसे स्पष्ट रूप से जातीय प्रकारों का पता चलता है।

९. उत्तरी सीरिया में लनवा (Lanva) से एक मिटानियन (Mitannian) मझोले आकार से लम्बे आकार तक की नाक, घनी भौहें, गाल की ऊँची हड्डियाँ तथा ऊँचा माथा सम्भवतः एटलान्टिक प्रभाव के सूचक हैं।

१०. एक रूटेनुअन (Rutennuan) जो कि आर्मीनायड प्रकार है।

११. टेम्पुल आफ़ थाटमीस तृतीय कारनाक (Kaınak) में स्थित एक सीरिया-निवासी का चित्र जो नार्डिक प्रभाव का द्योतक है।

१२. लुक्सर (Luxor) की दीवार से एक उत्तरी सीरिया निवासी, जो कि आर्मीनायड प्रभाव दिखलाता है।

इसमें जाति-विज्ञान के सम्बन्ध में त्रिगुणीय विचारधारा प्रस्तुत की गयी है जो कि मानवजाति के हेम, शेम तथा जाफेट[१] नामक तीन समूहों में वर्णित है। इन तीनों में तथा वर्तमान समय की भूमध्यसागरीय जातियों में, जिनमें ईथियोपिक तथा मरुस्थल प्रदेश की जातियाँ सम्मिलित हैं, और नार्डिक अल्पाइन-डाइनारिक तथा आर्मीनायड समूह में भी निकटतम समानता है।

जो भी हो, किसी ऐसी जाति या राष्ट्र का उल्लेख नहीं किया गया जो इन त्रिगुणीय समूहों के अन्तर्गत न आ जाता हो।

यूनानियों द्वारा मानवजाति का प्रारम्भिक वर्गीकरण

इसके पूर्व कि हम अन्य किसी लेखक को देखें जिसमें वर्गीकरण की ऐसी ही नैसर्गिक प्रवृत्ति हो, हम हेरोडोटस के समय में आते हैं। हेरोडोटस ने जेनेसिस वृत्तान्त के लेखक से कहीं अधिक लिखा है। निःसन्देह जेनेसिस वृत्तान्त ऐतिहासिक जाति-विज्ञान पर आधारित है। परन्तु यह एक सत्य जातीय निर्देशक है जिसके अनुसार ऐतिहासिक समूहों में अब भी वे प्रारम्भिक पित्र्यगुण पाये जाते हैं जिनसे उनकी उत्पत्ति हुई है। इसके विपरीत हेरोडोटस ने निश्चित रूप से रूप-वर्णनात्मक विशेषताओं के महत्त्व को समझा है तथा निःसंकोच उनका प्रयोग किया है। इस प्रकार एक्सरसस[२] की सेना में बालों की बनावट के आधार पर उन्होंने ईथियोपिया निवासियों का वर्गीकरण किया है। इसी प्रणाली को हेकेल[३] ने बाईस शताब्दी पश्चात् विस्तृत रूप दिया है।

हिप्पोक्रेटीज़ ने भी अपनी 'आन एयर्स वाटर्स ऐण्ड प्लेसेज़'[४] नामक पुस्तक में कई जातीय धारणाओं का विस्तार से वर्णन किया है। यह पुस्तक ४०० वर्ष ईसा-पूर्व के लगभग लिखी गयी है।

इसमें प्रथम बार कपाल के आकार का उल्लेख मिलता है जो कि उस समय से मानवविज्ञान का मूल आधार बन गया है। जैसा कि हम आगे देखेंगे, बहुत से अन्य प्राचीन तथा वर्तमान लेखकों की भाँति, हेरोडोटस ने जाति के बनने में परिस्थितियों के प्रभाव को अनुचित महत्त्व देने की भूल की है।

इसी समय के लगभग साइलेक्स ने भी गेब्स की खाड़ी के निवासियों के सम्बन्ध

१. Hem; Shem; Japhet. २. Xerxes. ३. Hackel.

४. अंग्रेजी में अनुवाद दो भागों में है, सिडेनहॅम सोसायटी, लन्दन (Sydenham Society, London) १८४९

में शरीर के कद तथा रंग को विशेष महत्त्व दिया, तथा उनको लम्बा और साफ रग का बतलाया है। जो हो, यह कार्य सुमेरिया तथा मिस्रवाले पहले ही कर चुके थे, अत इसमे उनकी अपेक्षा कोई विशेषता न थी।



चित्र नं० १७

(एफ़० के० गुन्थर द्वारा, रेशल एलीमेन्ट्स आफ़ यूरोपियन हिस्ट्री)

अर्नेस्ट हेकेल (Ernest Haeckel) **जर्मन पदार्थ-शास्त्रज्ञ**

(कुछ एटलान्टिक प्रभाव के साथ नार्डिक)

[हेकेल ने बालों के आकार को जातियों के वर्गीकरण का आधार माना है, जिसे हेरोडोटस ने दो सहस्र वर्ष पूर्व ही जातीय प्रकार के वर्गीकरण के लिए आधारस्वरूप मान लिया था।]

अरस्तू (३८४-३२२ ई० पूर्व) ने भी मानव तथा पशुओ मे प्राकृतिक विभिन्नता तथा समरूपता को माना है। टोपीनर्ड का उल्लेख करते हुए हम पूर्ण रूप से कह सकते हैं कि उसने मानव-वैज्ञानिक शब्द का उद्भव किया है। इसका प्रयोग उसने उन सभी लोगों के लिए किया है जिन्होने मानव[1] (मैन) सम्बन्धी लेख लिखे है।

१. **डा० पाल टोपीनर्ड** (Dr. Paul Topinard), **एन्थ्रोपोलॉजी, लन्दन, पृष्ठ १, १८७८**







चित्र नं० १३ से १५ (पृ० १६)

(ए० एच० साइस द्वारा, रेसेज़ आफ़ दि ओल्ड टेस्टामेन्ट से)

विभिन्न जातीय प्रकारों को प्रदर्शित करते हुए प्राचीन मिस्र-निवासियों के चित्र

१३. कारनाक में थाटमीस तृतीय के पाइलन (Pylon) से एक प्युनाइट (Punite) पूर्वी अथवा मेडीटेरेनियन की पूर्वी शाखा जिसमें कि कुछ हेमिटिक (Hamitic) प्रभाव भी हैं।

१४. कारनाक से शाशू (Shashu) का चित्र। यह मूलतः नार्डिक प्रकार है। इसकी पुष्टि इस बात से होती है कि अबूसिम्बेल (Abu-Sembel) में शाशू की त्वचा का रंग हल्का पीला, नीली आँखे तथा बाल, आँख की भौंहे तथा डाढ़ी लाल रंग में चित्रित है।

१५. मेन्टी-सती (Menti-Sati)—इसमें आर्मीनायड तथा मेडीटेरेनियन में संकरण का पता चलता है।



चित्र नं० १६ (पृ० १७, १८)

(एफ़० के० गुन्थर द्वारा, रेशल एलीमेन्ट्स आफ़ यूरोपियन हिस्ट्री)

हेरोडोटस की ऊर्ध्वांग प्रतिमा (लगभग ४९०——४२५ ई० पूर्व) एशिया माइनर (Asia Minor) के हेलीकारनेसस (Helicarnasus) में जन्म

बाँई ओर (थुसीडिडीज़ के साथ (४५४–३९६ ई० पू०) एथेन्स में एक आप्रवासी थ्रेसियन का पुत्र।

हेरोडोटस ने बालों के आधार पर जाति के वर्गीकरण की महत्ता समझने का आभास दिया है। इस प्रकार उसने मानो उस बात को पहले से सोच लिया जिसे हेकेल ने बाइस शताब्दियों के बाद सोचा।

रोम के जाति-वैज्ञानिक

लेटिन भाषा के एक लेखक ल्युक्रेशियस ने (९५-५५ ई० पूर्व) "प्रथम मानव" के सम्बन्ध में हाल में हुए कार्य की मानो पहले ही कल्पना कर ली थी। सुमेरियन लोगों में, बाइबिल में, आर्यों के वेदों तथा अवेस्ता में, काकेसायड जाति के अत्यन्त प्राचीन लोगों में तथा कुछ और प्राचीन लेखकों की रचनाओं में दिये विवरणों के अनुसार मानव की उत्पत्ति "स्वर्ण युग" में हुई है किन्तु इन सब के विपरीत ल्युक्रेशियस ने गुफा-मानव को ही प्रथम माना है।

टैसीटस (५५-१२० ईसवी) ने जाति-वृत्त के सम्बन्ध में अपनी उत्साहपूर्ण रुचि प्रदर्शित की। ऐंग्लो-सेक्सन तथा जर्मन निवासियों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में उसके कुछ मूलभूत सिद्धान्तों के लिए हम उसके आभारी हैं। जाति-विज्ञान में उसकी रुचि थी, यह उसके लेखों से ली गयी निम्नलिखित टिप्पणी से स्पष्ट है—

> "मैं उन लोगों से सहमत हूँ जिनके मतानुसार जर्मननिवासी अन्तर्जातीय विवाहों से अछूते है। यह जाति एक विशेष प्रकार की है तथा शुद्धता में अपने समान आप ही है। अतः संख्या में अधिक होते हुए भी सब जर्मनों की बनावट समान है। भयावनी-सी नीली आँखें, लाल बाल, लम्बा कद तथा शक्तिमत्ता ही उनकी विशेषताएँ हैं।"[1]

१. हक्सले तथा हेडन "दी यूरोपियन्स" के पृष्ठ ३६ में टैसीटस के उपर्युक्त प्रकरण की समालोचना करते हुए कहते हैं कि हमारे पूर्वजों में इस प्रकार की जातीय समरूपता जाँच पड़ताल से साबित नहीं होती। साथ ही लाल बाल आधुनिक जर्मन निवासियों में बहुत कम पाये जाते हैं, केवल उन लोगों को छोड़कर जो यहूदियों से उत्पन्न हैं।

निश्चय ही उन लोगों ने रीहेनग्राबर काल तथा उसके पूर्व के अमूल्य संग्रहों का अध्ययन नहीं किया, नहीं तो उन्हें इसमें सन्देह न रह जाता कि बहुत अंश तक जर्मन जाति में एकरूपता है।

साथ ही यदि हम 'रुटिले कामे' (Rutilae Comae) के अन्तर्गत स्वर्णिम तथा भूरे बालों की अपेक्षा (जो कि ऐंग्लो-सेक्सनों में अधिकांश पाये जाते हैं) लाल बालों को ही निश्चित रूप से मानें तो इसी के आधार पर हम कह सकते हैं कि स्काट-लैण्ड और आयरलैण्ड की पर्वतीय भूमि तथा वेस्टफ़ेलिया दोनों स्थानों में पायी जाने वाली एटलाण्टिक जाति में लाल बालों की प्रचुरता है। संभवतः इस जाति के कुछ

टैसीटस ने केवल मनुष्यों की शारीरिक विशेषताओं का ही अवलोकन नहीं किया, बल्कि उनसे सम्बन्वित मानसिक तथा नैतिक विशेषताओ पर भी ध्यान दिया।

पुनरुत्थान काल में जाति-विज्ञान के प्रति रुचि

मध्यकालीन युग में जाति (रेस) सम्बन्धी चेतना में बहुत ही कम उन्नति हो सकी। इसके विकास का सिलसिला हमें फिर पुनरुत्थान काल तथा उसके पश्चात् सुधार युग में ही मिलता है। किन्तु यह कार्य पूर्णतः समाप्त नही हो गया था और न ऐसा सम्भव ही था कि किसी समय में बौद्धिक विकास बिलकुल ही रुक जाय। अमेरिका देश की खोज और उसके पूर्व १३वी शताब्दी में मार्को पोलो के हिन्दूकुश पहुँचने की कथाएँ तथा 'सिया पुश' तथा 'ब्लाण्ड काफ़िर' के उद्‌घाटन इत्यादि ने मानव जाति के अध्ययन में रुचि बनाये रखने में सहायता की।

नूरेम्बर्ग के कलाकार ड्यूरर[१] के समय तक हमें मिस्र देश के जातिसम्बन्धी चित्रण के आलेखन में फिर सचाई देखने को मिलती है। उसके चित्रण में हम जर्मनी में बसनेवाली जाति का चित्र बदलता हुआ पाते है—प्रारम्भिक नार्डिक के बाद अल्पाइन, डाइनरिक तथा पूर्वीय बाल्टिक जातीय तत्त्व मिलते हैं जो दक्षिण तथा पूर्वी जर्मनी में अधिक पाये जाते है।

वास्तव में मानव-विज्ञान के आधुनिक रूप का आरम्भ हमें बेलजियम के पदुआ (Padua) निवासी प्रोफ़ेसर एन्ड्रियस वेसेलियस[२] के लेखन में मिलता है। उन्होंने

तत्त्वों के कारण ही प्राचीन जर्मनी की जनसंख्या में भी लाल बाल मिले जो कि टैसीटस के समय में पाये गये थे। इन एटलान्टिक जातिवर्गों में लाल बालों का मिलना अन्य जातीय समूहों की अपेक्षा अधिक पाया जाता है, अतः स्वर्णिम जनसंख्या में बालों का लाल रंग अधिक मात्रा में फैल जा सकता है। ऐसी स्थिति में स्वर्णिम रंग के मनुष्यों के बारे में किसी अजनबी को यह भ्रम हो सकता है कि ये अन्यों की अपेक्षा अधिक लाल रंग के हैं। इस प्रकार 'रटिले कामे' के कथन का, कि यही इन लोगों की विशेषता है, समर्थन होता है। फिर भी टैसीटस के परिणामों की सत्यता तथा इस सम्बन्ध में उसके अवलोकन पर सन्देह नहीं किया जा सकता।

१. Durer, 1471-1528

२. Professor Andreas Vasalius, 1518-1564





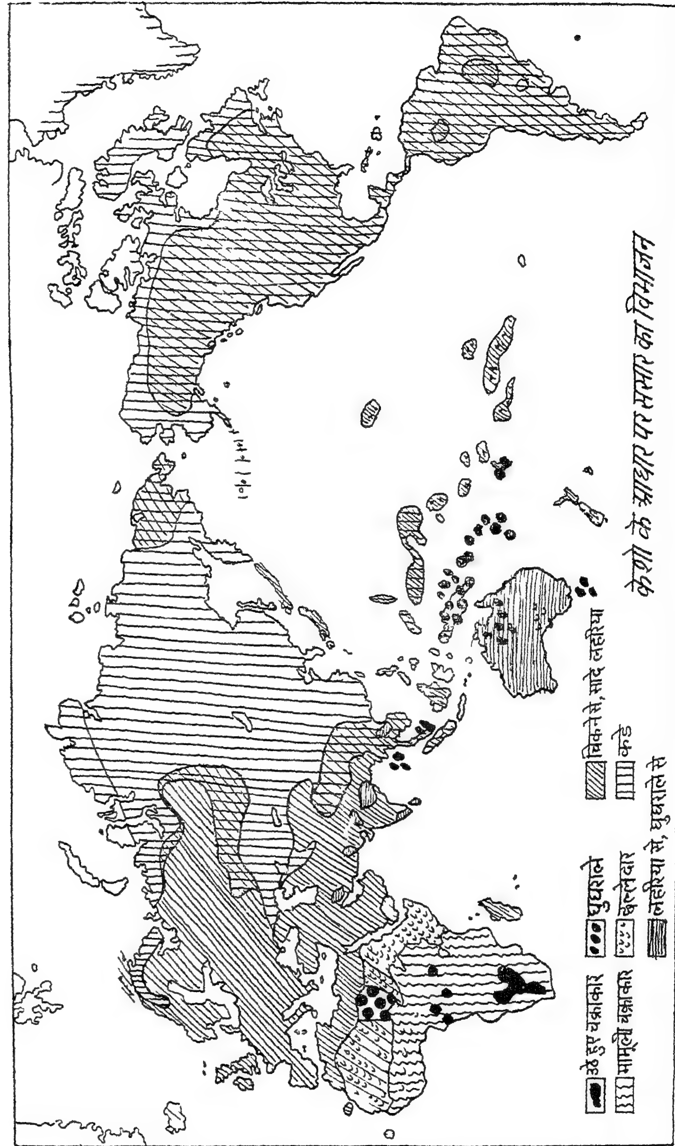
चित्र न० १८ तथा १९ (पृ० २०)

१८. ड्युरर (Durer) का स्वय खीचा चित्र

१९. ड्युरर की माता का चित्र

नूरेम्बर्ग के कलाकार एल्बर्ट ड्युरर (१४७१–१५२८) ने इन चित्रो को खीचा हे तथा इसी से उसकी जाति-विज्ञान के गुणो की समझ का पता चल जाता हे। दो तीन सहस्र वर्ष पूर्व के मिस्र-निवासियों की अपेक्षा उसमे प्राविधिक निपुणता कही अधिक थी।

उसके चित्रो मे दक्षिण जर्मनी की जाति सम्बन्धी विशेषताओं का यथार्थ चित्रण है।



चित्र न० २२—केशो के आकार के आधार पर ससार का विभाजन (पृ० २५)

ही भिन्न-भिन्न राष्ट्रों के कपाल के आकार की विभिन्नता पर अधिक जोर दिया, यद्यपि इसका कारण उन्होंने ठीक नहीं बतलाया।[१]

पुनरुत्थान काल के बाद के जाति-वैज्ञानिक

इनके पश्चात् पदुआ के ही हालैण्ड-निवासी एन्ड्रियन वान डर स्पीजेल[२] हुए जिन्होंने कपाल को नापकर गणित की रीति से उसका अध्ययन आरम्भ किया।

इनके पश्चात् इंग्लैण्ड-निवासी लन्दन के एडवर्ड टाइसन हुए जिन्होंने प्रथम बार पुरुषाभ वानर (एनथ्रोपाइड एप्स) का तुलनात्मक अध्ययन के लिए उपयोग किया है।

स्वाभाविक क्रम में मनुष्य के वर्गीकरण के लिए स्वीडेननिवासी लाइनियस[३] के हम आभारी हैं।

इसके उपरान्त १७७५ में ब्लूमेनवाख ने 'आन दि नेचुरल वेराइटी आफ़ मैन' पुस्तक लिखी तथा १७८५ में सोमरिंग की 'मेमॉयर अपान दि नीग्रोज' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई।[४]

इस विषय के अध्ययन में पीटर कैम्पर (१७२२-१७८९) का नाम भी उल्लेखनीय है। इसके पश्चात् व्हाइट ने १७७९ में 'दि रेगुलर ग्रैडेशन आफ़ मैन एंड एनीमल्स' नामक पुस्तक लिखी।

वर्तमान जाति-विज्ञान के प्रवर्तक

स्वीडेन-निवासी स्टाकहोम (Stockholm) के एण्डर्स रेजियस[५] से जातियों

१. वेसेलियस का मत था कि बेलजियम निवासियों के कपाल लम्बे होते थे क्योंकि नवजात बच्चों को बगल से लिटाया जाता था। जब कि जर्मन निवासियों के कपाल छोटे होते थे क्योंकि उनके बच्चों को पीठ के बल लिटाया जाता था। अब भी कुछ लोगों का ऐसा ही विश्वास है। हक्सले तथा हेडन के अनुसार ('दी यूरोपियन्स' पृष्ठ ३८) लाइपजिग के प्रोफेसर क्रुसे 'टाइम्स, नवम्बर १९, १९३४, पृष्ठ १२' पर इस मत का समर्थन करते हैं।

२. Andrian Van der Spiegel, 1578-1625

३. Linnaeus, 1707-1778

४. उन्होंने प्रथम बार गौरांग लोगों के लिए काकेशियन (Caucasion) नामक सामूहिक पारिभाषिक शब्द का प्रयोग किया है।

५. Anders Retzius 1795-1805

सम्बन्धी वर्तमान अध्ययन का युग आरम्भ होता है। आधुनिक काल में लम्बे तथा छोटे



चित्र नं० २०
(ए० सी० हेडन द्वारा, हिस्ट्री आफ़ एन्थ्रोपोलॉजी)
प्रोफसर जोहान फ्रेडरिक ब्लुमेनबाख़, गाटिञ्जेन (१७५२—१८४०)

[इन्होंने पहले ही मानव की ओर ध्यान दिया तथा वर्तमान समय में यह प्रथम वैज्ञानिक है जिन्होंने जाति-विज्ञान को उचित स्थान दिया है।

इन्होंने अपने 'दि जेनेरिस ह्यूमेनी वेराइटेट नेटीवा, १७७५—१७९५' (De generis humani varietate nativa) **में माप के नियम के आधार पर जातीय वर्गीकरण किया है।**

इनको हम कपाल सम्बन्धी विज्ञान का प्रवर्तक कह सकते है क्योंकि चेहरे तथा कपाल की माप लेनेवाले ये ही प्रथम थे।]

कपालोवाली जातियो की धारणा का विकास और अमूल्य कापालिक देशना का आविष्कार उन्ही की देन है।

इनके पश्चात् फ्रान्स के फ्रान्स्वा पाल ब्रोका[1] तथा उनके शिष्य टोपीनर्ड[2] का नाम

१. Francois Paul Broca, 1824-80
२. Topinard, 1830-1911

आता है जिन लोगों ने कापालिक माप पर अधिक ध्यान केन्द्रित रखा है। इन्हीं लोगों ने फ्रान्स की जातियों सम्बन्धी अध्ययन की विचारधारा की नींव डाली।



चित्र नं० २१
(एफ़० के० गुन्थर द्वारा, रासेनकुन्ते योरोपाज)
डा० पियरे पाल ब्रोका (१८२४—'८०)
(अल्पाइन प्रकार, कुछ एटलान्टिक तथा नार्डिक अन्तर्मिश्रण के साथ)

[यह फ्रान्स के एक विख्यात सर्जन थे जिनके मन में १८४७ के पश्चात् मानव विज्ञान के प्रति रुचि उत्पन्न हुई। सोसाइटी दि एन्थ्रोपोलॉजी दि पेरिस तथा एकलेदि एन्थ्रोपोलॉजी (१८७६) के बनने में उनका विशेष हाथ था।

उन्होंने कपाल को मापने के अनेक यन्त्रों का आविष्कार किया है तथा जाति-वैज्ञानिकों द्वारा अनेक नियमों के प्रयोग को समरूपता प्रदान की है।]

इंग्लैण्ड में डेविज़ तथा टर्नम ने सन् १८५६ में 'क्रेनिया ब्रिटेनिका' नामक प्रथम पुस्तक प्रकाशित की तथा इसी से आंग्ल देशीय कापालिक अध्ययन की नींव पड़ी।

सुपरमैन (Supermen) सिद्धान्तों का उद्भव

इसी समय काउण्ट आर्थर जी गोबिनो[1] का, जो कि वैज्ञानिक न होकर एक लेखक थे, योगदान हमें मिला (हालां कि यह शोचनीय ही माना जायगा)। इसका कुछ प्रभाव

१. Count Arthur G. Gobineau, 1816-62

हम लोगों के समय तक शेष है। उन्होंने अपनी 'एसे सुर ल' 'आनेगालिटे डेस युमान'[१] पुस्तक में नार्डिक जाति की कथा काफ़ी ज़ोर से प्रचार करने के लिए लिखी है। जैसा कि अब हम जानते हैं, उसमें आंशिक सत्य ही है।

जर्मन जाति-विज्ञान का आधार

गोबिनो के ही समकालीन जर्मनी के एक महान् जाति-विज्ञान के ज्ञाता, रूडोल्फ़ वीरचाउ (१८२१–१९०२) हुए हैं। इन्होंने मध्य यूरोप में प्रथम बार तथा मुख्यत: जर्मन सरकार द्वारा किये गये १८७६ में ६० लाख स्कूल के बच्चों के आपरीक्षण में विस्तार के साथ अन्वेषणात्मक कार्य किये हैं।

जातियों सम्बन्धी इटली के अध्ययन की धारा

इस समय तक ऊपर कहे गये फ्रान्स के तीन वैज्ञानिकों को छोड़कर यूरोप के सम्पूर्ण जाति-विज्ञान का अध्ययन उत्तरी यूरोप के राष्ट्रों में मुख्यत: हालैण्ड-बेलजियम, इंग्लैण्ड तथा स्वीडेन के वैज्ञानिकों द्वारा ही किया गया है।

सन् १८४१ में लैटिन निवासियों में मानव विज्ञान के एक महान् ज्ञाता, जी सर्जी (G. Sergi) नामक वैज्ञानिक का जन्म हुआ। कपाल के ठीक माप की अपेक्षा उन्होंने आकार के अध्ययन की नींव डाली। इनके हम आभारी हैं। यही जातियों के वर्गीकरण के मानव-ईक्षीय (एन्थ्रोपोस्कोपिकल) निरूपण का आधार बनी जिसकी चर्चा आगे के अध्याय में की जायगी।

ब्रिटिश जाति-विज्ञान का प्रारम्भ

डाक्टर जान बेडो[२] अंग्रेजी जाति-विज्ञान के वैषयिक अध्ययन (objective study) के प्रवर्तक हैं जो कि जर्मनी के वीरचाउ[३] वैज्ञानिक के समकालीन हैं। आज-कल जो कुछ भी हम अंग्रेज़ों के रंग के विषय में जानते हैं वह उन्हीं के अथक परिश्रमों का फल है। परन्तु जहाँ पर उन्होंने रंग को वर्गीकरण का आधार बनाया है वहाँ वे एक अन्य अंग्रेज़ ब्राडले के अनुयायी बन गये हैं।

१. Essaci Sur linegalite des humains, १८५३-'५

२. Dr. John Beddoe, 1826-1911

३. Virchow

विश्व जाति-विज्ञान के आधुनिक वर्गीकरण का प्रारम्भ

सन् १८६० में काकेशियन, मंगोलियन, इथियोपियन तथा हाटेनटाट[1] नामक चार मूल तथा तेरह गौण जातियों के निरूपण के लिए हम जियोफ्रे हिलेरे[2] के आभारी हैं।

इसके कुछ ही समय पश्चात् टामस हक्सले ने नेग्रायड, आस्ट्रालायड, मंगोलायड, ज़ैन्थाक्राइक तथा मेलनोक्राइक नामक पाँच मूल तथा चौदह गौण जातियों का निरूपण किया है। सन् १८७९ में हेकेल ने बालों के प्रकारों के आधार पर वर्गीकरण करने का प्रयत्न किया है तथा १८८७ में दे क्वाट्राफाज़[3] ने गौरांग, काले तथा पीत तीन मुख्य रंग की रूढ़ियों की स्थापना की।

उपर्युक्त विवरण से यह भली-भाँति प्रकट होता है कि जाति (रेस) सम्बन्धी प्रश्नों की ओर प्राचीन काल से ही मनुष्य का ध्यान जाता रहा है। इसमें सन्देह नहीं कि मानव-विज्ञान कई दृष्टियों से एक नया विषय है, फिर भी यह प्राचीन विज्ञानों में से है जिसकी ओर मनुष्यजाति ने ध्यान दिया है।

१. Hottentot २. Geoffrey Hilaire ३. de Quatrefeges

दूसरा अध्याय

"जाति" का अर्थ

जाति-विज्ञान केवल मानव-विज्ञान सम्बन्धी विचार का संश्लेषण ही नहीं है वल्कि वह मुख्यतः जाति (प्रजाति, रेस) का विज्ञान है। हमें मनुष्य का जातियों में वर्गीकरण करने का तथा उसकी उत्पत्ति **और** वितरण की समस्याओं पर विचार करने का अवसर इस पुस्तक के अगले भाग तक मिलना सम्भव न होगा, इसलिए यह उचित होगा कि इस परिचयात्मक अध्याय में उन पाठकों का जो कि मानव-विज्ञान के ज्ञाता नही है, इस ओर ध्यान आकर्षित कर दिया जाय कि जाति-वैज्ञानिक तथा मानव-विज्ञान के ज्ञाता 'जाति' शब्द का प्रयोग प्रति दिन के प्रचलित अर्थ से बिलकुल भिन्न एक निश्चित अर्थ में करते है।

"जाति" शब्द का अर्थ

सभ्यता के साहित्य में 'जाति' शब्द का प्रयोग प्रचुरता से तथा अनेक प्रकार से हुआ है किन्तु बहुधा न तो किसी निश्चित अर्थ में वह प्रयुक्त होता है और न एक ही अर्थ में उसका प्रयोग किया जाता है। अच्छे विद्वान् लेखक भी इंग्लिश, लैटिन तथा जर्मन 'जातियों' की चर्चा करते पाये जाते है, जो कि एक वैज्ञानिक लेखक के लिए पूर्णतया अमान्य प्रयोग है। जब कि इस शब्द का ठीक तथा वैज्ञानिक प्रयोग प्रचलित है, तब अवश्य ही, कम से कम मानव-विज्ञानसम्बन्धी रचना में, किसी गलत प्रयोग को प्रोत्साहन नही देना चाहिए।

यदि आज हम आर्यो की जाति या रूसी, फ्रांसीसी अथवा सेमेटिक जाति की बात कहते है, तो हमारा यह प्रयोग तभी क्षम्य माना जा सकता है जब हम यह दिखला दें कि भाषा, संस्कृति या इतिहास अकेले या एक साथ मिलकर एक पृथक् जीव-वैज्ञानिक सत्ता का निर्माण कर सकते है (अर्थात् इस विभेद के कारण कुछ लोग एक जाति के और दूसरे अन्य जाति के माने जा सकते है)। [वास्तव में ऐसी बात नहीं है इसलिए 'जाति' शब्द का यह प्रयोग चिन्त्य है।]

अंग्रेजी भाषा में मनमाने और गलत अर्थ में प्रयुक्त इस शब्द का पहला प्रयोग

हमें सोलहवीं शताब्दी में मिलता है। फॉक्स ने अपनी पुस्तक "बुक आफ़ मार्टर्स" में, जो सन् १५७० में प्रकाशित हुई थी, अब्राहम की जाति (रेस) का उल्लेख किया है। वास्तव में बाइबिल की प्रारम्भिक प्रतिलिपि में इसके स्थान पर बीज अथवा पीढ़ी या वंश-परम्परा का प्रयोग हुआ है। यह वास्तव में इटली के राज़ा (razza) शब्द से लिया गया है[1] जिसका अर्थ परिवार, वंशानुक्रम, नस्ल अथवा प्रकार हैं। अंग्रेज़ी में प्रथम बार इसका प्रयोग तथा इटली की भाषा में इसका मौलिक अर्थ दोनों ही उसी भाव के द्योतक हैं जो जाति-विज्ञान में 'जाति' से हमें अभीष्ट है। इस शब्द का अंग्रेजी में यह प्रथम बार का प्रयोग तथा इटली में उसका अर्थ बड़े महत्त्व का है क्योंकि यहाँ पर इस शब्द का प्रयोग एक ही रक्त के उन समान पूर्वजों के वंशजों के लिए हुआ है, जो स्वंयं भी एक ही रक्त के थे। परिणामतः जब कि आजकल के इतिहासज्ञ, साहित्यिक तथा राजनीति-विचारक इसका प्रयोग अनिश्चित अर्थ में करते हैं अधिकांश वैज्ञानिकों द्वारा जीव-विज्ञान सम्बन्धी अर्थ में जाति शब्द का प्रयोग उचित ही है।[2]

१. पुरानी जर्मन भाषा में यह रीज़ा (reiza) है जिसका अर्थ रेखा है तथा जो कि सम्भवतः लेटिन शब्द रेडिक्स (radix) से जिसका अर्थ मूल (root) है, परिवर्तित हुआ है।

२. हक्सले तथा हेडन ने 'वी यूरोपियन्स' के पृष्ठ १९ में अधिकांश वैज्ञानिक लेखकों के दृष्टिकोण से विपरीत इस शब्द का वर्तमान अनिश्चित प्रयोग ठीक माना है। कोई भी यह सोचे बिना नहीं रह सकता कि फ्रान्स के उस विद्वान् लेखक का कथन ठीक ही है, जब वह कहता है कि—

"फ्रान्स में हमारे श्रेष्ठ इतिहासकारों तथा प्रकृतिवादियों ने बहुत पहले ही जाति, मनुष्य, राष्ट्र, भाषा, संस्कृति अथवा सभ्यता ऐसे शब्दों से पैदा अनिश्चितता की ओर ध्यान आकर्षित करने का प्रयत्न किया है। अब भी इन विभिन्न शब्दों का अन्तर तथा उनका उचित प्रयोग पढ़ी-लिखी जनता तक नहीं समझ पायी है। अति प्रख्यात तथा शास्त्रीय विषयों के लेखकों की यह निरी लापरवाही है जो आज भी उन्हें मनुष्य के समूहों के सम्बन्ध में लिखते समय जाति शब्द का नितान्त गलत अर्थ में प्रयोग करने देती है। इसे पूर्ण रूप से समझ लेना चाहिए कि "जाति" शब्द मुख्यतः ऐसे प्राकृतिक समूह के लिए ही प्रयुक्त किया जाता है जो एक भौतिक अनुक्रम का द्योतक हो। किसी देश के मनुष्य, राष्ट्रीयता, भाषा तथा रीति-रिवाज़ों से, जो कि कृत्रिम समूहों में मिलते हैं, इसका कोई सम्बन्ध नहीं। ये कृत्रिम समूह किसी भी प्रकार से मानव-वैज्ञानिक

जाति शब्द का प्रयोग, यदि उसका कोई वास्तविक प्रयोग रखना है तो केवल इस जीव-वैज्ञानिक अर्थ तक ही सीमित रखना चाहिए। इसलिए हम यहूदी जाति, इंग्लिश जाति अथवा जर्मन जाति नहीं कह सकते, क्योंकि ये समूह विभिन्न पूर्वजों की नस्लों के मिश्रण हैं। परन्तु हम नेग्रायड अथवा काली जाति, काकेसायड या श्वेत जाति तथा मंगोलायड या पीली जाति कह सकते हैं। मनुष्य के ये विशाल समूह कितने ही छोटे वर्गों में क्यों न विभाजित हो जायें परन्तु उनके वंशजों में नियमित रूप से समानता बनी रहती है। चूंकि ये विशाल समूह सम्भवतः जातियों के वैयक्तिक समूहों में विभाजित होते हैं, मनुष्य के इन महान् वर्गों के लिए वर्ग (स्टाक) या उपजाति (स्पीसीज किस्म) ऐसे शब्द का प्रयोग करना अधिक सुविधाजनक होगा।

जाति और अन्तःप्रसूत जातिसम्बन्धी एकक

यद्यपि हम संस्कृति, राष्ट्रीयता तथा भाषा से 'जाति' शब्द को अलग करने के लिए बाध्य हैं, फिर भी हम इनके अस्तित्वों की अवहेलना नहीं कर सकते। मनुष्य के वंशजों की उत्पत्ति में उनका प्रभाव भी अवश्य पड़ता है। यह स्पष्ट है कि पुराने राष्ट्र के मनुष्यों में, जिनकी संस्कृति तथा भाषा एक है, जो कि सैकड़ों वर्षों से प्राकृतिक सीमाओं से घिरे हैं तथा अपनी सीमाओं के द्वारा रक्षित हैं और जिनका इतिहास भी एक ही रहा है, विस्तृत रूप से सभी वर्गों तथा क्षेत्रों में अंतःप्रसवन होना स्वाभाविक ही है। इसका अवश्यंभावी परिणाम एक ऐसे समूह का निर्माण होता है जिसे जीव-संसार में कुल, समूह या नस्ल (ब्रीड) कहते हैं, हालाँ कि प्रारम्भ में जातिसम्बन्धी वे तत्त्व कितने ही भिन्न रहे हों जो कि समूह के निर्माण के लिए उत्तरदायी हैं।

यहूदी इसका बहुत उपयुक्त उदाहरण है। यद्यपि वास्तव में वह सेमिटिक जाति से काफ़ी भिन्न है बल्कि इसके विपरीत उसकी जातीय बनावट में यह तत्त्व सब से कम महत्त्व का है, किन्तु अन्य लोगों से यहूदियों का पृथक् रहना तथा उनका पार-

नहीं माने जा सकते। ये पूर्णतया इतिहास की देन हैं जिनके द्वारा ही उनकी उत्पत्ति हुई है। इस प्रकार ब्रेटन कोई जाति नहीं, परन्तु एक देश के निवासी हैं, फ्रान्सीसी जाति नहीं, वरन् फ्रान्सीसी राष्ट्र है, कोई आर्य जाति नहीं बल्कि एक लैटिन सभ्यता है। प्राक्कथन पृष्ठ ६०, रेस एेण्ड हिस्ट्री (युजिनी पिचर्ड कृत), लन्दन १९२७, दूसरा संस्करण।

स्परिक अन्तःप्रसवन, इन दोनों के कारण अधिकांश यहूदियों में आश्चर्यजनक रूप से कुछ गुणों या विशेषताओं का निर्माण हुआ है।

इस प्रकार यद्यपि व्यक्तिगत रूप में कितने ही यहूदी, अपने जातिगत रूप में, एक दूसरे से काफ़ी भिन्न हैं, फिर भी अधिकांश के चौड़े तथा ऊँचे कपाल, गठे शरीर, मोटी गर्दन तथा एक बहुत बड़ी संख्या के लोगों में 'यहूदी' नाक भी मिलती है। जिन थोड़े से लोगों में स्वर्ण केश मिलते हैं, जो कि वास्तविक यहूदी नहीं हैं, उनमें भी यह करीब करीब तय है कि इनमें एक अथवा अधिक गुण देखे जा सकते हैं।

इसमें तथा जातीय तत्त्वों के पृथक्करण के अन्य सभी दृष्टान्तों में एक ऐसी विशेष सन्तति (स्ट्रेन) का निर्माण होता है जिसे हम वास्तव में जातीय एकक अथवा किसी न किसी प्रकार का समूह कह सकते हैं। किसी भी प्रकार से यह एक "जाति" (प्रजाति) नहीं है परन्तु यह मनमाने तौर से एक दूसरे में मिली हुई नस्लों का विजात समूह मात्र भी नहीं है।

जाति तथा मिश्रित समूह

यहूदियों जैसे मनुष्यों के वंश तथा मिश्रित समूह जो कि विजात अथवा विलक्षण पशुओं के वर्गीकरण से मिलते जुलते हैं, मेक्सिको और अमेरिका जैसे नये राष्ट्रों में भली भाँति देखे जा सकते हैं।

यहाँ पर राष्ट्रों की नवीनता तथा विभिन्न तत्त्वों के कारण अन्तःप्रसूत समूह न बन सके। अतः उन नस्लों को जिनसे कोई संकरित समूह बनता है तथा मेक्सिको के उदाहरण में केवल मेडिटेरेनियन (साथ ही कुछ एटलाण्टिक, नार्डिक तथा डाइनरिक) तथा अमेरिंड को इतना समय नहीं मिल सका कि ठीक प्रकार से टूट कर मौलिक जातीय तत्त्वों को एक मिश्रित रूप दे सकते और साथ ही एक राष्ट्रीय ढाँचा कायम रख सकते।

दिये हुए चित्रों से (संख्या २३–२५) मेक्सिको के वर्तमान प्रकारों में कुछ विभिन्नता का पता चलता है। समय के साथ यह विभिन्नता समस्त जन-संख्या में क्रमशः देख पड़ेगी, जैसे जैसे वे अनेक गुण जो मूल समूहों की विशेषता रहे हैं काफ़ी आपस में मिलकर और बदल कर सम्पूर्ण जनसंख्या में व्याप्त हो जायेंगे।[1]

१. कुछ गुण अवश्य ही जुड़े होते हैं इसलिए वे उसी व्यक्ति में मिलेंगे। परन्तु अन्य, जो जुड़े नहीं होते, बहुत से उदाहरणों में उन गुणों से जो कि मूल वंश-समूहों से

केवल इन्हीं आधारों पर हमें राष्ट्र, देश-विशेष के मनुष्य (पीपिल) इत्यादि (पारिभाषिक शब्दों) का कुछ मूल्य करना चाहिए, जब कि उनका सम्बन्ध उन प्राचीन समूहों से हो जो अपेक्षाकृत अलग रहकर काफ़ी लम्बे समय तक विस्तृत रूप से अंतः-प्रसवन करते रहे हैं।



टोलेडानो　　कार्डेनास　　सेडिल्लो

चित्र नं० २३—२५

मेक्सिको निवासियों के तीन प्रकार

(इलस्ट्रेटेड वीकली, लन्दन १६।४।१९३८ से)

[जो कि युद्ध-पूर्व के इन तीन राजनीतिज्ञों के चित्रों में देख पड़ते हैं।

२३. टोलेडानो, अंश में अथवा मुख्यतः मेडिटेरेनियन जाति के हैं।

२४. सेडिल्लो, पूर्णतया अथवा मुख्यतः अमेरिन्ड इन्डियन (Amerind Indian).

२५. कार्डेनास, मिश्रित वंशों की सन्तान। यह जाति (रेस) का एक "द्रवणशील पात्र" है।]

जाति तथा राष्ट्रीय प्रकार

परिणामतः कुछ उदाहरणों में वास्तविक राष्ट्रीय प्रकार या नमूने पाये जाते हैं। विश्व के लोगों ने एकमत से 'यहूदी' प्रकार, 'इंग्लिश' प्रकार, 'फ्रेन्च' प्रकार इत्यादि को (पृथक् जाति-समूहों के रूप में) मान लिया है। प्रत्येक समूह में जातीय तत्त्वों का

सम्बन्धित रहते हैं, अलग हो जाते हैं। इस विषय पर अगले अध्यायों में पूर्ण रूप से विचार किया गया है।

कितना ही बड़ा सम्मिश्रण हो, निःसन्देह उनमें एक औसत विद्यमान है जिसे मनुष्यों ने स्वीकार कर लिया है।

हक्सले तथा हेडन[1] से, जो एक साधारण (टाइप) प्रकार में विश्वास की बात स्वीकार नहीं करते, हम सहमत नहीं, क्योंकि हमारे सभी अनुभवों से यह चीज़ स्पष्ट रूप से विद्यमान है तथा यह उस स्थिति में अवश्यम्भावी है जहाँ बाह्य जगत् से अपेक्षाकृत पृथक्ता हो तथा अन्तर्विवाह की पूर्ण स्वतन्त्रता हो।

अंतःप्रसूत राष्ट्रीय प्रकार

वर्तमान अंग्रेज़ सिद्धान्ततः अन्य दूसरे अंग्रेज़ से अनेकों बार अगणित विभिन्न शाखाओं द्वारा सम्बन्धित है। उसके अन्तःप्रसूत स्वरूप के कारण यह अवश्यम्भावी सा हो जाता है कि उसे बहुलांश में एक विशिष्ट राष्ट्रीय प्रकार (टाइप) प्राप्त हो जाय।

नारमन विजय से, जिससे अन्तिम बार ब्रिटेन में नये रक्त का बड़ी मात्रा में आगमन हुआ, अब तक ३६ पुश्त बीत चुके हैं। प्रत्येक मनुष्य के माता-पिता, चार पितामह तथा आठ प्रपितामह आदि होते हैं। इस हिसाब से ३६ पुश्त पहले प्रत्येक अंग्रेज़ के ६८,४०१,७९०,९७६ पूर्वज थे। चूंकि उस समय ब्रिटेन में लगभग २० लाख की ही जनसंख्या थी अतः इसका मतलब यह हुआ कि प्रत्येक अंग्रेज़ एक दूसरे से औसतन ३४२०१ बार सम्बन्वित हैं। चूंकि विवाह-सम्बन्धों का क्षेत्र प्रायः असीमित नहीं होता और कुलीन लोग, किसान, धनिक, योद्धा तथा शहर के नागरिक सभी अपनी अपनी श्रेणी में ही विवाह-सम्बन्ध करना पसन्द करते थे, यहाँ तक कि किसान तथा छोटी श्रेणीवाले तो अपने वर्ग में ही नहीं अपने गाँव या कस्बे में ही अन्तर्विवाह करते थे, अतः स्पष्ट है कि सभी बड़े अंग्रेजी वर्गों तथा प्रदेशों के व्यक्ति आपस में इस बड़ी संख्या अर्थात् ३४०२१ बार से कहीं अधिक बार सम्बन्धित हैं।

अपने ही वर्ग या रुतबे में विवाह करने के सिद्धान्त को मानते हुए भी यह बात समझ में नहीं आती कि कैसे कोई अंग्रेज किसी अन्य अंग्रेज से रक्त द्वारा सम्बन्धित हुए बिना बचा रह सकता है, जब कि प्रत्येक अंग्रेज़ कुलीन पुरुष दूसरे कुलीन अंग्रेज़ से तथा प्रत्येक अंग्रेज़ दस्तकार दूसरे अन्य अंग्रेज़ व्यापारी से औसतन ३४०२१ से अधिक बार सम्बन्धित है।

१. 'दी यूरोपियन्स' हक्सले तथा हेडन, पृष्ठ २६

फिर भी, जैसा कि अगले अध्याय में विदित होगा, अंग्रेजों में अंतःप्रसवन के इस सीमा तक पहुँच जाने के उपरान्त भी प्रादेशिक जातीय विशेषताएँ नहीं मिट सकी हैं।

कुछ भी हो, इन आँकड़ों के आधार पर यह स्पष्ट है कि कुल मिलाकर एक 'इंग्लिश' प्रकार अवश्य होना चाहिए, चाहे उस औसत प्रकार के अन्तर्गत प्रादेशिक क्षेत्रों में अथवा वर्गों में पृथक्करण के कुछ निश्चित प्रमाण क्यों न मिलें।

इस उदाहरण में ही यदि हम एक मुख्य बात जोड़ देते हैं कि अंग्रेज जिन मूल जाति-समूहों (स्टाक्स) से मिलकर बने हैं, वे सब काकोसायड प्रकार के हैं, जिसमें 'नार्डिको' का अंश सर्वोपरि है तो यह स्पष्ट हो जाता है कि विस्तृत विभिन्नता तथा प्रकारों की प्रादेशिक विभिन्नता के विस्तृत पृथक्करण की गुंजाइश अनेक वर्तमान राष्ट्रों की अपेक्षा अंग्रेजों में सीमित है।

विभिन्नता से सम्बन्धित जाति तथा राष्ट्रीयता

कुछ भी हो, अंग्रेजों की तरह के समूह में, चाहे वह कितना ही अंतःप्रसूत हो, जाति (रेस) से अधिक विभिन्नता है। साधारणतया इसलिए कि प्रारम्भ से ही अंग्रेज एक ही जाति से मिलकर संयुक्त नहीं हुए हैं तथा यदि वे सदैव अन्तःप्रसवन करते रहे तो वे एक ऐसी स्थायी जीव-वैज्ञानिक वस्तु, जिसे हम जाति (रेस) कहते हैं, नहीं उत्पन्न कर सकते।

इसलिए कई उदाहरणों से यह परिणाम निकालना उचित ही मालूम पड़ता है कि राष्ट्र अथवा किसी देश के मनुष्यों के अस्तित्व का जाति-वैज्ञानिक अर्थ हो सकता है, यद्यपि वे वास्तविक "जाति" से कुछ कम रह जाते हैं, इसलिए जीव-वैज्ञानिक दृष्टि से उनका भी कुछ महत्त्व है।

अन्य उदाहरणों में, विशेष रूप से नये समूहों में या उनमें जो किसी अंश में पृथक् रहने से लाभान्वित नहीं हैं, समूह केवल राजनीतिक या कानूनी हैं जिनका जीव-वैज्ञानिक महत्त्व कुछ भी नहीं अथवा बहुत थोड़ा है। ऐसा अमेरिका-निवासियों के सम्बन्ध में कहा जा सकता है जो अधिकांश यूरोप-निवासियों और इसलिए काकोसायड जाति की लगभग सभी शाखाओं के सम्मिश्रण से बने हैं।

राष्ट्रीयता तथा राष्ट्रवाद

राष्ट्र का जीववैज्ञानिक आधार भले ही बहुत थोड़ा हो अथवा कुछ भी न हो, फिर भी उसमें धर्म से कुछ ही कम मनोवैज्ञानिक शक्ति होती है जिसकी कुछ विवेचना करना आवश्यक है।

वास्तव में इधर जर्मन विचारधारा के कुछ क्षेत्रों में, जैसे कि प्राचीन काल में 'यहूदी' विचारधारा में, शायद राष्ट्र में धर्म के समान शक्ति थी। लगभग ऐसा ही वर्तमान समय में भारत के कुछ भागों की स्थिति है, मुख्यतः वहाँ जहाँ राष्ट्रीयता के साथ हिन्दू धर्म का भाव भी मिल जाता है।

१९वीं शताब्दी में यूरोप के कुछ भागों में तथा २०वीं शताब्दी तक जर्मनी में फैली हुई और आजकल एशिया में उत्पन्न राष्ट्रीयता की लहर इसकी शक्ति की महत्ता सिद्ध करती है।

विभिन्न देशों के लोगों के आधार पर, जिनका जीव-विज्ञान की दृष्टि से अनिश्चित अस्तित्व है, ऐसी शक्तियों का निर्माण किया गया है जो कि समस्त विश्व की स्थिति को बदल दें।

भाषावार समूहों में एकाएक राष्ट्रीयता की भावना जाग उठी और बालकन निवासियों ने तुर्क लोगों को यूरोप के बाहर निकाल दिया। राष्ट्रीयता के विचार के अचानक प्रबल हो उठने से ही जर्मनी ने नेपोलियन के दाँत तोड़ दिये। इधर इंग्लैण्ड के किनारे किनारे केल्टिक लोगों के क्षेत्र में चारों ओर अंग्रेज़ी प्रभावों के विरुद्ध पुनः विद्रोह तथा रुकावट का रवैया शुरू हो गया था। अन्त में उसने हिंसात्मक रूप ग्रहण कर, जो इसके पूर्व की शताब्दी के आन्दोलनों की विशेषता थी, इस शताब्दी में आयरलैण्ड को पृथक् राष्ट्र का रूप देने में सफलता प्राप्त कर ली।

इस विचार का प्रभाव इतना अधिक था कि अमेरिका में आयरलैण्ड के निवासी, जो कि ब्रिटिश साम्राज्य के नागरिक अब नहीं रह गये थे बल्कि दूसरे राज्य के नागरिक थे, अपने को इस जीव-वैज्ञानिक रहस्यमयी वस्तु का, जिसे 'राष्ट्र' कहते हैं, एक अंग समझते थे तथा विद्रोहियों को अमेरिकी डालर के रूप में युद्ध की सामग्री से सहायता करते थे।

इनमें से कुछ उदाहरणों में, जैसे कि परस्पर विरोध रखनेवाले केल्टों तथा एंग्लो सेक्सनों में, सम्बन्धित जन-समूहों के बीच जातिसम्बन्धी कुछ जीववैज्ञानिक अन्तर भी रहता है। इसके कारण दोनों के स्वभाव में भी कुछ असमानता देख पड़ती है, जो अन्य तनाव पैदा हो जाने पर इतनी बढ़ जा सकती है कि उसकी अवहेलना न की जा सके।

इसमें सन्देह नहीं कि एशिया के राष्ट्रवाद में आज भी कुछ भागों में साथ साथ मिला हुआ जातित्ववाद (रेशलिज़्म) का कुछ अंश पाया जाता है। इस उदाहरण में

जहाँ तक ऐसा है वास्तव में वह जीववैज्ञानिक अन्तर का भी सूचक है, क्योंकि उसमें काकेसायडों के विरुद्ध प्रवृत्ति पायी जाती है।[1]

कुछ भी हो, इस तथ्य से कि कुछ नये समूह, जैसे कि अमेरिका-निवासी, काफ़ी उग्र राष्ट्रवाद का अनुभव कर सकते हैं, यह संकेत मिलता है कि वह जाति-वैज्ञानिक कारणों के मिलने से भले ही अधिक तीव्र हो जाय परन्तु यह पूर्ण रूप से ऐसे संयोग पर निर्भर नहीं है।

राष्ट्रवाद का जीववैज्ञानिक आधार

जातिवैज्ञानिक आधार को अधिकतर बौद्धिक आधार से रहित आधुनिक काल की उपज मानकर टाल दिया जाता है, फिर भी यह निरे उन्माद से कुछ अधिक है। बहुत सम्भव है कि इसकी उत्पत्ति किसी प्रारम्भिक आदिवासी अंत:प्रवृत्ति से हुई हो जो कि अपरिचित व्यक्ति से अविश्वास तथा उसके कार्यों से घृणा करती है। प्रारम्भ में, जाति-वैज्ञानिक की दृष्टि से समजात समूह के सदस्य, जैसे किसी वर्ग या वन्यजाति आदि के सदस्य, जिनके रीति-रिवाज़, भाषा अथवा बोल-चाल की भाषा तथा प्रकृति भी एक ही प्रकार की थी, गुट बनाकर रहते थे और एक दूसरे की रक्षा के लिए उसी प्रकार के अन्य समूहों से लड़ जाया करते थे। वन्य जाति की परीक्षा, यद्यपि प्रारम्भ में भाषा तथा रीति-रिवाज़ों की कसौटी पर आधारित थी, जो प्राचीन काल में वास्तव में जाति की विभिन्नता के सूचक थे, पर जातिगत समजातता समाप्त होने अथवा (संकरण के कारण) कम हो जाने पर अब जातीयता की पहचान के लिए वे आवश्यक नहीं रह गये। कुछ भी हो, रीति-रिवाज़ तथा भाषा आदि थोथे आधारों का प्रयोग रक्तसम्बन्ध की परीक्षा के लिए होता रहा।

इस प्रकार से वन्य जाति का विकास हो जाने पर जब वह वर्तमान राज्य में परिणत हो गयी, तब अपरिचित के प्रति अविश्वास की पैत्रिक तथा नैसर्गिक प्रवृत्ति, जहाँ तक चेतन विचार से तात्पर्य था, समाप्त हो गयी और उसका स्थान बहुत कुछ शारीरिक बनावट, जो कि वास्तव में रक्त की परीक्षा की सूचक है, तथा उससे भी अधिक भाषा, कपड़े तथा लोगों के रीति-रिवाज़ों ने ले लिया।[2]

१. हालाँ कि जहाँ तक भारत का प्रश्न है यह अन्तर इतना अधिक नहीं है क्योंकि उसका एक बड़ा राजनीतिक जाग्रत वर्ग स्वयं ही अधिकांशतः काकेसायड वर्ग का है।

२. हालाँ कि वास्तव में जैसा कि केल्टिक तथा ट्युटानिक लोकगीतों से सिद्ध

केवल ऐसे वन्यजातीय समाज से ही राष्ट्र की धारणा की उत्पत्ति हुई है, हालाँकि वास्तव में कई मामलों में इसमें जीव-वैज्ञानिक औचित्य की कमी है, फिर भी इससे उस स्वतःजात प्रवृत्ति को—अपरिचित का अविश्वास करने की प्रवृत्ति को—प्रेरणा मिलती है,[1] जैसी कि प्रारम्भिक समजात समूहों में मिलती थी।

आश्चर्य है कि जहाँ जहाँ पर कुलीन समाज[2] मज़बूत थे, उदाहरणस्वरूप यूरोप में निकटवर्ती भूतकाल में, वहाँ अपरिचित के प्रति झगड़े की प्रारम्भिक वन्यजातीय नैसर्गिक प्रवृत्ति का स्वाभाविक प्रकटीकरण रुका रहा। इस प्रकार १९वीं तथा २०वीं शताब्दी में जाकर कहीं अनेक भाषा-समूह अपनी कुलीननिष्ठ सरकार को परिवर्तित करने में सफल हुए तथा प्रजातन्त्रता का निर्माण हुआ, जिसने शक्ति उन लोगों के हाथ से लेकर जो कि जनता का ध्यान कम रखते थे, उन लोगों के हाथ में दे दी जो उस ओर अधिक ध्यान देते थे और तब राष्ट्रवाद का, जैसा कि आज हम उसे समझते हैं, वास्तविक विकास हुआ।

इसलिए यह स्पष्ट है कि कितने ही उन आधुनिक राष्ट्रों में जीव-वैज्ञानिक दृष्टिकोण से राष्ट्रीयता की नींव बिलकुल अवास्तविक हो सकती है, जिनमें वास्तविक जातीय एकता न हो अथवा जो अपने मनुष्यों के अन्तःप्रसवन को प्रदर्शित नहीं करते। यह भी उतना ही स्पष्ट है कि मनुष्य में एक नैसर्गिक प्रवृत्ति काम करती है जो उस समय से चली आती है जब वह प्रारम्भ में, (जीववैज्ञानिक तरीकों पर) किसी परिवार अथवा झुण्ड में शेष मानव समाज के विरुद्ध आरम्भ हुई थी। आज हालाँकि उसमें जाति (रेस) की दृष्टि से कोई औचित्य नहीं है, फिर भी वह प्रचार की कृत्रिम उत्तेजना द्वारा खतरनाक मात्रा में उभाड़ी जा सकती है जिससे सारहीन विशेषताओं की भावुक प्रतिक्रियास्वरूप किसी भी कारण से सब लोगों में कोई समान भावना जाग्रत हो

होता है, सबन्धुता की कसौटी के रूप में जातिगत गुणों की पूर्णतया अवहेलना कभी नहीं की गयी।

१. हमें स्मरण रखना चाहिए, जैसा कि इस पुस्तक के अन्य किसी स्थान पर बतलाया गया है वन्यजाति-प्रवृत्ति मनुष्य में इतनी प्रबल है कि कुछ देशज वन्यजातियों के लोग वास्तव में न केवल समस्त युद्धबन्दियों को ही वरन् उन बच्चों को भी जिनको कि वे पा जाते हैं, मार डालते हैं।

२. क्योंकि चाहे जो उनकी राष्ट्रीयता रही हो कुलीन लोगों ने एक समुदाय बना लिया था।

उठती है। एक राज्य, समान भाषा, एक क्षेत्र अथवा समान विचारधारा आदि किसी भी कारण से सब लोगों में ऐसा भाव उत्पन्न हो जाता है जो प्रारम्भिक वन्य जाति का स्थान ग्रहण कर लेता है। यहाँ तक कि केवल स्वेज़ के पूर्व में रहना ही अनेक पूर्वी लोगों की एकता का कारण बन सकता है, भले ही वे भिन्न-भिन्न जातियों के समूह हों। परिणामतः उनमें बन्धुत्व का भाव पैदा हो जाता है। कुछ भी हो, राष्ट्रीयता जाति नहीं है तथा राष्ट्रवाद जाति (रेस) के रक्त-सम्बन्ध का द्योतक नहीं है।

जाति तथा भाषा

भाषाओं के आधार पर किसी क्षेत्र का विभाजन जीव-वैज्ञानिक विभागों के लिए कितना गलत निर्देशक है, यह हम यूरोप के लोगों की स्थिति के अवलोकन से शीघ्र ही देख सकते हैं।

यूरोप में आज-कल भाषाओं के दो बड़े विभाग हैं। एक आर्य भाषाएँ तथा दूसरी अनार्य भाषाएँ, जो कि छोटे समूह में हैं।

अनार्य भाषाओं में यहूदी, बास्क[१] तथा फिनो-उग्रियन[२] समूह हैं। इस अन्तिम के अन्तर्गत मगयार अथवा हंगरीवाले, पश्चिमी फिन्स, बाल्टिक फिन्स, अथवा एस्थोनिया वाले, तथा लिवोनियन लोग (Livonians), दक्षिण-पूर्वी फिनलैण्ड के करेलियन, पूर्वी फिन्स अथवा उग्रियन लोग तथा लैप्स हैं।

आर्य समूह में लैटिन अथवा रोमेन्स, ट्युटानिक, स्लाविक, केल्टिक, हेलेनो-इलीरियन तथा लेटो-लिथुआनियन सम्मिलित हैं।

लैटिन अथवा रोमेन्स के अन्तर्गत फ्रेंच, स्पेनिश तथा पुर्तगाली, इटैलियन, रोमांश-लेडिनो, अथवा रेटो-रोमन जो कि स्विटज़रलैण्ड तथा दक्षिण-पूर्वी टाइरोल में है, तथा रूमानिया के समूह सम्मिलित हैं।

स्लाविक भाषाएँ तीन समूहों में विभाजित हैं, पूर्व में ग्रेट तथा लिटिल (यूक्रेनियन) रूसियों तथा श्वेत रूसियों द्वारा बोली जानेवाली, पश्चिम में पोल्स, वेण्ड्स, चेक्स और स्लोवाक्स लोगों की भाषा तथा दक्षिण में स्लोवेनीज़, सर्ब्स, क्रोट्स, मान्ट्रेनीग्रियन तथा बलगेरिया-वासियों द्वारा बोली जानेवाली भाषाएँ हैं।

केल्टिक भाषा, आयरलैण्ड, पश्चिमी ब्रिटेन (वेल्स, मैन और कार्नवाल) तथा

१. Basques २. Finno-Ugrian

ब्रिटेनी में ही सीमित है। हेलेनो-इलीरियन भाषा केवल ग्रीक तथा अल्बानियावासियों और लेटो-लियुआनियन भाषा लेट्स लियुआनियावासियों तक सीमित है।

ट्यूटानिक तीन भागों में विभाजित है। प्रथम स्कैण्डिनेवियन है जिसके अन्तर्गत स्वेड्स, डेन्स, नार्स तथा आइसलैण्ड की भाषाएँ हैं। दूसरी जर्मन है (प्लेट-ड्युश अथवा नीडर-ड्युश) जो कि अब भी उत्तरी जर्मनी, फ्लैण्डर्स तथा हालैण्ड में बोली जाती है। अन्तिम 'हाई' जर्मन है जो दक्षिणी जर्मनी, आस्ट्रिया, आल्सेस तथा निकट के प्रदेशों में बोली जाती है। प्रथम ट्युटानिक समूह के अन्तर्गत ऐंग्लो-फ्रीज़ियन है जो कि मुख्यतः प्राचीन गोथिक से ली गयी है और उत्तर-पश्चिमी जर्मनी में उत्तरी तथा पूर्वी फ्रीजियनों द्वारा उत्तरी हालैण्ड में तथा ऐंग्लोसैक्सन राष्ट्रों द्वारा बोली जाती है।[1]

वन्य जातीय नैसर्गिक प्रवृत्ति में भाषा की महत्ता होते हुए भी, जिसे आज 'राष्ट्रीयता' में स्थान मिला है, जाति-विज्ञान का थोड़ा सा ज्ञान भी इस बात को स्पष्ट कर देगा कि इन समूहों में, जिनका कि वर्णन अभी किया गया है, जाति (रेस) की दृष्टि से कोई चीज महत्त्व की नहीं है। केवल लो जर्मनी, ट्युटानिक के ऐंग्लो-फ्रीज़ियन तथा स्कैण्डिनेवियन और स्लाव समूहों में जाति तथा भाषा में कुछ साधारण सम्बन्ध पाया जाता है। जाति की कसौटी के लिए भाषा कितनी अविश्वसनीय है इसका अनुपम उदाहरण केल्ट लोगों में मिलता है, जैसा कि हम आगे विस्तार से देखेंगे। ब्रेटन लोग अल्पाइन हैं जब कि आयरलैण्ड में उनके साथी केल्ट लोग, अटांटिक जाति से सम्बन्धित हैं जो कि मेडिटेरेनियन से प्रभावित हैं तथा स्काटलैण्ड में नार्डिक मिश्रण के साथ अटलाण्टिक जाति से सम्बन्धित हैं।[2]

१. अंग्रेजी तथा ऐंग्लोसैक्सन समूह के सम्बन्ध की विवेचना के लिए ए० जे० इलिस कृत इंग्लिश डायलेक्ट्स, लन्दन १८९०, तथा इंग्लिश डायलेक्ट सोसायटी द्वारा १८७३ के बाद के प्रकाशनों को देखिए।

२. अवश्य ही हमारा अभिप्राय यह नहीं है कि सभी राष्ट्र समूह की भाषा की एकता पर निर्भर हैं। अनेक उदाहरणों में ऐसा नहीं है। स्विस (Sviss) लोगों की चार भाषाएँ हैं परन्तु उनमें दो कारक समान हैं, उनकी जनसंख्या का जातिवैज्ञानिक आधार एक है तथा भौगोलिक प्रादेशिकता भी एक है। फिर भी यह कहना सत्य है कि साधारणतया भाषा ही एकता या समानता की कसौटी मानी जाती है, न कि जातीय पूर्वजपरम्परा और न कोई अन्य बात। इसलिए यह बतलाना आवश्यक है

कई उदाहरणों में जहाँ कि भाषा तथा सांस्कृतिक सम्बन्ध है, जातीय सम्बन्धों की साधारण कमी पर ज़ोर डालना अत्यन्त आवश्यक है। यह विरोधाभास है कि जहाँ मनुष्यों में अथवा भाषावार समूहों में जाति की दृष्टि से कम से कम समजातित्व है वहाँ पर जातीय एकता का बहाना लेकर राष्ट्रीय आदर्श उत्पन्न करने की अत्यन्त चेष्टा की जाती है।

इसलिए इस शब्द के जाति-वैज्ञानिक प्रयोग की कमी के कारण जो भी राष्ट्रीय तथा साम्राज्यवादी आकांक्षाओं से प्रेरित होकर उसका प्रयोग करता है, उसकी वाणी में शिथिलता रहती है।

यह बार-बार नहीं दुहराया जा सकता कि अंग्रेजी, फ्रांसीसी तथा जर्मन जातियाँ अथवा भारत तथा एशिया की जाति जैसी कोई भी वस्तु नहीं है। यह राष्ट्रीय समूह जिनका वर्णन किया जा रहा है, अधिकांशतः किसी जाति के एक भाग अथवा जैसा कि अक्सर होता है, अनेक जातियों के मिश्रण से बने हैं।

मानवसमूहों का जीव-वैज्ञानिक वर्गीकरण

कुछ भी हो, जैसा कि हम पहले बतला चुके हैं, मानव की मूल-प्रारम्भिक जातियों के लिए तो, जो उन प्रदेशों में फैली हुई हैं जिनमें कि बहुत से राष्ट्र पाये जाते हैं, जीव-वैज्ञानिक आधार ही माना जा सकता है। साथ ही साथ कुछ पुराने राष्ट्रीय समूहों का भी जीव-वैज्ञानिक वर्गीकरण करना उचित हो सकता है, मुख्यतः उन स्थानों पर जहाँ चुनाव की सहायता से स्पष्टतः विशेष प्रकार (टाइप) उत्पन्न हो गये प्रतीत होते हैं।

परिणामतः मानवसमूहों का वर्गीकरण निम्न प्रकार से करना अनुचित न होगा, हालाँ कि यहाँ किये गये भागों की व्याख्या करने आदि का कार्य इस पुस्तक के अगले अध्यायों[१] के लिए ही छोड़ देना पड़ेगा।[२]

इसलिए हमारे मत से मानवता के प्रत्येक बड़े भाग को निम्न प्रकार से विभाजित करना चाहिए तथा उसी प्रकार से आगे भी यह नामावली हम उसी अर्थ में प्रयुक्त करेंगे।

कि आज यूरोप के जातीय आधार के लिए अथवा अन्य लोगों के लिए भी, यह बिलकुल ही असम्बन्धित तत्त्व (फैक्टर) है।

१. पुस्तक के अगले भाग में।

२. उदाहरण के लिए हमने काकेसायड के विभागों का प्रयोग किया है। परन्तु इसी प्रकार के विभाग अन्य मानव जाति के भी किये जा सकते हैं।

इस वर्गीकरण से देखा जायगा कि यद्यपि जाति के अतिरिक्त अन्य नये पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग हमने किया है, परन्तु जहाँ पर जाति शब्द का प्रयोग किया गया है वहाँ पर हमारा वही अभिप्राय है जिस पर हमने सम्पूर्ण अध्याय में जोर दिया है तथा जो कि जाति-वैज्ञानिक साहित्य में साधारणतः माना हुआ अर्थ है।

तालिका नं० १

मानवसमूहों का वर्गीकरण

विभाग	उदाहरण
१. प्रारम्भिक समूह, विशिष्ट जाति अथवा **मूल वंश** (स्टाक) का सूचक	काकेसायड
२. मुख्य प्रभेद अथवा मूल वंश की शाखाएँ	(१) लम्बे कद के काकेसायड (२) ठिगने काकेसायड
३. **जातियाँ** अथवा मूल वंशों के प्रभेद	(१) एटलाण्टिक ऊँचे काकेसायड (२) नार्डिक ऊँचे काकेसायड (३) मेडिटेरेनियन ठिगने काकेसायड
४. **उपजातियाँ** (सब-रेसेज़) अर्थात् जाति की मुख्य शाखाएँ	डेजर्टलैण्ड अथवा मेडिटेरेनियन की पूर्वी शाखा
५. अभ्युत्पन्न समूह (ब्रीड) जैसे कि जातियों की उत्पत्ति करनेवाले स्थायी, संकरज समूह	(१) डाइनारिक (Dinaric) (२) आर्मीनायड (Armenoid) (३) एल्पाइन (Alpine) (४) पूर्वी बाल्टिक (East Baltic) (५) ईथियोपिक तथा हेमिटिक (Ethiopic and Hemitic)[१]
६. जातिगत इकाइयाँ जैसे कि अंशतः स्थायी, अंतः-प्रसूत पुराने राष्ट्र अथवा अन्य जनसमूह	जैसे कि (१) यहूदी (Jews) (२) आयरिश (Irish) (३) इंग्लिश (English) (४) स्पेनिश (Spanish) इत्यादि
७ विजातीय अथवा विभिन्न पित्रक, नये अंतःप्रसूत, अस्थायी एकक (बहुधा उग्र राष्ट्रवाद वाले)	नयी दुनिया के ऐसे नये राष्ट्र जैसे अमेरिका, मेक्सिको आदि तथा पुरानी दुनिया के कुछ नये राज्य।

१. कभी भी पृथक् निवास तथा दूसरों की भाँति चुनाव के अवसर न होने के कारण यह जातीय अभिजाति (Racial-breed) वैसे ही प्रसंकर नहीं उत्पन्न करती।

जातियों के उद्भव की विधि

अन्त में यह अवश्य कह देना चाहिए कि हमने कारणवश ही जातियों की वास्तविक उत्पत्ति की व्याख्या छोड़ दी, क्योंकि इस विषय की व्याख्या न केवल प्रागैतिहासिक जाति-विज्ञान तथा मनुष्य के मानव-भूवृत्तीय वितरण के प्रकाश में ही हो सकती है, बल्कि इसके लिए (आनुवंशिकी, जेनेटिक्स) की भी आधुनिक जानकारी आवश्यक है।

प्राचीन धारणा थी कि नयी जातियों की उत्पत्ति एक जोड़े से हुई है जैसे कि बाइबिल में आदम तथा ईव से आदम के पुत्र की उत्पत्ति हुई।

उत्पत्तिसम्बन्धी विज्ञान ने इन कुलागत समूहों के लिए, जिन्हें हम जातीय प्रकार तथा जातियाँ कहते हैं, वैकल्पिक सुझाव प्रस्तुत किये हैं।

किसी विशेष उदाहरण में यह कहना कठिन है कि आखिर कौन सा निर्णय ठीक है। बहुधा उत्पत्ति के दोनों प्रकार विभिन्न स्थानों में एक साथ कार्य करते पाये जाते हैं।

इस समय हमने केवल प्रांगारिक उत्पत्ति (जीविज उत्पत्ति, organic origin) तथा इस शब्द के वैज्ञानिक प्रमाण पर विशेष ज़ोर देते हुए "जाति" की व्याख्या की है। इससे जिन समस्याओं की उत्पत्ति होती है उनका वर्णन आगे किया जायगा।

तीसरा अध्याय

जाति के स्थायित्व के प्रमाण

आजकल कुछ लोगों का ऐसा कथन है कि यदि कभी भी जाति नामक कोई वस्तु रही होगी, (जिस पर कि उन्हें सन्देह है) तो मनुष्यों का इतना अधिक मिश्रण हो चुका है कि अब उस पर ध्यान देने की कोई आवश्यकता नहीं है। इससे यह परिणाम निकाला जाता है कि मनुष्यों तथा जातियों का अध्ययन, यदि यह जातित्ववाद को प्रोत्साहित करने के नाते खतरनाक न भी हो तो भी इसकी बहुत ही कम आवश्यकता है।

समस्त वैज्ञानिक विषयों में ऐसे तर्क (यदि उनके पूर्वावयव या प्रेमिसेज सत्य भी हों) व्यर्थ हैं। यदि संसार के एक भाग के मनुष्यों में दूसरे भाग के मनुष्यों से विशिष्ट विभिन्नता हो, उदाहरणार्थ जैसी कि काले, गोरे तथा पीले लोगों में है, तो अन्त तक उनमें चाहे जितना मिश्रण हो, फिर भी उनके सम्बन्ध में जाति-वैज्ञानिक अध्ययन तथा खोज के लिए यथेष्ट स्थान है।

यदि हम उन पूर्वावयवों या आधारों की परीक्षा करें, जिन पर ऐसे कथन आधारित हैं, तो शीघ्र ही विदित होगा कि वे सत्य से बहुत परे हैं।

जातियों के वंशानुगत गुणों के प्रभाव को प्रसंकरण नष्ट नहीं करता

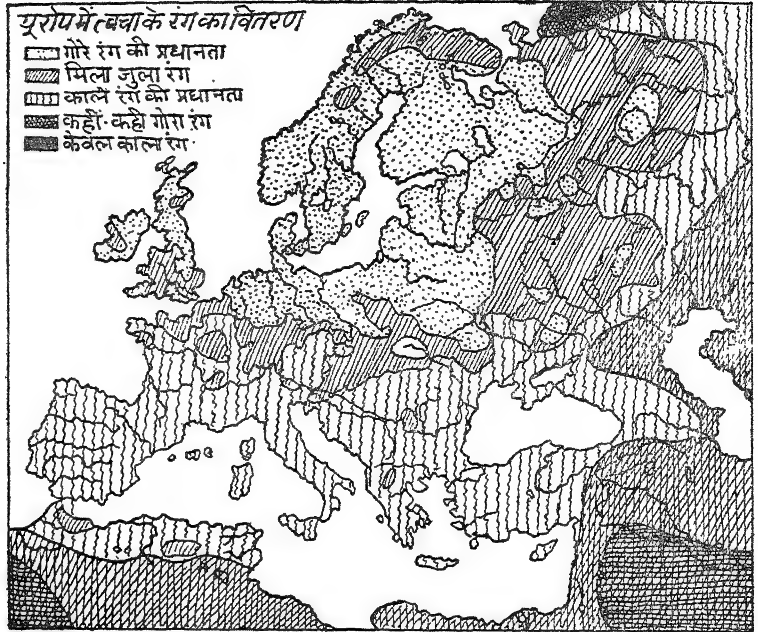
प्रथम तो वंशानुगति का तनिक भी ज्ञान स्पष्ट कर देता है कि कितना ही प्रसंकरण क्यों न हुआ हो, प्रारम्भिक वंशों (स्टाक्स) के मौलिक गुण, जो कि प्रत्येक प्रकार के जननिक शरीरसंघटन पर आधारित हैं, मेण्डल के नियम द्वारा निर्दिष्ट सिद्धान्तों के अनुसार भावी पीढ़ी में अवश्य ही पूर्ण नियमितता से पारेपित होते हैं।

इस प्रकार जातीय सम्मिश्रण जाति को नष्ट नहीं करता; हाँ, वह समस्या को और भी गूढ़ तथा जटिल बना देता है।

जातियों के महाद्वीपीय क्षेत्र अब भी हैं

इसके उपरान्त यह साधारण ज्ञान की बात है कि मध्य एशिया, चीन, हिन्द चीन, श्याम, बर्मा तथा अन्य क्षेत्रों में आज भी लाखों वर्षों से मंगोलायड लोगों का ही प्राधान्य

पाया जाता है। अफ्रीका में अधिकांश प्रारम्भिक समूह नीग्रायड लोगों का है जो यूरोप-निवासियों से बहुलांश में असंकरित रहे हैं। जब कि यूरोप अब भी काकेसायड लोगों का मुख्य केन्द्र है।



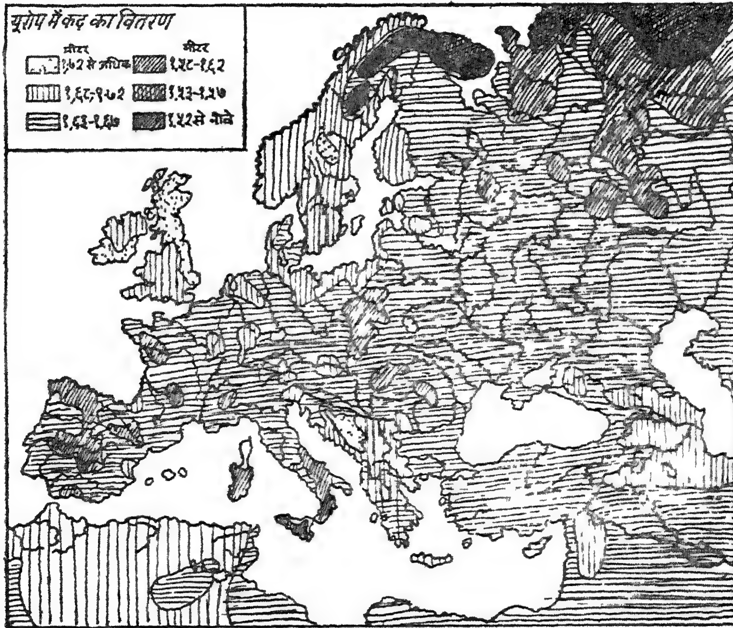
चित्र नं० २६
(हैन्स एफ० के० गुन्थर, Hans F. K. Gunther द्वारा)
यूरोप तथा निकटवर्ती प्रदेशों में त्वचा के रंग का वितरण

ऐसी स्थिति में यह कहना असत्य है कि जातीय संकरण इस सीमा तक हुआ है कि जातियाँ अपनी मौलिक शुद्धता के रूप में रह ही नहीं गयी हैं, अतः जातिविज्ञानसम्बन्धी अध्ययन का कोई उपयोग नहीं।

यूरोप में मिलनेवाले जातिसम्बन्धी गुणों के वितरण की स्थिति देखने से यह बात स्पष्ट हो जाती है।

यूरोप में जातिगत गुणों की समरूपता

इस प्रकार साथ में दिये हुए यूरोप[1] के चार मानचित्रों में, जो सूत्र के सम्बन्ध में थोड़ी शंका होते हुए काफी हद तक ठीक माने जा सकते हैं[2], यह देखा जायगा कि



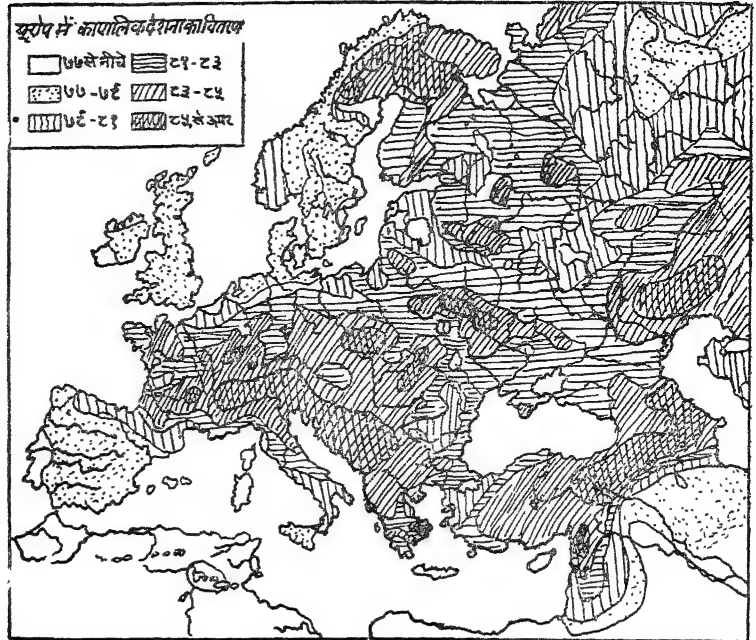
चित्र नं० २७
(हैन्स एफ़० के० गुन्थर, Hans F. K. Gunther द्वारा)
यूरोप तथा निकटवर्ती प्रदेशों में कद (स्टेचर) का वितरण

श्वेत त्वचा. लम्बा ढाँचा, लम्बा कपाल (कापालिक देशना ७९ से कम) तथा लम्बे

१. जे० हैन्स गुन्थर के अनुसार—रेशियल एलीमेन्ट्स आफ़ यूरोपियन हिस्ट्री।

२. जो कि जर्मन (German) होने के कारण कुछ सन्देह से देखे जा सकते हैं परन्तु वास्तव में ये मानचित्र नात्सी राज्य के पूर्व ही बनाये गये थे।

चेहरे (८६ के निकट अथवा अधिक) आदि नार्डिक गुण सभी उत्तर-पश्चिमी यूरोप में मिलते हैं। और यह वह क्षेत्र है जिसमें नार्डिक लोगों की प्रधानता है ।



चित्र नं० २८

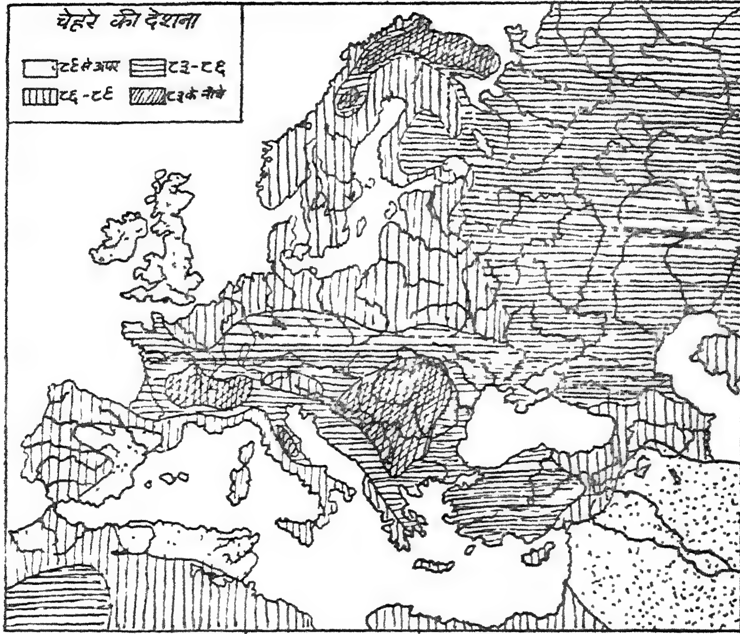
कापालिक देशना का वितरण जिससे कपालों की लम्बाई तथा चौड़ाई के तुलनात्मक अनुपातों का दिग्दर्शन होता है

भूमध्यसागरीय क्षेत्रों में काले केश, छोटा ढाँचा, लम्बा कपाल, लम्बे चेहरे के गुणोंवाली भूमध्यसागरीय जाति पायी जाती है। काले केश, मध्यम तथा छोटे ढाँचे, चौड़ा कपाल (कापालिक देशना ८१ से अधिक) तथा छोटे चेहरे (८३ से कम) आदि अल्पाइन जाति के गुण हैं। ये लोग यूरोप के मध्य में एक संघटित क्षेत्र में तथा रूस में और इसके पूर्वी भाग तक पाये जाते हैं।

जब कि काले केश, लम्बा ढाँचा, चौड़ा कपाल तथा लम्बे चेहरेवाले डाइनारिक गुण सभी एड्रियाटिक के पूर्वी तथा उत्तरी प्रदेश में मिलते हैं। यह विशिष्ट जातिसमूह इसी क्षेत्र में मुख्य रूप से पाया जाता है।

छोटे प्रादेशिक क्षेत्रों में जातिगत प्रकारों की विभिन्नता

वास्तव में हम उसके आगे भी जा सकते हैं तथा महाद्वीपों के सूक्ष्म अध्ययन से

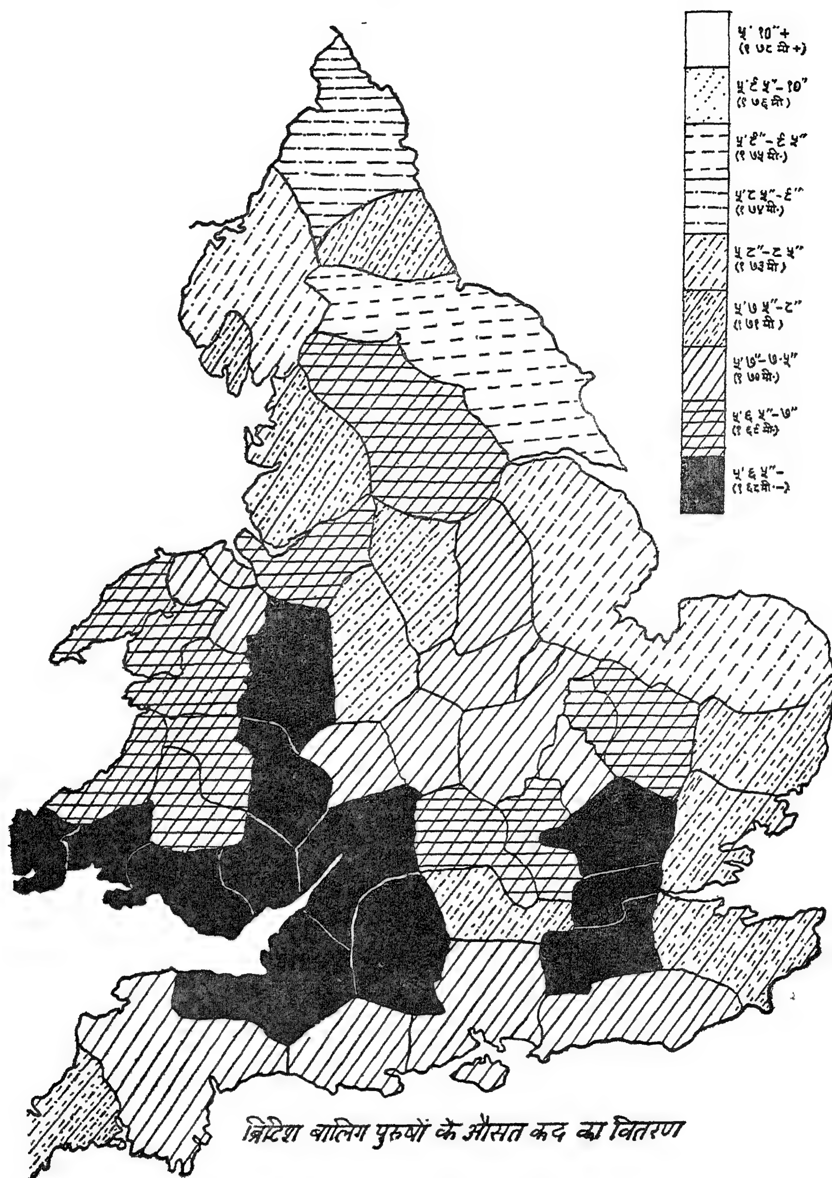


चित्र नं० २९
(हैन्स एफ़० के० गुन्थर, Hans F. K. Gunther द्वारा)
चेहरे की देशना (फेशल इण्डेक्स)
[यूरोप तथा निकटवर्ती प्रदेशों की जन-संख्या के चेहरे की आनुपातिक लम्बाई का वितरण]

हटकर छोटे क्षेत्रों के लघु समूहीय अध्ययन पर आते हैं। जातिगत विभिन्नता हमें यहाँ भी काफ़ी मिलती है।

जातिसम्बन्धी गुणों का प्रादेशिक पृथक्करण

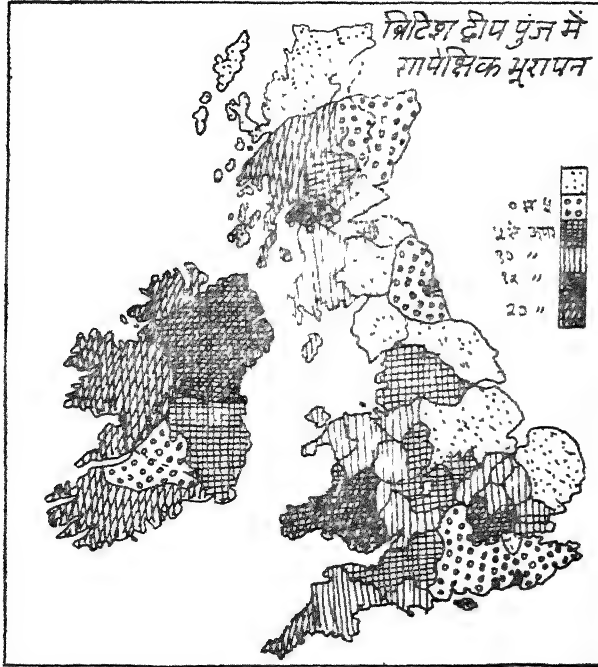
सभी देशों में जहाँ कि जातियाँ काफ़ी समय से बसी हुई है अधिक अन्तर्विवाह के उपरान्त भी जातिगत समूहों का प्रादेशिक पृथक्करण प्रचुर मात्रा में मिलता है।



चित्र नं० ३०—ब्रिटिश बालिग पुरुषों का औसत कद (१८८५)

ब्रिटिश द्वीपों में प्रादेशिक पृथक्करण

यदि हम ब्रिटिश कद के मानचित्र की (चित्र नं० ३०) नीग्रेसेन्स वाले मानचित्र (चित्र नं० ३१) से तुलना करें तो हमें तुरंत विदित हो जाता है कि वेल्स के चारों



चित्र नं० ३१

ब्रिटिश द्वीप में आपेक्षिक भूरेपन का मानचित्र

[**बेडो द्वारा १८८५, १३०८८ परीक्षण तथा उसकी अपनी नीग्रेसेन्स** (negrescence) **की देशना के प्रयोग पर आधारित**]

ओर गहरे रंग के क्षेत्र दोनों मानचित्रों में वैसे ही पाये जाते हैं जैसे कि उत्तर-पूर्वी इंग्लैण्ड में हलके रंग के क्षेत्र।

इस प्रकार हम यह देखते हैं कि इंग्लैण्ड तथा वेल्स में लम्बे कदवाले भागों में अधिक गौर वर्ण मिलते हैं तथा छोटे कदवाले भागों में सब से अधिक गहरे रंग।

आँखों के रंग की तुलना से इसी प्रकार का पृथक्करण विदित होगा—वेल्स में गहरे रंग, पूर्वी इंग्लैण्ड में हलके रंग की आँखें।

अब यहाँ पर हमारे पास मेडिटेरेनियन, अल्पाइन तथा सम्बन्धित जातियों से नार्डिक लोगों की विशिष्ट विभिन्नता प्रकट करने के लिए तीन मुख्य कसौटियाँ हैं तथा जहाँ तक कि इन तीन गुणों का सम्बन्ध है एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में हम बिलकुल परिवर्तन पाते है। यह उस समय है जब कि अन्तर्विवाह काफ़ी दूर तक फैलकर हुए है तथा जब मुख्यत: गणित के आधार पर यह सिद्ध किया जा चुका है कि अंग्रेज़ आपस में एक दूसरे से कई हज़ार बार सम्बन्धित है।

वास्तव में एक ऐसे देश में जो कि काफ़ी समय से बसा हो तथा विवाह के लिए जहाँ एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में तथा एक जाति से दूसरी जाति में काफ़ी स्वतन्त्रता रही हो, फिर भी उसमें जातीय विभिन्नता के निश्चित क्षेत्रों का पाया जाना इस बात का द्योतक है कि जातिसम्बन्धी तत्त्व एक दूसरे से मिलते नहीं, कुछ न कुछ पृथक्ता बराबर बनी रहती है। दूसरे शब्दों में भूगोल की प्रादेशिक विशेषता की सहायता, एक ही प्रकार की बोली बोलनेवाले लोगों में होनेवाला आकर्षण तथा अपने अपने क्रम या स्थिति के अनुसार ही साहचर्य होना (जिसके बारे में आगे और चर्चा की जायगी), जो एक आवश्यक शक्ति है, जिससे कि समान व्यक्ति ही पारस्परिक साहचर्य करते हैं, उन सब के होने पर भी प्रत्येक क्षेत्र के जातिगत गुण बचे रह सके हैं।

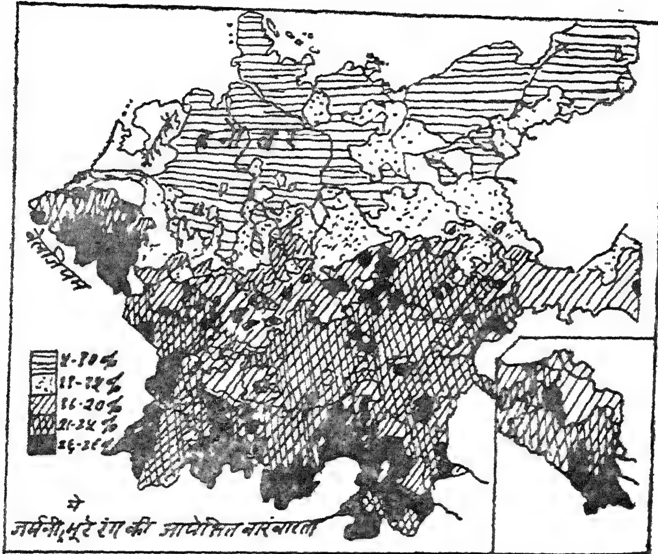
केवल आँकड़ों पर आधारित करके ब्रिटिश जनसंख्या के सैद्धान्तिक अंत:प्रसवन के प्रकाश में कोई अन्य परिणाम निकालना सम्भव नहीं है और जिसके कारण जाति-सम्बन्धी विभिन्नता के सभी क्षेत्र काफ़ी समय पूर्व ही समाप्त कर दिये गये होते।

इसलिए पूर्ण रूप से स्पष्ट है कि यदि मिश्रण सम्भव होता तो ये दोनों जातिसमूह मिलकर काफ़ी पहले ही एक हो गये होते। साथ ही भूरे वर्ण (brunet) का गौर वर्ण (blond) पर आधिपत्य ध्यान में रहने योग्य है, क्योंकि इसका प्रभाव आवरण के समान है जिससे भूरे वर्ण का क्षेत्र बढ़ता हुआ प्रतीत होता है तथा इसमें और गौर वर्ण के भागों में जो तीव्र विभिन्नता है वह मिटने लगती है, फिर भी जातिसम्बन्धी प्रदेशों में विभिन्नता अब भी भली-भाँति दृष्टिगोचर होती है।

जर्मनी में प्रादेशिक पृथक्करण

जर्मनी में भी ठीक उसी प्रकार की स्थिति अलग-अलग क्षेत्रों की मिलती है। उत्तर में नार्डिक लम्बे, साफ़ रंगवाले तथा लम्बे कपाल के हैं। दक्षिण में अल्पाइन छोटे, भूरे तथा चौड़े कपाल के है। इसे ३२, ३३, ३४ नं० के मानचित्र पूर्ण रूप से स्पष्ट

करते हैं। फिर भी हमें वास्तव में इन तीन आधारभूत जातीय गुणों तक सीमित रहने की आवश्यकता नहीं।



चित्र नं० ३२

(डब्लू ज़ेड० रिपले, W. Z. Ripley, द्वारा)

जर्मनी (तथा निकटवर्ती प्रदेशों) में भूरे रंग की आपेक्षिक वारंवारता का मानचित्र

[रैंक के उस कार्य पर आधारित जो सन् १८८७ में उन्होंने स्कूल के १००७७६२५ विद्यार्थियों के सम्बन्ध में किया था।

ऐसा देखा जायगा कि जर्मनी के उत्तर में दक्षिण की अपेक्षा केश अधिक श्वेत हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि उत्तर-पश्चिमी जनसंख्या में नार्डिक तत्त्वों की प्रधानता है तथा दक्षिण-पूर्व में पूर्वी बाल्टिक तत्त्वों की, जो दोनों ही गौर वर्ण की जातियाँ हैं।

मध्य तथा दक्षिणी भाग में अल्पाइन मुख्य जातीय प्रकार है तथा साथ में कुछ डाइनारिक और कुछ अंश तक आर्मीनायड सभी काले केशोंवाली जातियाँ हैं।]

यदि हम मानवविज्ञान सम्बन्धी अन्य बातों पर ध्यान दें तो जातियों के वितरण

सम्बन्धी मानचित्रों से, जिनकी ओर हमने संकेत किया है (चित्र ३२–४८), इन परिणामों की भली-भाँति पुष्टि होती है।

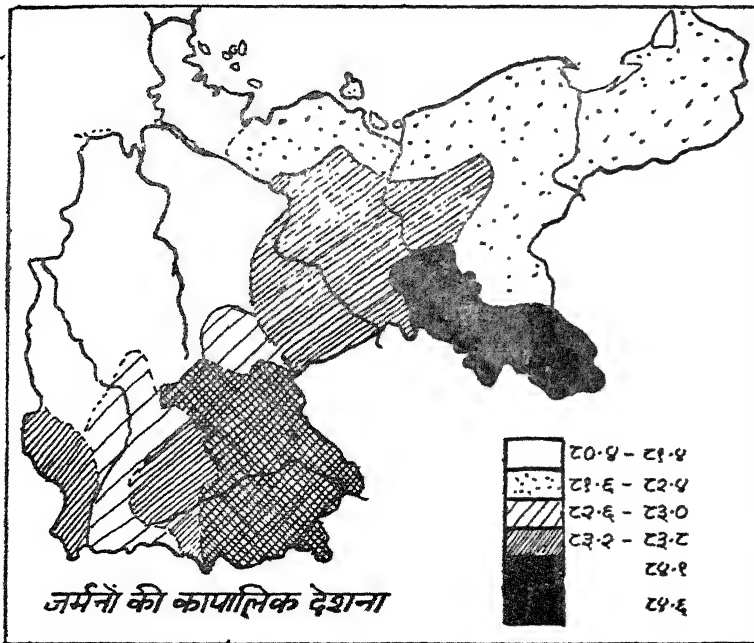
चित्र नं० ३३

जर्मन नौसेना के (सन् १९०६ के) मनुष्यों का औसत कद (सेंण्टीमीटरों में)

(लेखक के ट्युटन ऐण्ड स्लाव Teuton and Slav से)

[ऐसा देख पड़ेगा कि जर्मनी के उत्तरी भाग में ही लम्बे कद के मनुष्य मिलते हैं जहाँ से ऐंग्लो-सैक्सनों के पूर्वज आये हैं तथा अन्य नार्डिक मनुष्यों से इनका रक्त-सम्बन्ध है जैसे कि फ्रीजी निवासी। जिन भागों में लोग अपने को नेदर-सैक्सन्स कहते हैं उनमें मुख्यतः अच्छे कद के लोग मिलते हैं। इन क्षेत्रों मे पहले अथवा अब भी निचली जर्मन भाषा बहुधा बोली जाती है।]

इस प्रकार हम देखते हैं कि सकरे चेहरे जो कि नार्डिक तथा भूमध्यसागरीय जातियों की विशेषता है, दोनों ही उसी उत्तर-पश्चिमी जर्मनी में पाये जाते है (चित्र नं० ३५) तथा नुकीले चेहरे जो कि नार्डिक (अथवा भूमध्यसागरीय) तथा अल्पाइन अथवा पूर्वी बाल्टिक के संकरण से उत्पन्न होते है, जर्मन भाषा बोलनेवाले प्रदेशों के दक्षिणी तथा पूर्वी हिस्सों में पाये जाते है (चित्र नं० ३६)।



चित्र नं० ३४—जर्मनों की कापालिक देशना

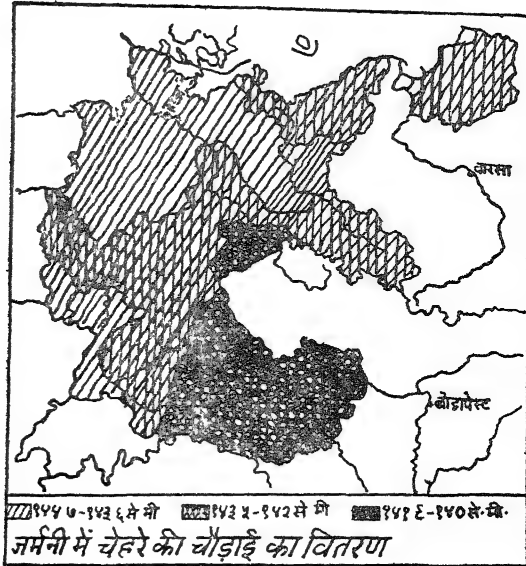
(लेखक के ट्युटन ऐण्ड स्लाव (Teuton and Slav) से, पारसन्स (Parsons) द्वारा)

[इससे कपाल की लम्बाई तथा चौड़ाई के सम्बन्ध का पता चलता है, नीचे आँकड़े लम्बे कपाल के लिए तथा ऊँचे चौड़े कपाल के लिए हैं।

जिस प्रकार से कद के विषय में है उसी प्रकार कपाल के बारे में भी उत्तरी, विशेष कर उत्तर-पश्चिमी जर्मनी मुख्यतः एक पृथक् क्षेत्र है जहाँ कि कपाल लम्बे तथा कद भी दक्षिण-पूर्वी जर्मनी की अपेक्षा बड़े हैं।

इस प्रकार उत्तर-पश्चिमी जर्मनी, लम्बे कापालिक एटलाण्टिक जातीय तत्व के साथ मिलकर अधिक नार्डिक है तथा दक्षिण और दक्षिण-पूर्व के चौड़े कपालवाले लोग अल्पाइन और पूर्वी बाल्टिक जातीय तत्त्वों के हैं जो डाइनारिक और आर्मीनायड जातीय वंशजों से भी प्रभावित हैं।]

नाक के आकार की देशना (चित्र नं० ३७) भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इससे यह पता चलता है कि जर्मन जनसंख्या में बाद का जातीय मिश्रण केवल अल्पाइ



जर्मनी में चेहरे की चौड़ाई का वितरण

चित्र नं० ३५

(लेखक के ट्युटन तथा स्लाव से)

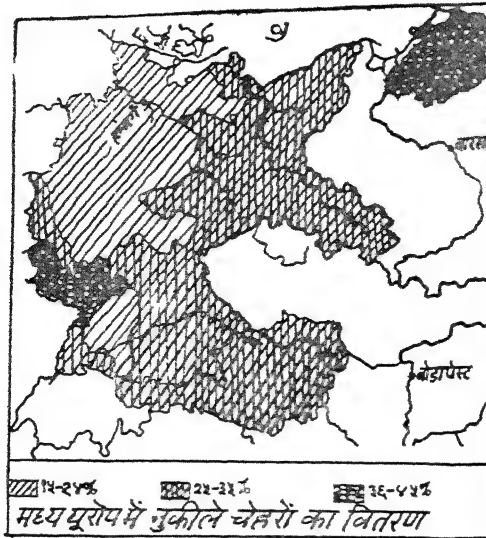
जर्मनी तथा निकटवर्ती प्रदेशों में गाल की हड्डी (Zygion) के सबसे चौड़े भाग की चेहरे की चौड़ाई के माप से वितरण का मानचित्र

[इसमें आप देखेंगे कि उत्तर-पश्चिमी जर्मनी में जहाँ नार्डिक जाति के लम्बे कद तथा बड़े कपाल की विशेषता है, वहाँ अधिक संकरे नार्डिक चेहरे की विशेषता भी पायी जाती है। दक्षिणी तथा दक्षिण-पूर्वी प्रदेश से यह चित्र भिन्न है।]

तथा पूर्वी बाल्टिक क्षेत्रों में ही सीमित रहा है तथा जैसा कि हमने वितरण के सभी मानचित्रों में देखा है, उत्तर-पश्चिमी जर्मनी का नार्डिक भाग पूर्ण रूप से सीमित है।

जर्मनी की प्राकृतिक तथा सांस्कृतिक कसौटियों का परस्पर-सम्बन्ध

जिस प्रकार ब्रिटेन में स्थानों के नाम और भाषावार वितरण तथा वहाँ की जातियों की कसौटियों में सम्बन्ध है उसी प्रकार जर्मनी में भी यही बात सत्य है।



चित्र नं० ३६

(वाल्दर क्रूस 'Krusse' द्वारा, लेखक के ट्युटन ऐण्ड स्लाव से)

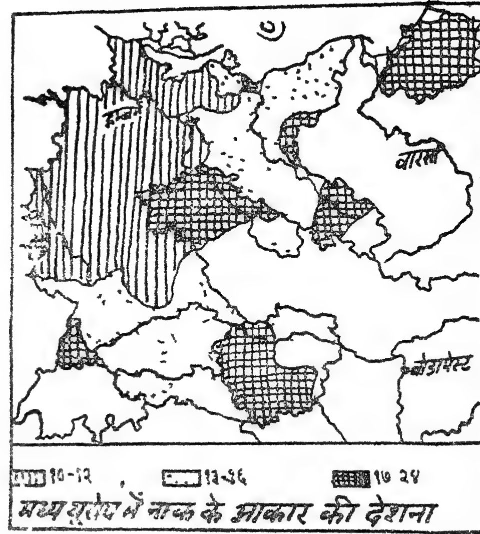
जर्मनी तथा निकटवर्ती प्रदेशों में नुकीले चेहरों की प्रतिशत वारम्वारता

[स्पष्ट है कि जर्मनी के उत्तर-पश्चिमी भाग में, जहाँ नार्डिक तत्त्वों का प्राधान्य है, नुकीले चेहरेवाले प्रकार का सब से कम प्रतिशत है।

नुकीला चेहरा असमान प्रकार का है जिसकी उत्पत्ति अल्पाइन (तथा पूर्वी बाल्टिक) के चौड़े कपाल और लम्बे चेहरेवाले नार्डिक के संकरण से हुई है।

परिणामतः नुकीले चेहरों का प्रतिशत बढ़ता जाता है ज्यों ज्यों अधिक नार्डिक प्रदेश छूटते जाते हैं तथा अल्पाइन और पूर्वी-बाल्टिक की ओर बढ़ते चलते हैं।]

इस तरह चित्र नं० ३८ में हम मध्य यूरोप की आबादी के चित्र देखते हैं। इससे स्पष्ट है कि उत्तर-पश्चिमी जर्मनी, जहाँ के मनुष्य अधिक गौर वर्ण (ब्लांड),



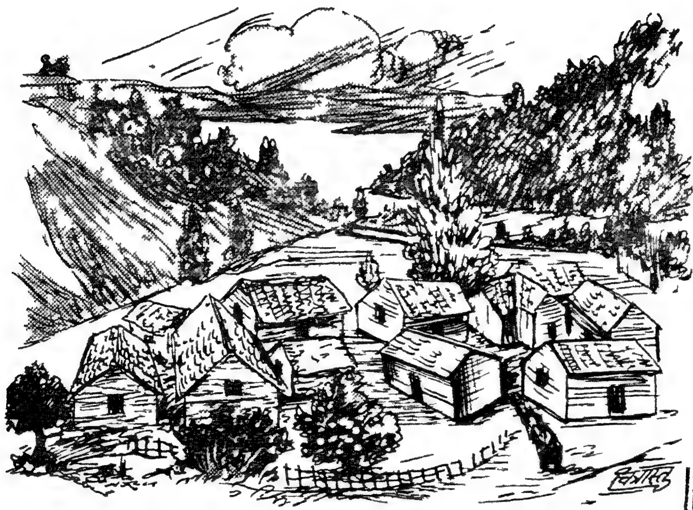
चित्र नं० ३७

जर्मनी तथा निकटवर्ती प्रदेशों में नाक के आकार की देशना का मानचित्र

[इससे उभड़ी हुई नाक जो कि आर्मीनायड, डाइनारिक तथा मेडिटेरे-नियन लोगों की विशेषता है तथा दबी हुई नाक, जो कि पूर्वी बाल्टिक तथा अल्पाइन जातीय प्रकारों में अधिक पायी जाती है, इन दोनों के सम्बन्ध का पता चलता है। एटलाण्टिक तथा नार्डिक लोगों की भी नाक कुछ पिचकी हुई होती है पर नार्डिकों में प्रायः सीधी नाकवाले अधिक होते हैं।

उत्तरी तथा उत्तर-पश्चिमी जर्मनी की इन गुणों मे दक्षिण-पूर्वी प्रदेश से विभिन्नता है, यह महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इससे यह विदित होता है कि जर्मन साँचे में गौण सामाजिक तत्त्व भी उत्तर तथा उत्तर-पश्चिम के नार्डो-एटलाण्टिक और दक्षिण से उत्तर पूर्व की ओर के अल्पाइन तथा पूर्वी बाल्टिक आदि मुख्य जातीय वंशसमूहों के वितरण में दिखाई देनेवाले गुणों का ही अनुकरण करते हैं।]

सब से अधिक लम्बे, सबसे बड़े सिरवाले अर्थात् जो काफी नार्डिक हैं, सामान्यतया वही क्षेत्र है जिसे 'हाफेनडार्फ' कहते है। यह टेढे-मेढे गाँव है जो कि ऐंग्लो-सैक्सन, फ्रीज़ियन तथा निचले जर्मनी के अन्य लोगों से सम्बन्धित है।

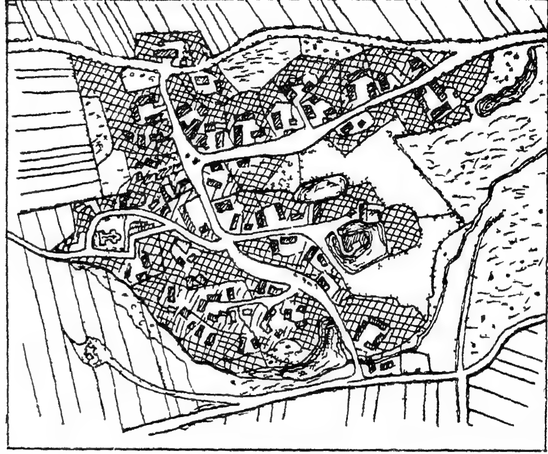


चित्र न० ३९ (पृ० ५४)

(लेखक के ट्यूटन ऐण्ड स्लाव से)

हाफेनडार्फ (Havien-dorf) अथवा अक्रमिक गाँव

३९ अक्रमिक हाफेनडार्फ प्रकार का गाँव--उदाहरण नार्वे से।



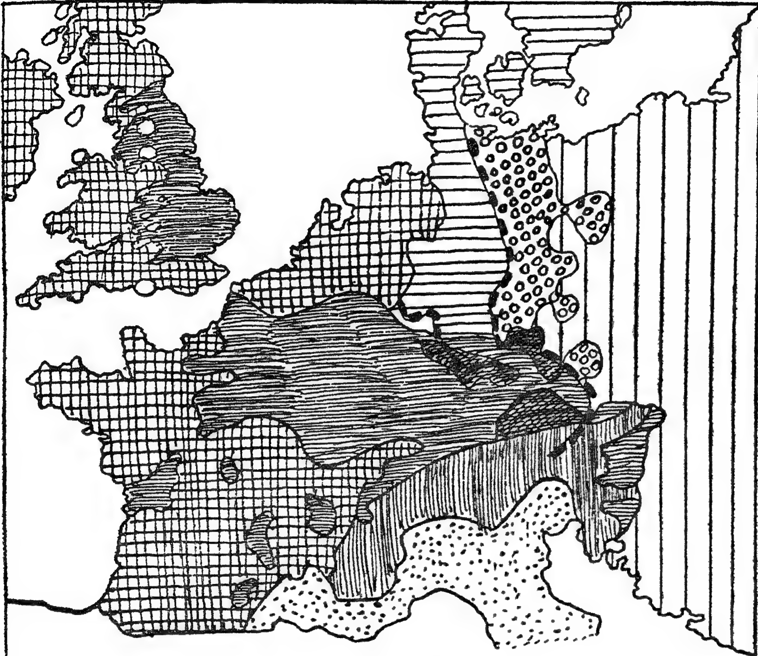
चित्र न० ४०

(डब्लू जेड० रिपले 'W. Z. Ripley' द्वारा)

मध्य, पश्चिमी तथा उत्तरी यूरोप मे मिलने वाले गॉव के प्रकारों के उदाहरण

४० प्रशिन सेक्सनी के ग्यूसा नामक स्थान में एक जर्मन हाफेनडार्फ की योजना। गॉव ऐंग्लो-सैक्सन तथा उनसे सम्बन्धित लोगों से सम्बन्धित है जो कि मुख्यतः नार्डिक रक्त के थे।

परिणामत पहले के आबादी के आकारो के मानचित्र से यह देखा जायगा कि इस प्रकार के गॉव जर्मनी के उन भागो मे मिलते ह जहाँ पर कि अब भी अधिकांशतः नार्डिक लोग बसे हैं।

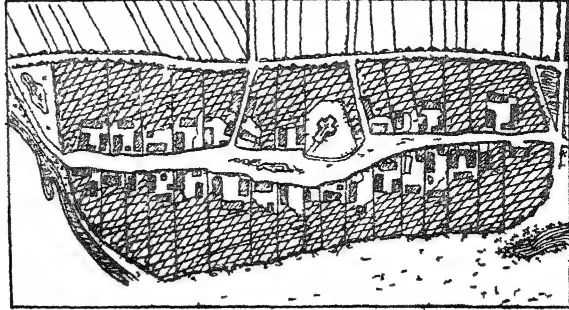


चित्र नं० ३८

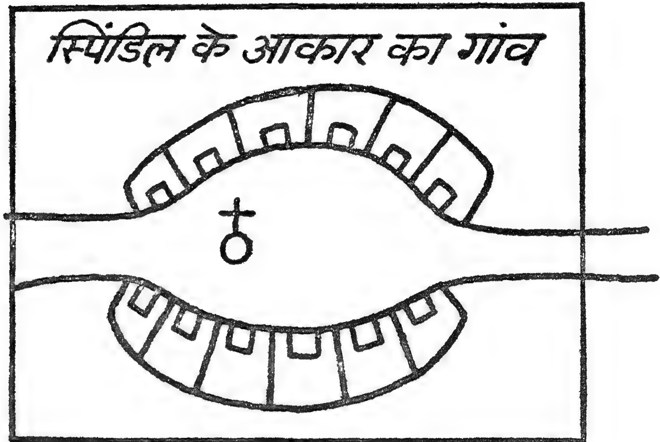
मध्य यूरोप में आबादी के रूप

(मीजेन तथा श्लूटर द्वारा, लेखक के ट्युटन तथा स्लाव से)

इसके विपरीत पूर्व की आबादियो मे उन आकृतियो का प्राधान्य है जो कि स्लावोनिक के गोल गाँवो, सडको के निकटवर्ती गाँवो तथा 'स्पिण्डल' के आकार के गाँवो मे फैली हुई है।



चित्र नं० ४३—ट्रेबनिज का स्ट्रैसनडार्फ, सड़क का गाँव,



चित्र नं० ४४—ऐंगरडार्फ या स्पिन्डिल के आकार का गाँव

[ऐंगरडार्फर, एल्ब नदी के ठीक पूर्व में तथा चार्ल्स दि ग्रेट द्वारा स्लाव के विरुद्ध स्थापित सीमा के भी पूर्व में मिलते है। इससे भी और पूर्व की ओर पोलैण्ड तथा उसके बाद स्ट्रेसनडार्फ पाये जाते है।

यह दोनों स्लाव ढंग की आबादियाँ है तथा इनकी स्थिति जर्मनी के ऐसे भागों में है जो सबसे कम जर्मन, अतः सबसे कम नार्डिक है।]



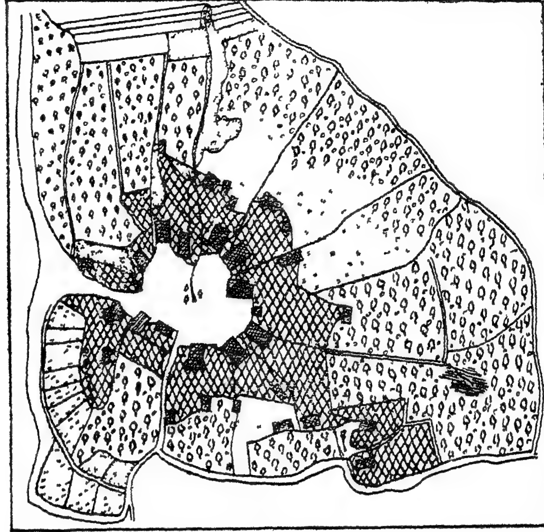
चित्र नं० ४१ (पृ० ५६)

(मीजेन 'Meitzen' द्वारा, लेखक के ट्यूटन ऐण्ड स्लाव से)

रूण्डलिंग (Rundlinge अथवा गोल गाँव

४१. गोल गाँव का चित्र जो कि उत्तरी, मध्य तथा पूर्वी जर्मनी तक फैले मिलते है, यह उदाहरण हेनोवेरियन वेण्डलैण्ड से है।

गोलगाँव (हनोवर)



चित्र नं० ४२

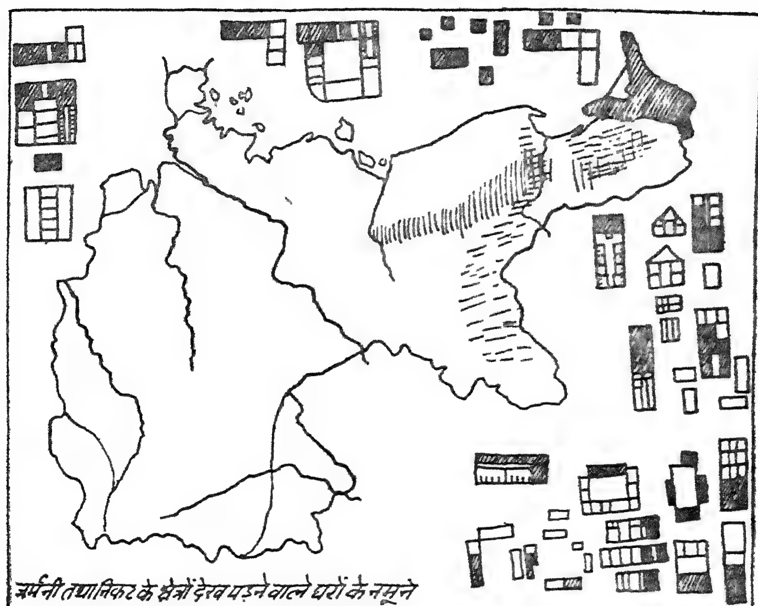
(डब्लू० ज़ेड० रिपले 'W. Z. Ripley' द्वारा)

मध्य तथा पूर्वी यूरोप मे मिलने वाले गाँव के प्रकारों
के उदाहरण, सड़क के गाँव

४२. गोल गाँव (राउण्ड विलेज) की एक योजना, यह भी हेनोवर से है। इस प्रकार के गाँव ऐतिहासिक दृष्टि से स्लाव (Slav) लोगों से सम्बन्धित है।

पहले के मानचित्र मे मध्य यूरोप में आबादी के आकार के वितरण से देखा जायगा कि ये उन्हीं स्थानों पर मिलते है जो कि जर्मनी के सबसे कम नार्डिक प्रदेश है।

पाठक की समझ में भली-भाँति आ सके, इस उद्देश्य से चित्र नं० ३९–४४ दिये



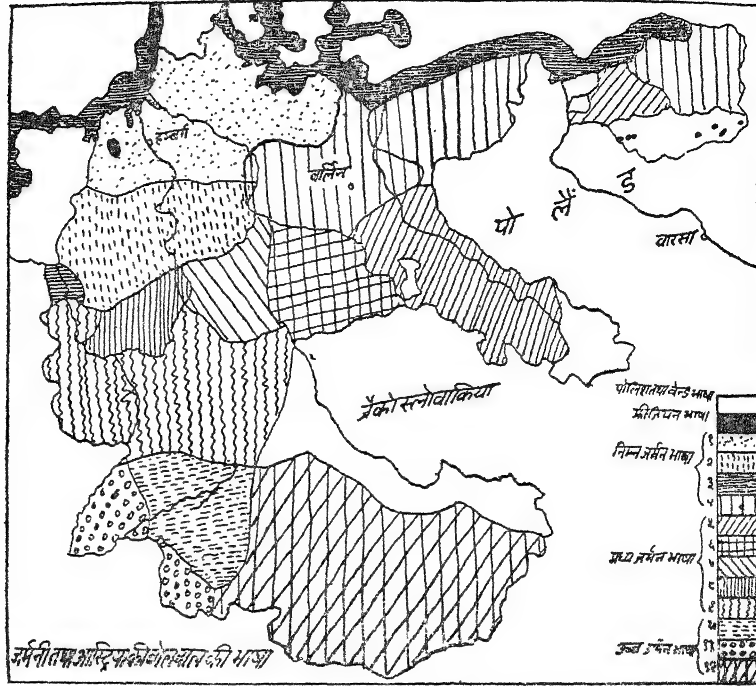
चित्र नं० ४५

(डा० विली पेसलर द्वारा, लेखक के ट्युटन ऐण्ड स्लाव से)

जर्मनी तथा निकटवर्ती जिलों में देख पड़नेवाले घरों के नमूने

[यह स्मरण रखना चाहिए कि वहाँ घर ठीक दो प्रकार के पाये जाते हैं। एक उत्तर-पश्चिमी भाग में जो कि पुराने ऐंग्लो-सेक्सन नमूने के हैं तथा दूसरे लो जर्मन मूल के तथा कुछ मध्य और पर्वतीय जर्मनी के मूल के समझे जाते हैं।]

गये हैं, जो कि इस प्रकार के गाँवों के उदाहरण हैं जो मध्य, उत्तरी तथा पश्चिमी यूरोप की पुरानी आवादियों में विशेष रूप से पाये जाते हैं।



चित्र नं० ४६

(पेसलर, लैंगहैन्स तथा अन्यों द्वारा, लेखक के ट्युटन ऐण्ड स्लाव से)
जर्मनी, आस्ट्रिया तथा अधिक निकटवर्ती प्रदेशों की बोलचाल की भाषा का वितरण

[यह देखा जायगा कि निचली जर्मन तथा फ्रीजियन बोली दोनों जर्मनी के उत्तर-पश्चिमी भाग में बोली जाती हैं। शेष दक्षिण से उत्तर-पूर्वी भाग में मध्य तथा पर्वतीय जर्मन भाषा बोली जाती है।

इस प्रकार गाँव के आकार, घर के प्रकार तथा प्रान्तीय भाषा के तीन सांस्कृतिक मानचित्र ठीक पहले दिये हुए जर्मनी की जाति सम्बन्धी कसौटियों के वितरण के मानचित्र से काफ़ी मिलते हैं।

इससे यह स्पष्ट है कि जातिगत विभिन्नता का कोई महत्त्व न होने के बजाय, जर्मन जनसंख्या के विभाजन का मूल्य आँकने में उसका काफ़ी बड़ा भाग है।]



चित्र नं० ४७--जर्मनी का प्राकृतिक मानचित्र

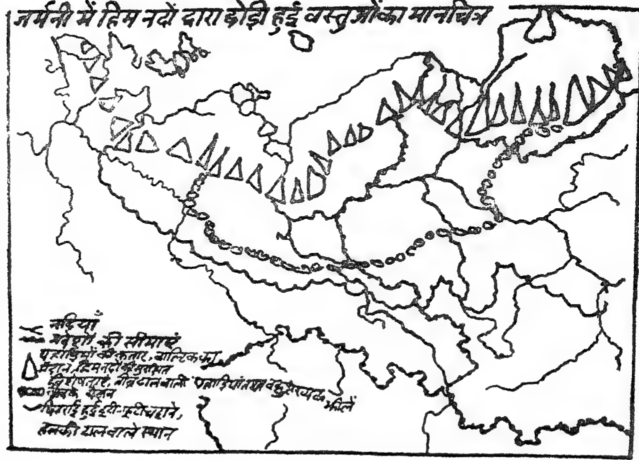
(डब्नू० जेड० रिपले 'W. Z. Ripley' द्वारा)

[यह ध्यान देने योग्य है कि भौगोलिक प्रादेशिकता दक्षिण-पश्चिम से उत्तर-पूर्व की ओर की अपेक्षा पूर्व और पश्चिम की ओर मिलती है।

इस प्रकार जाति-वैज्ञानिक प्रवृत्तियों का कारण (भौतिक तथा सांस्कृतिक दोनों ही) मुख्यतः देश के भूगोल की प्राकृतिक विशेषता नहीं है।]

भौतिक मानव विज्ञान के वितरण में साथ साथ इस प्रकार की सांस्कृतिक सामग्री

का पाया जाना केवल संयोग की बात नहीं है, जैसा कि नीचे दिये हुए दो तथ्यों से स्पष्ट हो जायगा।



चित्र नं० ४८

हिमनदों द्वारा छोड़ी हुई वस्तुओं का मानचित्र

[उत्तरी जर्मनी में भूदृश्य तथा काफी हद तक भूमि का उपयोग में आना भी हिमनदियों द्वारा छोड़ी गयी सामग्री द्वारा निर्देशित है।

नदियों के समूह पर कई स्थानों में इन जमावों का विशेष प्रभाव पड़ा है।

इस प्रकार भूदृश्य के पूर्व से पश्चिम की ओर के झुकाव में जहाँ तक जर्मनी का प्रश्न है, (न कि पोलैण्ड का, जैसा कि इस मानचित्र में है) उत्तर-पश्चिम से दक्षिण पूर्व का अक्ष है।

यह सांस्कृतिक तथा भौतिक जाति-विज्ञान (एथनालॉजी) के झुकावों से जो कि दक्षिण-पश्चिम से उत्तर-पूर्व की ओर को है, बिलकुल विपरीत है। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि ये मानव-वैज्ञानिक विभेद दैवी संयोग की चीज नहीं हैं, क्योंकि उस प्रदेश की भौगोलिक स्थिति के बावजूद ये विद्यमान हैं।]

१. यदि हम घर के प्रकारों के वितरण को लेते हैं तो देखते हैं कि पुराने ऐंग्लो सैक्सन तथा फ्रीजियन से सम्बन्धित बनावट वाले घर भी मुख्यत: उसी उत्तर-पश्चिमी प्रदेश में पाये जाते हैं।

२. जर्मनी की बोलचाल की भाषा का वही वितरण है, अर्थात् दक्षिण-पश्चिम से उत्तर-पूर्व की ओर, तथा उत्तर-पश्चिम के क्षेत्रों में निश्चित विभिन्नता है।

यह दक्षिण-पश्चिम से उत्तर-पूर्व की ओर की धारा भूगोल पर आधारित नहीं है तथा यह जर्मनी के किसी भी भौगोलिक अध्ययन से स्पष्ट है, जैसे कि चित्र ४७ तथा ४८ से भी प्रकट है, जिनमें समस्त जर्मनी की प्राकृतिक दशा दिखलायी गयी है तथा उत्तरी जर्मनी के मैदानी भाग के प्राकृतिक दृश्य भी, जो हिमनदी द्वारा लायी गयी सामग्री से बन गये हैं।

इन सब प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि जर्मनी में दोनों अर्थात् भौतिक तथा सांस्कृतिक मानव विज्ञान ऐसे क्षेत्रों में मिलते हैं जो भूगोल से मेल नहीं खाते। इसका मुख्य कारण वहाँ के मनुष्यों की जातिसम्बन्धी विशेषताएँ तथा उनका जातिवैज्ञानिक इतिहास है। साथ ही यद्यपि इन क्षेत्रों की स्थापना हुए १५०० वर्ष हो गये और जातिगत अंतःमिश्रण का पूरा अवसर इन्हें मिलता रहा, फिर भी जाति सम्बन्धी विभाग उनमें आज भी दृष्टिगोचर होते हैं।

बालकन-निवासी

यहाँ तक कि बालकन-निवासियों में भी, जो इतनी विभिन्न जातियों के हैं (ऐसा कहने के लिए यदि हमें क्षमा किया जाय) कि यह प्रदेश अवश्य ही विभिन्न जातियों के मिश्रण का स्थान रहा होगा, साफ़ जातिवैज्ञानिक समरूपता मिलती है, यद्यपि तथ्य यह है कि रोमेन्स, ग्रीक लोग, साइथिया निवासी, हून तथा तुर्क पिछले २-३ सहस्र वर्षों से यहाँ आये या यहाँ से होकर निकले हैं।

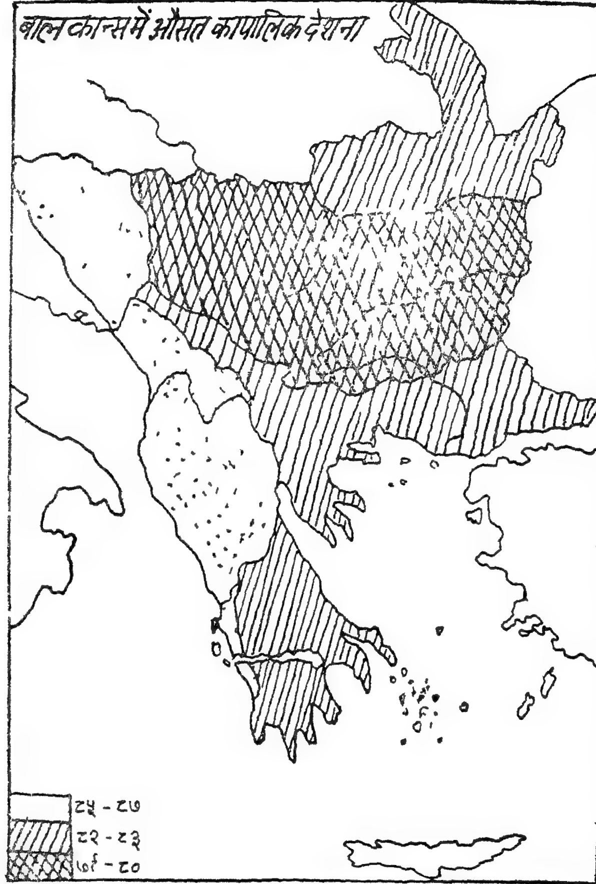
साथ में दिये हुए मानचित्रों (चित्र नं० ४९-५०) से औसत कापालिक देशना (कपाल की तुलनात्मक लम्बाई तथा चौड़ाई का अनुपात) तथा स्वर्ण केशों के प्रतिशत का पता चलता है।

ऐसा देखा जायगा कि सम्पूर्ण दक्षिणी भाग में, दक्षिणी यूगोस्लाविया से ग्रीस तथा यूरोपीय तुर्की तक, काले केशोंवाले लोग रहते हैं, परन्तु यदि हम कपाल के अनुपात को देखें तो मालूम होगा कि निश्चित रूप से इस भाग में ही, भीतरी भाग की अपेक्षा अधिक चौड़े कपालवाले लोग हैं।

जब कि भीतरी भागों में, जिनके अन्तर्गत सर्विया, बलगारिया तथा रूनेलिया हैं, (यहाँ पुराने नामों का प्रयोग किया गया है जैसा कि मानचित्रों में है) हलके रंग के तथा लम्बे कपालवाले लोग हैं।

यहाँ पर पुनः समानता है।

सबसे चौड़े कपालवाले लोग बालकन प्रायद्वीप के एड्रियाटिक भाग में हैं जहाँ पर किडाइनारिक जाति के छोटे कपालवाले लोग सबसे प्रबल हैं। और यही के लोग



चित्र नं० ४९—बालकन्स में औसत कापालिक देशना

[यदि हम इस मानचित्र की अगले से तुलना करें तो देखेंगे कि भीतरी हिस्सों के लम्बे कपालवालों तथा हलके रंग के केशवालों में और बाल्कान के चारों ओर के चौड़े कपालवालों तथा गहरे रंग के बालोंवालों के बीच समानता है।]

सबसे गहरे रंग के हैं। गौर वर्ण तथा बड़े कपाल के नार्डिक लोग वास्तव में भीतर की ओर अधिक दिखाई देते हैं।



चित्र नं० ५०--बाल्कान्स में स्वर्णकेशों का औसत प्रतिशत

(पिटर्ड द्वारा, हैन्स एफ० के० गुन्थर के 'रैसेन्कुन्दे यूरोपाज से)

[ऐसा देख पड़ेगा कि अन्दर के भाग में अधिक नार्डिक रक्त के कारण हल्के रंग के केश तथा लम्बे कपाल है तथा चारो ओर के भाग में गहरे रंग के केश और छोटे कपाल हैं, मुख्यतः दक्षिण-पश्चिमी तथा पश्चिमी भाग में डाइनारिक प्रभाव से, दक्षिण में डाइनारिक तथा आर्मीनायड प्रभाव से और उत्तरी भाग में अल्पाइन के साथ आर्मीनायड के प्रभाव से।]

बलगारिया के उत्तर में फिर कपाल चौड़े मिलने लगते हैं तथा रंग भी काला मिलता है जो कि निःसन्देह ही अधिक अल्पाइन तत्त्व तथा साथ में कुछ आर्मीनायड और डाइनारिक मिश्रण होने के कारण है।

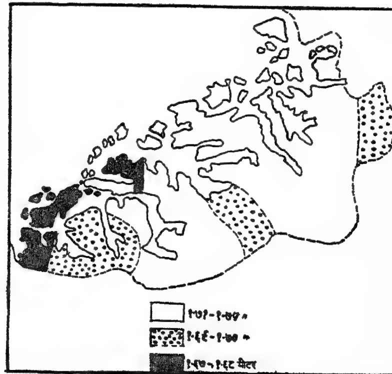
नार्वे के मोर क्षेत्र में जातीय प्रकारों का प्रादेशिक पृथक्करण

अब तक हमने बड़े माप पर वितरण की परीक्षा पर ध्यान दिया था जिसमें सम्पूर्ण प्रान्त अथवा देश सम्मिलित थे।

फिर भी, इसके साथ ही यह भी सम्भव है, चाहे यह कुछ आश्चर्यजनक भले ही हो, कि बिलकुल छोटे क्षेत्रों में भी जाति-वैज्ञानिक प्रादेशिकता मिल सकती है।

यहाँ पर हम दक्षिण-पश्चिमी नार्वे में मोर नामक एक छोटे क्षेत्र को देखेंगे। परन्तु यह अकेला ही उदाहरण नहीं है, इस अध्याय में दिये गये अन्य विस्तृत वितरणों जैसा ही है तथा यह बात सिद्ध करने के लिए ये अनेक उदाहरण पर्याप्त हैं। परिणामतः आगे हम फिनिस्टरी के पश्चिमी ब्रिटेनी तथा फ्रान्स के डारडोन में महत्त्वपूर्ण जाति-वैज्ञानिक सम्बन्ध की ओर ध्यान आकर्षित करेंगे।

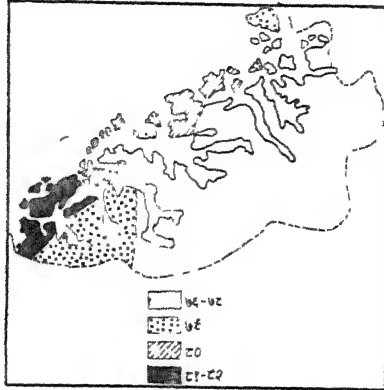
(मोर क्षेत्र के पाँच चित्र क्रमशः आगे देखिए)



चित्र नं० ५१—डीलडौल

यदि हम नार्वे के मोर ज़िले के चित्र नं० ५१ से ५५ तक देखें तो विदित होगा कि उन क्षेत्रों में जहाँ कि लोग छोटे कद के हैं, छोटे चेहरे, काले केश, काली आँखें तथा छोटा कद, जो कि सारे गुण अल्पाइन जाति के हैं, पाये जाते हैं।

साथ ही हम यह कह दें कि आगे चलकर हम यह सिद्ध करना चाहते हैं कि प्रमाणों से इसमें बहुत कम सन्देह रह जाता है कि जातिगत स्वभाव के वंशानुगति में बने रहने



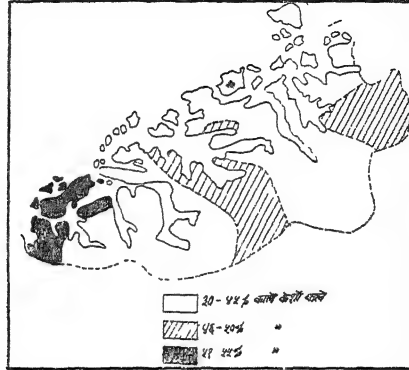
चित्र नं० ५२—कापालिक देशना



चित्र नं० ५३—चेहरे का प्रकार

की, न बने रहने की अपेक्षा, अधिक सम्भावना है। परिणामतः हम समझते हैं कि इसे देखकर कोई आश्चर्य न होना चाहिए कि नार्वे के दक्षिण-पश्चिम में नार्डिक तथा

अल्पाइन दोनों जातीय समूहों के मानसिक दृष्टिकोण में, एक ही प्रकार की परिस्थितियाँ होते हुए भी, अन्तर है।



चित्र नं० ५४—केशों का रंग

हालाँ कि हम एकाध बार किसी एक परिस्थिति में एक जातीय समूह से दूसरी जाति के मानसिक तथा मनोवैज्ञानिक गुणों की पित्रागति तथा बीमारियों के विभिन्न प्रतिरोधों के विषय में चर्चा करेंगे, परन्तु इन सब पर आगे चलकर पूर्ण विस्तार से अध्ययन किया जायगा। यहाँ पर केवल ऐसे पारस्परिक सम्बन्धों की ओर ध्यान देंगे जो उनमें विद्यमान हों अथवा विद्यमान होते से मालूम हों।[1]

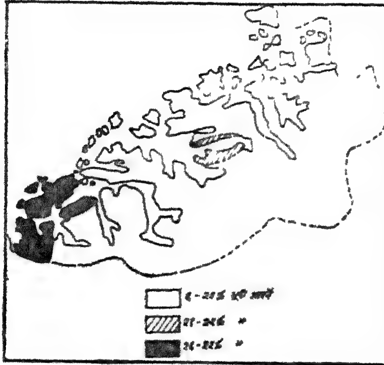
कद तथा स्वास्थ्य की जातिगत विभिन्नता में सामंजस्य

साथ में दिये हुए फिनिस्टरी[2] (Finisterre) के दो मानचित्रों से हम दूसरा पारस्परिक सम्बन्ध देखते हैं जो कुछ महत्त्व का हो सकता है, क्योंकि लम्बे मनुष्य

१. हम ऐसे विषयों को समझने में ५० वर्ष पूर्व की अपेक्षा अब काफ़ी आगे बढ़ गये हैं। फ्रांस में भौतिक तथा मानसिक गुणों के सम्बन्ध पर रिपले ने जो कुछ सन्देह प्रकट किये हैं तथा जो अब उसकी रचनाओं का महत्त्व कम करते हैं, आजकल ऐसे विद्वान् द्वारा न लिखे गये होते।

२. डब्लू० जेड० रिपले द्वारा, दि रेसेज आफ यूरोप, केगन पाल, फ्रेंच, ट्रबनर ऐंड कम्पनी लि० १८९९ पृष्ठ ८९, चेसेग्ने पर आधारित।

ब्रिटेनी के अधिकांश तटवर्ती लोगों की भाँति अधिक नार्डिक तथा ऐटलांटिक हैं और छोटे मनुष्य अधिक अल्पाइन हैं। यह स्पष्ट है कि पहलेवाले अपने छोटे तथा



चित्र नं० ५५—आँखों का रंग

(दक्षिण-पश्चिमी नार्वे के मोर जिले के ये पाँचों चित्र, ब्रिन द्वारा गुन्थर की 'रेशल एलीमेण्ट्स ऑफ़ यूरोपियन हिस्ट्री' से लिये गये हैं)

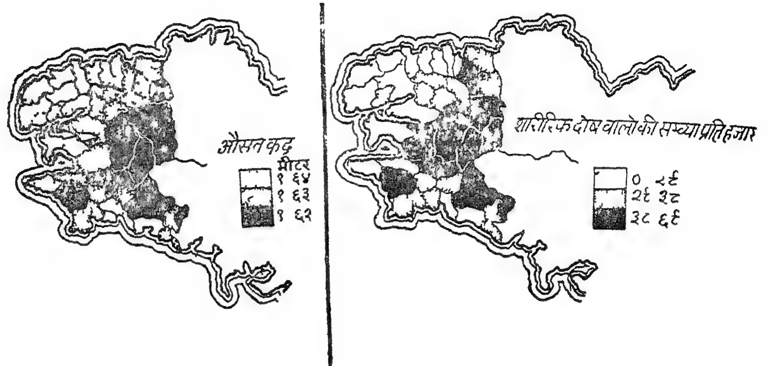
[मानचित्र देखने से प्रतीत होगा कि छोटा कद, छोटा कपाल, छोटा चेहरा, काले बाल तथा आँखें जो कि अल्पाइन लोगों की विशेषता है एक क्षेत्र में मिलती हैं तथा ऊँचा कद, लम्बा कपाल तथा चेहरा, हलके रंग के बाल तथा आँखें जो कि नार्डिक लोगों की विशेषताएँ हैं, अन्य क्षेत्रों में मिलती हैं।

यह जातीय गुणों के सादृश्य तथा दो जातीय तत्त्वों के, उनमें परस्पर समानता होते हुए भी, पृथक् रहने के प्रमाण का साफ़ उदाहरण है, यद्यपि दोनों का निवास एक दूसरे की सीमा के पास ही है।]

अधिक अल्पाइन पड़ोसियों से, जो कि भीतरी तथा पूर्वी भाग में पाये जाते हैं, स्वास्थ्य की दृष्टि से अधिक चुस्त हैं।

हम रिपले के मत से सहमत नहीं है कि भीतरी भाग में जनसंख्या का छोटा कद

ब्रिटेनी के फिनिस्टरी में कद तथा स्वास्थ्य का पारस्परिक सम्बन्ध



चित्र न० ५६--५७

(चेसेग्ने द्वारा, डब्लू० ज़ेड० रिपले से)

ब्रिटेनी (Brittany) के फिनिस्टरी (Finisterre) में कद तथा स्वास्थ्य के पारस्परिक सम्बन्ध का मानचित्र

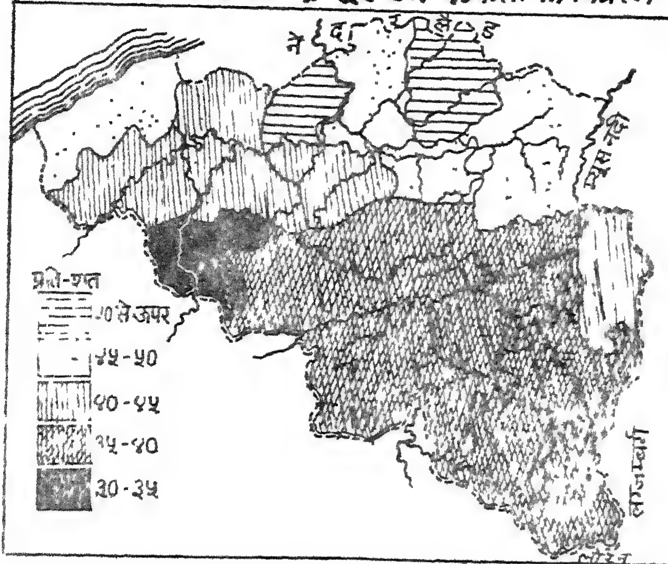
[तटवर्ती क्षेत्रों में भीतरी भागों की अपेक्षा अधिक नार्डिक विस्तार (तथा उसमें अधिक ऐटलान्टिक भी) मिलता है। इसलिए यह बड़ा कद तटवर्ती तथा भीतर की जनसंख्या की जातीय विभिन्नता को बतलाता है।]

बंजर भूमि के कारण है। इस मत मे इस बात पर ध्यान नही दिया गया कि तटवर्ती जनसंख्या प्रायः अधिक नार्डिक है।[1]

१. हमारा अभिप्राय अवश्य ही यह नहीं है कि अल्पाइन सब जगह तथा सभी समय में नार्डिक लोगों से कमजोर है, परन्तु इस विशेष स्थिति में ऐसा ही है। संभव है कि यह प्रत्येक वर्ग के पित्र्यक (जनकबिंदु, जीन) के चुनाव तथा पृथक्करण की स्थानीय विभिन्नता के कारण हो, जिसका परिणाम यह है कि इस विशेष क्षेत्र में एक वर्ग दूसरे से अधिक चुस्त है। फिर भी यह एक जातिगत पारस्परिक सम्बन्ध है, इसलिए काफ़ी महत्त्व का है।

बेलजियम के भाषावार विभागों में बालों के रंग तथा कपाल के अनुपातों का पारस्परिक सम्बन्ध

बेलजियम एक अन्य छोटा क्षेत्र है जहाँ पर सैकड़ों वर्षों से औद्योगिक तथा अधिक शहरी उन्नति हुई है तथा जहाँ पर काफ़ी पूर्व काल से अन्तर्विवाह होता रहा है।



चित्र नं० ५८

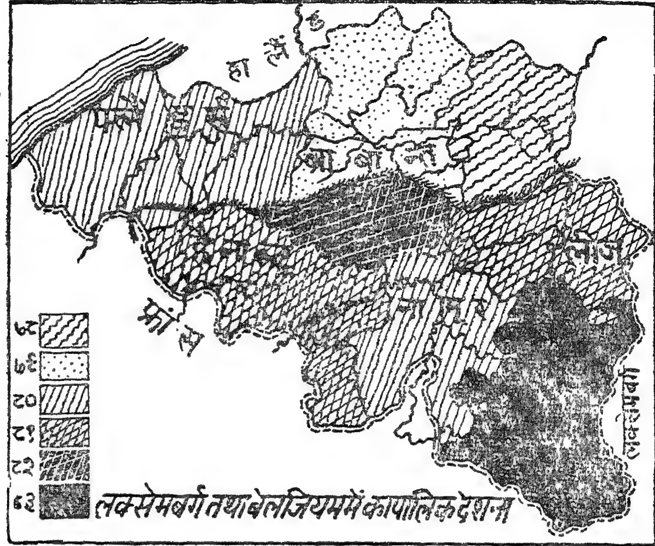
(वाण्डरकिण्डर द्वारा, डब्लू० ज़ेड० रिपले से)
बेलजियम में स्वर्ण तथा भूरे रंग के केशों का वितरण,
१८७९ में ६०८,६८९ निरीक्षणों पर आधारित

[डच सीमा तक उत्तर में स्वर्ण केशों का अंश अधिक है तथा कुछ स्थानों में ५० प्रतिशत तक है।

दक्षिण में फ्रान्स की सीमा की ओर इस अनुपात में कमी होती है तथा यह लगभग ३५–४० प्रतिशत में मिलता है।

यह नार्डिकतत्त्व की कमी के कारण है, जैसा कि अगले मानचित्र से स्पष्ट है।]

फिर भी दिये हुए मानचित्रों से स्पष्ट होता है कि उत्तर की ओर के मनुष्य अधिक गौरवर्ण और लम्बे कपाल के हैं और दक्षिण में भूरे और चौड़े कपाल के हैं।



चित्र नं० ५९

(हाउज़ (House) द्वारा, डब्लू० ज़ेड० रिपले से)

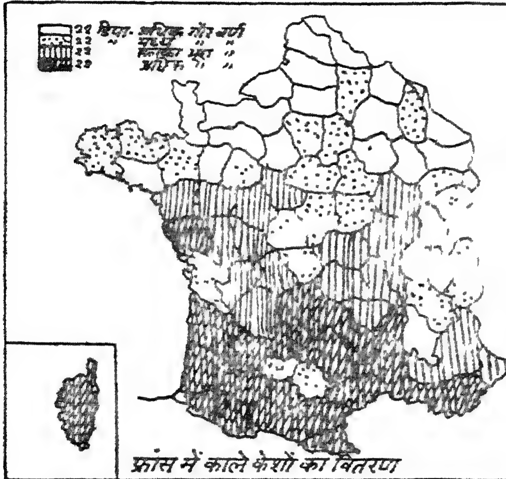
लक्ज़ेम्बर्ग तथा वेलजियम में कापालिक देशना का वितरण

१८८२ के ७३९ निरीक्षणों पर आधारित

[डच सीमा के समीप के लोगों के सबसे लम्बे कपाल हैं परन्तु फ्रान्स तथा लक्ज़ेम्बर्ग की ओर छोटे होते जाते हैं। पिछले मानचित्र के साथ देखने से यह सिद्ध हो जाता है कि गौरवर्ण जनसंख्या में पूर्वी बाल्टिक (जिसके चौड़े कपाल हैं) के कारण नहीं परन्तु नार्डिक जाति की सन्तति होने के कारण हैं। यह भी विदित होगा कि हैनाल्ट, नामूर, लीज तथा दक्षिणी ब्रबान्त में फ्रान्सीसी बोलनेवाले हैं तथा यहाँ वाले (वालून्स), उत्तर में बसे फ्लेमिंग्स की अपेक्षा जाति की दृष्टि से कम नार्डिक हैं।

यह उदाहरण न केवल, पास रहते हुए भी एक दूसरे से काफ़ी पृथक् जाति-वैज्ञानिक समूहों के कायम रहने का है, बल्कि जाति-वैज्ञानिक के साथ यहाँ सांस्कृतिक सीमाओं का सम्बन्ध भी दृष्टिगोचर होता है।]

इसके सिवाय, इन दोनों प्रकारों में (अधिक नार्डिक तथा अधिक अल्पाइन बेलजियम-निवासियों में) तथा भाषावार सीमाओं में, फ्लेमिश बोलनेवाले नार्डिकों तथा फ्रेन्च बोलनेवाले वालूनों का सम्बन्ध महत्त्वहीन नहीं है।



चित्र नं० ६०—फ्रांस में काले केशों का वितरण

(टोपीनर्ड के २,००,००० निरीक्षणों पर आधारित)

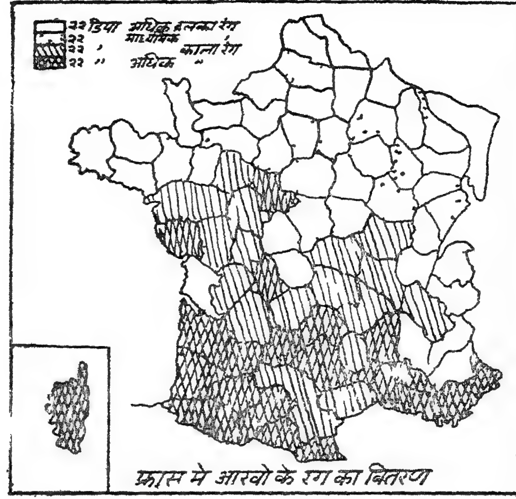
[इस निरीक्षण में फ्रांस के ८८ डिपार्टमेण्ट चार समूहों में बाँटे गये हैं, जिनमें से प्रत्येक में २२ डिपार्टमेण्ट हैं। यह विभाजन अधिक गौर वर्ण वालों, मध्य गौर वर्णों तथा हलके भूरे रंगवालों और अधिक भूरे रंग-वालों में किया गया है।]

(यह देखने योग्य है कि फ्रांस के दक्षिण-पश्चिमी भाग में जहाँ कि जनसंख्या में अल्पाइन तथा मेडिटेरेनियन जातियों का मिश्रण है काले केश पाये जाते हैं एवं उत्तर तथा उत्तर-पूर्व में अधिक नार्डिक प्रभाव होने के कारण हलके रंग के केश पाये जाते हैं।)

फ्रान्स में आँखों तथा केशों के रंग का पारस्परिक सम्बन्ध

टोपीनर्ड की पुस्तक पर आधारित फ्रान्स के दिये हुए मानचित्रों से स्पष्ट हो जाता है कि केशों तथा आँखों के रंगों में काफी सम्बन्ध है जो कि यूरोपीय जातियों में एक साथ

मिलने वाली विशेषता है।[१] काले केश तथा आँखे मेडिटेरेनियन और अल्पाइन लोगो से सम्बन्धित है तथा हलके रग की आँखे और केश नार्डिक जाति से।



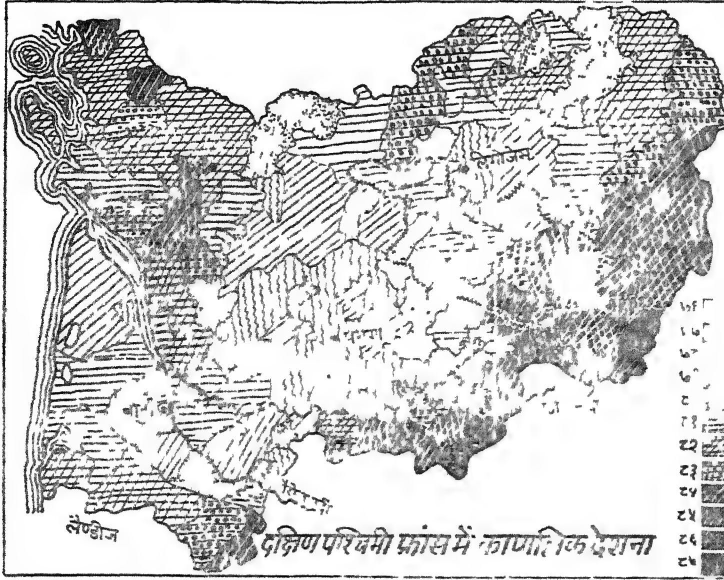
चित्र नं० ६१—फ्रान्स में आँखों के रंग का वितरण

(टोपीनर्ड द्वारा, ए० सी० हेडन से)

[टोपीनर्ड के निरीक्षण पर आधारित डिपार्टमेण्ट का यह वितरण भी उन्हीं सिद्धान्तों पर आधारित है जिनसे प्रत्येक समूह में २२ डिपार्टमेण्ट पड़ते है। ये है—हलकी आँख के, माध्यमिक हलकी आँख के, माध्यमिक काली तथा अधिक काली आँखों के समूह। स्पष्ट है कि फ्रान्स के दक्षिण-पश्चिमी भाग में जिसमें कि मेडिटेरेनियन और पीरेनीज तथा फ्रान्स के मेस्सिफ़ सेण्ट्रल भाग में अल्पाइन तत्त्व अधिक है, काली आँखें है, उसी प्रकार से जैसे कि पिछले मानचित्र में काले बाल है। जैसे उत्तर-पूर्व में हलके रंग के बालवाले है वैसे ही उत्तर, उत्तर-पूर्व तथा पूर्व में हलके रंग की आँखोवाले है।]

१. पी० टोपीनर्ड (P. Topinard), Statistique de la Coleur des Yeux et des Cheveux en France, Assoc. Francaise pour l'Avance. des Sci., Paris, 1889, 2nde Parte, P. 615.

उनसे यह भी स्पष्ट रूप से पता चलता है कि फ्रान्स के उत्तर पूर्व में अब भी नार्डिक तथा दक्षिण पश्चिम में निश्चित रूप से मेडिटेरेनियन जाति के लोग हैं।



चित्र नं० ६२

(कोलिगनन (Collignon) द्वारा, डब्लू० ज़ेड०रिपले से)
दक्षिण-पश्चिमी फ्रान्स में कापालिक देशना का वितरण

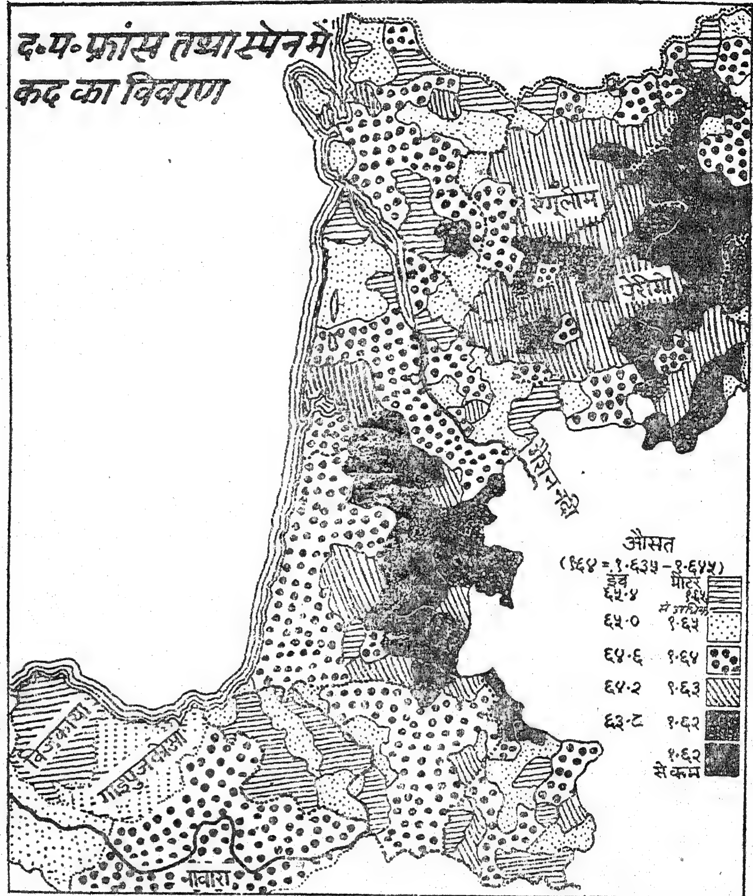
[ऐसा देखा जायगा कि लम्बे कपालवाले दो प्रदेश हैं जिनमें कि कापालिक देशना सबसे कम है, एक लिमोजेज के चारों ओर तथा दूसरा पेरीगो (Perigueux) के चारों ओर है।

ये दोनों एक दूसरे से अलग तथा चौड़े कपालवाले लोगों के प्रदेशों से घिरे हुए हैं।]

दक्षिण-पश्चिमी फ्रान्स में जातियों के अवशेष

जाति के तत्त्वों के बचे रहने के सब प्रमाणों में से, अत्यन्त मिश्रित जनसंख्या में भी, एक सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है जिसकी ओर गारडोन तथा फ्रान्स के आसपास के प्रदेशों

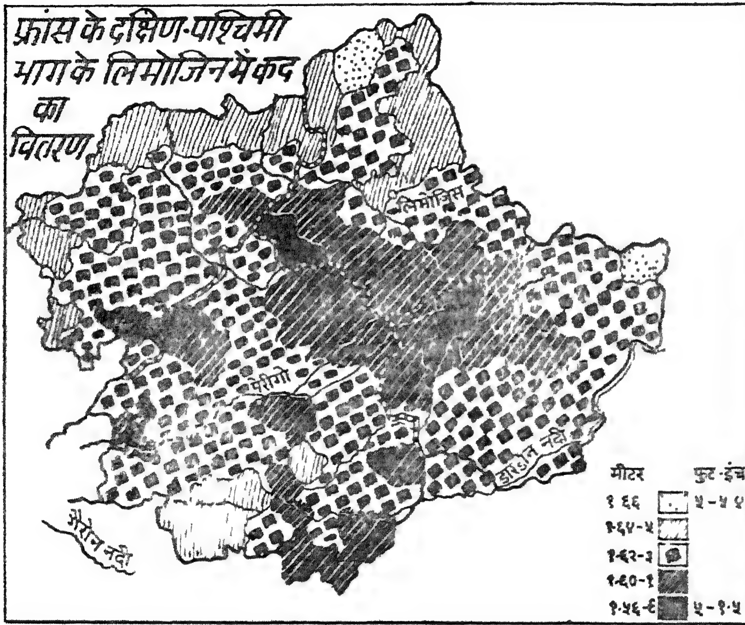
में डब्लू० ज़ेड० रिपले ने हमारा ध्यान आकर्षित किया है।[1] साथ में दिये हुए दो मानचित्रों से विदित होगा कि लम्बे सिरवालों के दो प्रदेश हैं, एक लिनोजेज़ के चारों ओर तथा दूसरा पेरीगो के चारों ओर है।



चित्र नं० ६३—द० प० फ्रान्स में कद का वितरण
(१८९५ में कोलिगनन तथा १८९६ में ओलोरिज़ द्वारा, डब्लू० ज़ेड० रिपले से)

१. दि रेसेज़ आफ़ यूरोप, केगन, पाल, ट्रूबनर एण्ड कं० लि०, लन्दन, १८९९

ये दोनों एक दूसरे से लिमोज़िन (Limosin) की पहाड़ियों द्वारा पृथक् हैं जिनमें सब से गरीब जीविका वाला प्रदेश पड़ता है। परिणामस्वरूप वहाँ के लोगों



चित्र नं० ६४

(कोलिगनन द्वारा, डब्लू० ज़ेड० रिपले से)

फ्रांस के दक्षिण-पश्चिमी भाग के लिमोजिन में कद का वितरण

[इसमें यह देखा जायगा कि साधारणतया छोटे कदवाले लोगों के इस क्षेत्र में, जो गैरोन नदी के उत्तर-पूर्वी भाग में हैं, पेरीगो के चारों ओर और ठीक उत्तर में तथा लिमोज़िस के आसपास कुछ बड़े कदवाले लोगों का क्षेत्र है तथा इन दोनों के बीच में छोटे कदवाले लोग हैं।]

का कद और विकास अवरुद्ध होकर रह गया है। यह बात कोलिगनन के कद सम्बन्धी मानचित्र से स्पष्ट मालूम होती है। ये लम्बे सिरवाले, चौड़े सिरवाले अल्पाइनों से घिरे हुए हैं तथा यह बात कापालिक देशनाओं के मानचित्र से, जिसमें काले रंग के क्षेत्र अधिकांश अथवा मुख्यतः उस जाति के हैं, ज्ञात होती है।

कदसम्बन्धी मानचित्र से यह भी पता चलता है कि यदि हम छोटे कदवाले लोगों

का विचार करें, जो कि लिमोज़िन पहाड़ी की खराब भूमि में रहते हैं, तो मालूम होगा कि लिमोज़िन तथा पेरीगो के लोग छोटे कद के लोगों से घिरे हुए हैं।



चित्र नं० ६५
(डब्लू० ज़ेड० रिपले द्वारा)
लिमोजेज तथा पेरीगो प्रदेशों की जातिवैज्ञानिक कुंजी

[यह ऊपर का मानचित्र प्रोफेसर रिपले द्वारा खींचा गया है जिसमें उन्होंने कद तथा कापालिक देशना का वितरण दिखलाया है तथा उसे निवासियों के बालों के रंग से सम्बन्धित किया है।

उन्होंने बतलाया है कि जो चीज लिमोजेज़ के निवासियों को पेरीगोवालों से पृथक् करती है वह यह है कि पहले स्थान के लोग अधिक साफ़ रंग के तथा नार्डिक रक्त के हैं, जिसको कि उन्होंने ट्युटानिक कहा है। जैसे कि पश्चिम में मेडक के लोग जो कि समुद्र द्वारा आकर बसे हुए ऐंग्लो-सैक्सन के वंशज हैं, किन्तु दूसरे स्थान (पेरीगो) के लोग काले हैं अर्थात् या तो मेडिटेरेनियन या अर्द्ध विकसित ऐटलान्टिक हैं। इनको उन्होंने 'क्रोमैगनन' कहा है इसलिए हम समझ सकते हैं कि किसी अंश तक इन मेडिटेरेनियनों पर भी ऐटलान्टिक प्रभाव पड़ा है।]

प्रोफेसर रिपले ने इस समस्या पर जो कार्य किया है उससे भली-भाँति पता चलता है कि लिमोजेज़ तथा पेरीगो के दोनों केन्द्रों में लम्बे सिरवाले केवल लम्बे कपाल की एक जाति के घुस आने से ही नहीं बने हैं। उनके अनुसंधान के परिणाम उनके महत्त्वपूर्ण मानचित्र में दिये गये हैं (मानचित्र ६५ देखिए)।

उन्होंने यह पाया कि लिमोजेज के लोगों में स्वर्ण-केशों का अनुपात अधिक है तथा स्त्रियों में भूरा रंग अधिक था जो कि अल्पाइन के ठीक मध्य में स्थित है। जब कि इसके विपरीत पेरीगो के लम्बे सिरवालों के काले केश थे। यही नहीं बल्कि काले केशों का अनुपात औसत मेडिटेरेनियन की अपेक्षा अधिक था।

इसलिए उन्होंने यह परिणाम निकाला कि फ्रान्स के लिमोजेज़ के लोग, जो कि जर्मन आक्रमणकारियों के कट्टर रक्षक थे, फ्रैन्क तथा अन्य दूसरे लोग उत्तर-पूर्व से आये हैं।[1] जब कि पेरीगो प्रदेश के लम्बे कपालवालों के काले केश, उभड़ी हुई भौहों की और गाल की हड्डियाँ तथा दृढ़ चर्वण पेशियाँ हैं, उन्होंने परिणाम निकाला, जैसा कि उनके मुख्य मानचित्र से पता चलता है, कि वे 'क्रोमैगनन' या जैसा कि हम उन्हें कहते हैं, ऐटलाण्टिक थे।[2]

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कुछ उदाहरणों में सैकड़ों वर्षों तथा हमले पर हमले होने के पश्चात् और अपने साथियों से पूर्ण रूप से छूट जाने पर भी पुराने जातीय गुण, जैसा कि इस उदाहरण में 'ऐटलाण्टिक' तथा नार्डिक दोनों के ही गुण, वर्तमान समय में भी स्पष्ट रूप से जातीय इकाइयों में कायम हैं।

वारसा में यहूदी तथा पोल

यदि जाति एक स्थायी वस्तु न होती वरन् ऐसी होती जो कि मनुष्यों के घुल-मिल जाने से (परन्तु आवश्यक नहीं कि अन्तर्विवाह हो ही) विलुप्त हो जाती अथवा जहाँ कि परिस्थितियाँ दोनों के लिए ही समान हैं, तो यहूदी भी अपने पड़ोसी के समान ही मिलने चाहिए। परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है।

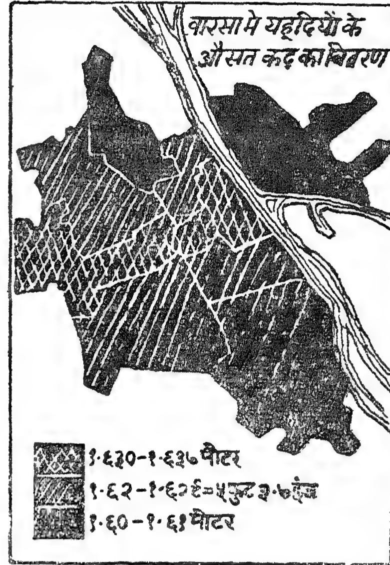
यदि हम साथ में दिये हुए वारसा में यहूदी तथा पोलों (Poles) के कद दिखलाने वाले तीन मानचित्रों की, उनकी सामाजिक स्थिति[3] की दृष्टि से तुलना करें, तो हम देखेंगे कि जब यहूदी तथा पोल दोनों में ही शहर के धनी भाग से गरीब भाग की ओर कद छोटे होते जाते हैं तया यह स्वाभाविक ही है, क्योंकि विकास की सभी बातें खुराक तथा अप्रौढ़ता के समय कल्याण तथा उन्हें प्राप्त करने के साधनों पर निर्भर हैं,

१. डब्लू० जेड० रिपले, पूर्व कथित, पृष्ठ १७२

२. ऐटलाण्टिकों से उनका कद छोटा होने का कारण कुछ अंशों तक इस प्रदेश की खराब परिस्थिति भी है।

३. जाक्रेज़ेस्की (Zakrezewski) द्वारा १८९५, डब्लू० जेड० रिपले से, दि रेसेज आफ यूरोप, केगन पाल ट्रबनर एण्ड कं० लि० १८९९, पृष्ठ ३८०।१

यहूदी तथा पोल पास-पास रहते हुए भी कद में समान नहीं हैं। निःसन्देह पहले वाले लम्बे हैं जब कि वे शहर के उसी भाग में रहते हैं।



चित्र नं० ६६

वारसा में यहूदियों के औसत कद के वितरण का मानचित्र, १८९५

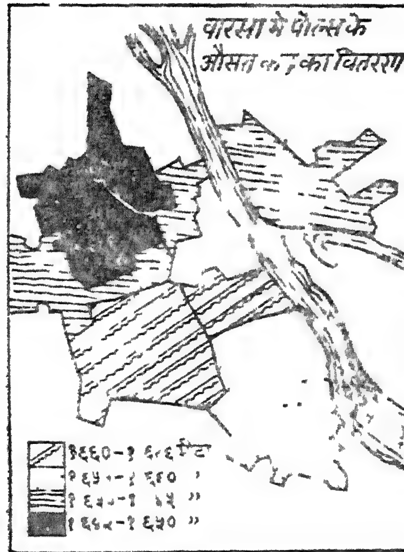
(जाक्रेजेस्की द्वारा किये गये ६८९ निरीक्षणों पर आधारित)

इस वितरण का वर्तमान स्थिति से कोई सम्बन्ध नहीं है जो पोलेंड पर जर्मन अधिकार होने, यहूदियों का नाश तथा रूसियों के जर्मनी पर काबिज होने के बाद बदल गयी है। इसकी तुलना आगे दिये मानचित्र से की जाय तो पता चलेगा कि यहूदियों के कद (जो कि मिश्रित पूर्वजों की सन्तान हैं तथा मुख्यतः आर्मीनायड प्रकार के हैं) देशज पोलों से काफी छोटे हैं जो कि मुख्यतः मिश्रित नार्डिक, पूर्वी बाल्टिक-अल्पाइन तथा डाइनारिक प्रकार के हैं।

फ्रांस में जातीय तथा मनोवैज्ञानिक गुणों की समानता

आगे चलकर हम जाति और मानसिक तथा स्वाभाविक गुणों के पारस्परिक सम्बन्ध और इन पर वंशानुगत गुणों तथा परिस्थिति का कहाँ तक प्रभाव पड़ा है, इस पर विचार करेंगे। इसलिए हमारा अभिप्राय यहाँ इस विषय की व्याख्या का नहीं

है तथा न इतनी विस्तृत समस्या को कम प्रमाणो पर आधारित करके उसका पूर्व निर्णय करने का है। इस स्थान पर हमारा अभिप्राय केवल उन समानताओ से है जो कि बहुत सी जातीय विशेषताओं में सम्बन्ध जोडती हैं। साथ ही यह दिखलाना भी हमारा लक्ष्य है कि क्या ये समानताएँ उनमे तथा मानसिक और स्वभावसम्बन्धी अभि-



चित्र न० ६७

वारसा में पोलों के औसत कद के विनरण का मानचित्र, १८९५

(जाकेजेस्की द्वारा ७२८ निरीक्षणो पर आधारित)

[यदि इस मानचित्र की पिछले से तुलना की जाय तो पता चलेगा कि पोलो की औसत ऊँचाई यहूदियों की अपेक्षा कहीं अधिक है, जो कि शहर का कोई भी भाग क्यो न हो, उनके साथ साथ ही रहते हैं।]

व्यक्तियो मे भी मिलती हैं। यदि शारीरिक विशेषताओ और मनोवैज्ञानिक ढग की बातों मे कुछ सम्बन्ध होना चाहिए, तो इस परिस्थिति का चाहे जो भी कारण हो परन्तु इसका सम्बन्ध कुछ जातीय वितरण से अवश्य है, अगर उसे केवल आकस्मिक कहकर ही हम समाप्त नही कर देते।

यदि यही बात है, जैसा कि अभी देखे हुए नार्वे के मोर के उदाहरण से पता चलता है, तो यह पूर्ण रूप से स्पष्ट हो जाता है कि जातीय वितरण इतने अस्पष्ट नहीं हैं कि



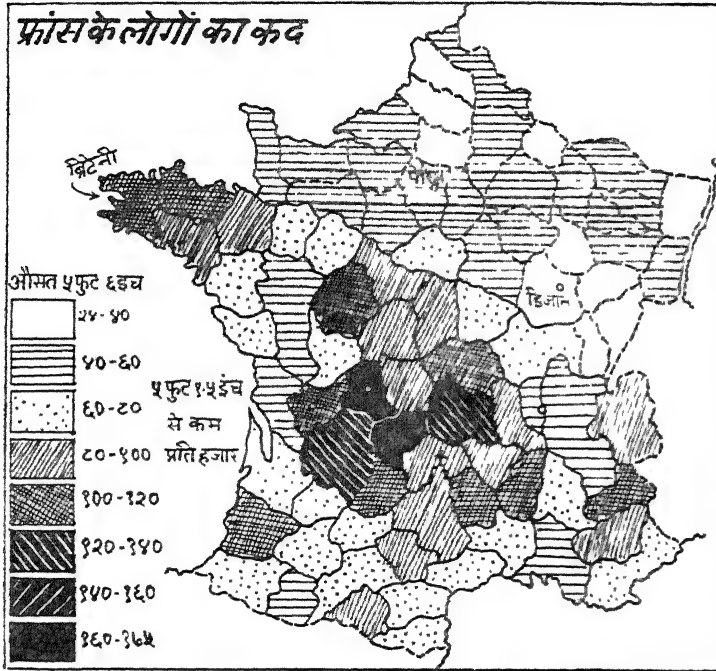
चित्र नं० ६८
(डब्लू० जेड० रिपले द्वारा)

वारसा के विभिन्न भागों के निवासियों की सामाजिक स्थिति के वितरण का मानचित्र, १८९५ (ज्राक्रेज़ेस्की द्वारा निरीक्षित)

[पहले के दोनों मानचित्रों से इस मानचित्र की तुलना करते समय देखा जायगा कि पोलों के कद की साधारणतः लम्बाई परिस्थितियों के कारण नहीं है, क्योंकि न केवल वे यहूदियों से सब स्थानों में लम्बे ही हैं परन्तु जब यहूदी शहर के सबसे धनी भाग में रहते हैं, जो कि अच्छे विकास के लिए उपयुक्त हैं, तो भी यहूदी पोलों की अपेक्षा छोटे ही हैं। इसलिए यहूदियों का छोटा कद केवल खराब खुराक तथा खराब परिस्थिति के कारण नहीं है परन्तु यह वंशानुगत विशेषता के कारण है। दोनों जातीय समूहों में विकास को रुद्ध करनेवाला प्रभाव समान रूप से दिखलाई पड़ता है।]

उनकी उपेक्षा की जा सके और उस वस्तु की तरह उनसे पीछा छुड़ाया जा सके जो कभी थी तो अवश्य, पर अब उसका कोई महत्त्व न रह गया हो। कारण, जिस प्रकार का जीवन हम व्यतीत करते हैं, उससे इनका सीधा सम्बन्ध है।

इसलिए यदि हम साथ में दिये हुए फ्रांस के चित्र[1] ६९,६१,७०-७६ तक मिलाकर



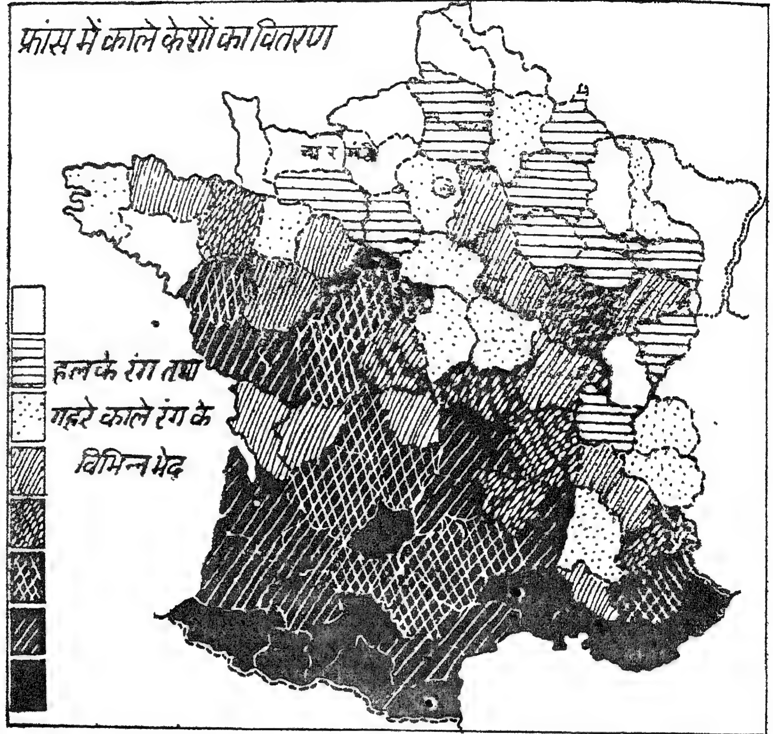
चित्र नं० ६९—फ्रान्स के लोगों के कद १८३१-६०
(ब्रोका द्वारा, डब्लू० जेड० रिपले से)

[यह देखा जायगा कि उत्तरी तथा उत्तर-पूर्वी फ्रान्स में सबसे लम्ब कदवाले लोग हैं तथा सब से छोटे मेस्सिफ्र सेण्ट्रल और ब्रिटेनी तथा दक्षिण-पश्चिम में मिलते हैं।]

ये संख्याएँ पुरानी हैं। स्वास्थ्य-रक्षा और खुराक में सुधार होने तथा कम घण्टे श्रम करने से कद में सुधार की आशा की जा सकती है, फिर भी इस वितरण के ढाँचे में विशेष अन्तर नहीं पड़ेगा।]

१. ब्रोका द्वारा फ्रान्सवालों का कद १८६८; टोपीनर्ड द्वारा फ्रान्सवालों का गौर वर्ण तथा आँखों का रंग, दो लाख निरीक्षणों पर आधारित, हाउज तथा कोलिगनन द्वारा फ्रान्सवालों की कापालिक देशना, १६६५० निरीक्षणों पर आधारित; जे० बर्टिलन द्वारा तलाक की बारम्बारता, मारसेली द्वारा फ्रान्स में आत्महत्या की अधिकता; राजनीतिक प्रतिनिधित्व; पुरस्कारों तथा ओडिन द्वारा विद्वानों का वितरण।

देखें तो अत्यन्त पक्षपातपूर्ण मनुष्य को भी मानना होगा कि इन चीज़ों में इतनी स्पष्ट समानता है कि उसे केवल प्रासंगिक कहकर टाल देना हमारे लिए संभव नहीं।



चित्र नं० ७०

फ्रान्स में काले केशोंवाले लोगों का वितरण

(टोपीनर्ड द्वारा, डब्लू० ज़ेड० रिपले से)

[मानचित्र से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उत्तर तथा उत्तर-पूर्व में सबसे अधिक खुलते रंग के तथा दक्षिण और दक्षिण-पश्चिम में सबसे ज्यादा काले बालोंवाले लोग रहते हैं।

जब ये चीज़ें कद, आँखों के रंग तथा कपाल के आकार के साथ देखी जाती हैं तब स्पष्ट विदित होता है कि उत्तरवालों में नार्डिक तथा दक्षिण-वालों में मेडिटेरेनियन अंश अधिक है।]

परिस्थिति-सम्बन्धी तत्त्वों को दृष्टि में रखते हुए भी, जैसे कि देहाती ज़िलों में शहरों की अपेक्षा अधिक रूढ़िवादी होने की प्रवृत्ति पायी जाती है तथा यह कि फ्रान्स का मैस्सिफ़ सेण्ट्रल भाग सबसे अधिक पिछड़ा हुआ है, यह मानना पड़ता है कि जातिगत साम्य बहुत स्पष्ट है।

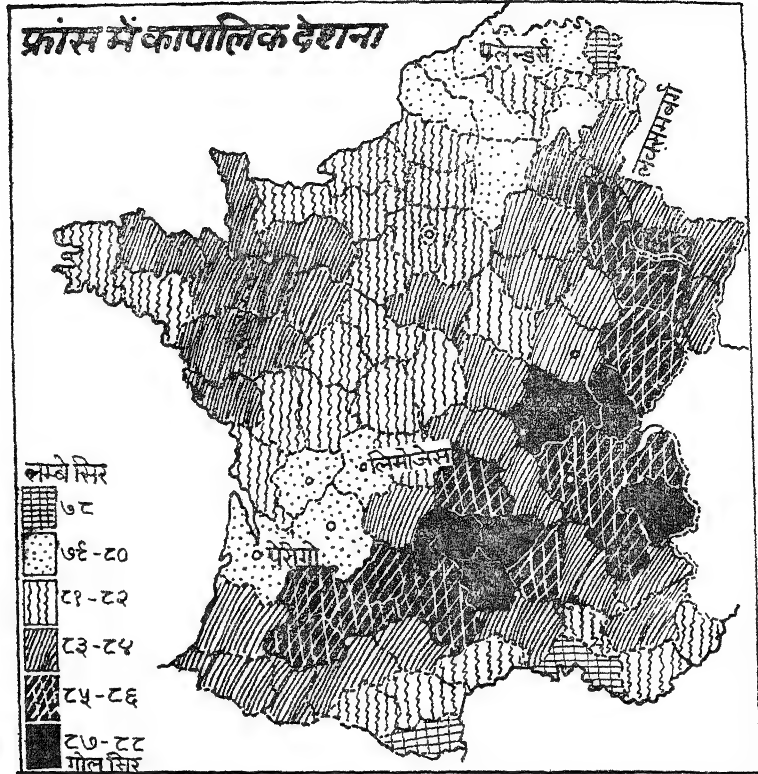


चित्र नं० ७१
(टोपीनर्ड द्वारा, ए० सी० हेडन से)
फ्रान्स में हलके रंग की आँखों तथा बालों का वितरण, टोपीनार्ड द्वारा

[इस मानचित्र का अभिप्राय आँखों तथा केशों के रंगों के परिणामों को मिलाकर देखने का है तथा हलके से लेकर गहरे वर्गों तक के रंग को स्पष्ट रूप में प्रदर्शित करना है।

यह देखा जायगा कि उत्तर-पश्चिम से दक्षिण-पूर्व की ओर देश लगभग दो भागों में विभाजित है। उत्तर का आधा भाग हलके रंग की आँखों व केशों का है तथा अधिक नार्डिक है और दक्षिण का भाग काले रंग की आँखों तथा बालों का है, इसलिए अधिक मेडिटेरेनियन तथा अल्पाइन हैं।]

इस प्रकार, उत्तर-पूर्वी फ्रान्स सबसे अधिक नार्डिक है, मध्य फ्रान्स सबसे अधिक अल्पाइन, दक्षिणी तट सबसे अधिक मेडिटेरेनियन तथा उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र अल्पाइन (और डाइनारिक) लोगों का मिश्रण तथा तट के आस-पास नार्डिक अथवा नार्डिक और ऐटलाण्टिक का मिश्रण मिलता है।



चित्र नं० ७२

फ्रान्स में कापालिक देशना का वितरण

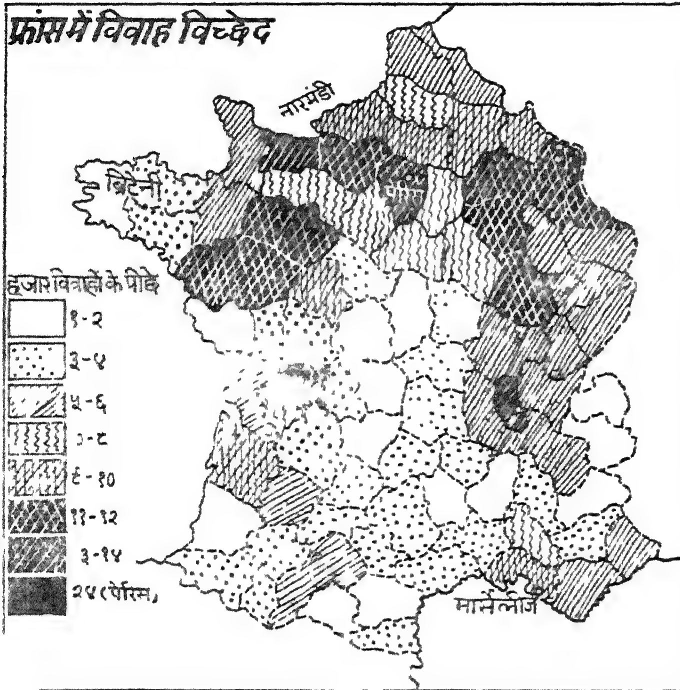
(कोलिगनन तथा हाउज द्वारा, डब्लू० जेड० रिपले से)

[यह देखा जायगा कि उत्तरी फ्रान्स का प्रदेश लम्बे कपालवालों का है तथा उनकी पिछले मानचित्र के हलके रंग के बालोंवाले प्रदेश से समानता पायी जाती है।

इससे स्पष्ट होता है कि उत्तर के फ्रान्सनिवासी अंशतः नार्डिक जाति के हैं।

दक्षिण के लम्बे सिरवाले प्रदेश काले केशोंवाले क्षेत्रों से मिलते हैं। इससे विदित है कि यहाँ की जनसंख्या निश्चित रूप से मेडिटेरेनियन है।]

जब हम विवाहविच्छेद की संख्या देखते हैं तो न केवल पेरिस, सेण्ट नज़ेयर, मार्सेलीज़ तथा बोर्डो जैसे शहरों में ही उसके अधिक होने की प्रवृत्ति पाते हैं, जैसी कि अपेक्षा की जा सकती है,परन्तु यह प्रवृत्ति उत्तर-पूर्वी अथवा नार्डिक फ्रान्स में भी पायी जाती है।

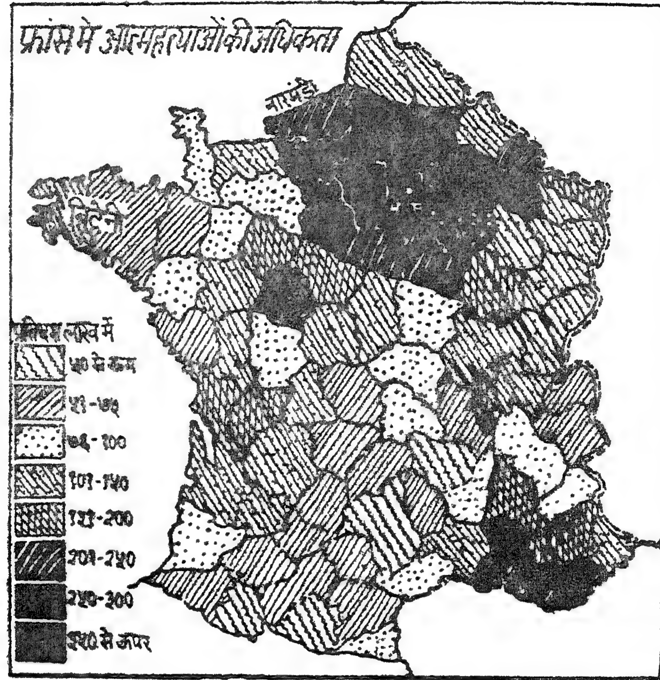


चित्र नं० ७३—फ्रान्स में विवाह-विच्छेद १८६०-१८७९
(जे० बर्टिलन द्वारा १८८३, डब्लू० जेड० रिपले से)

[ऐसा समझा जा सकता है कि इस पर सामाजिक रीतियों का तथा विशेष कर शहर की रहन-सहन का, जहाँ अधिक उन्नतिशील विचारों को प्रोत्साहन मिलने की संभावना है, प्रभाव पड़ा है। इसीलिये पेरिस, मार्सेल्स, बोर्डो, सेन्ट नज़ेयर इत्यादि क्षेत्रों में इनकी संख्या अधिक है, फिर भी इस मानचित्र की अन्य घटनाओं का हल इससे नहीं निकलता।

साधारण प्रवृत्ति यह है कि उत्तर-पूर्वी नार्डिक भाग, मध्य तथा दक्षिण के अल्पाइन और मेडिटेरेनियन लोगों की अपेक्षा, अधिक प्रगतिशील हैं।]

आत्महत्याओं की बारंबारता से भी यही बात प्रकट होती है। उत्तर-पूर्वी फ्रान्स तथा शहरों में अधिक और केप फिनिस्ट्री में यह साधारण अधिक पायी जाती है, जहाँ कि तटीय भागों में स्थानीय नार्डिक भी पाये जाते हैं।

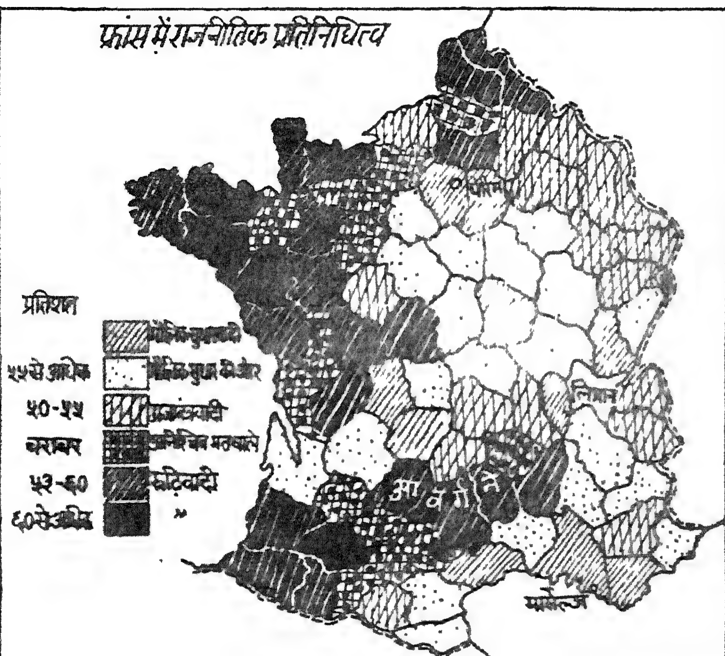


चित्र नं० ७४

फ्रान्स में आत्म-हत्याओं की अधिकता
(१८७२—१८७६)
(मारसेली द्वारा, १८८२, डब्लू० जेड० रिपले से)

[बड़े-बड़े नगर जहाँ पर बसे हुए हैं वहाँ पर उसका अधिक वितरण मिलता है, यह स्वीकार करते हुए भी इस मानचित्र में भी सामान्य प्रवृत्ति पिछले की भाँति ही पायी जाती है।

आत्महत्या की घटनाएँ फ्रान्स के कम नार्डिक भागों की अपेक्षा अधिक नार्डिक भागों में ज्यादा होती हैं।]

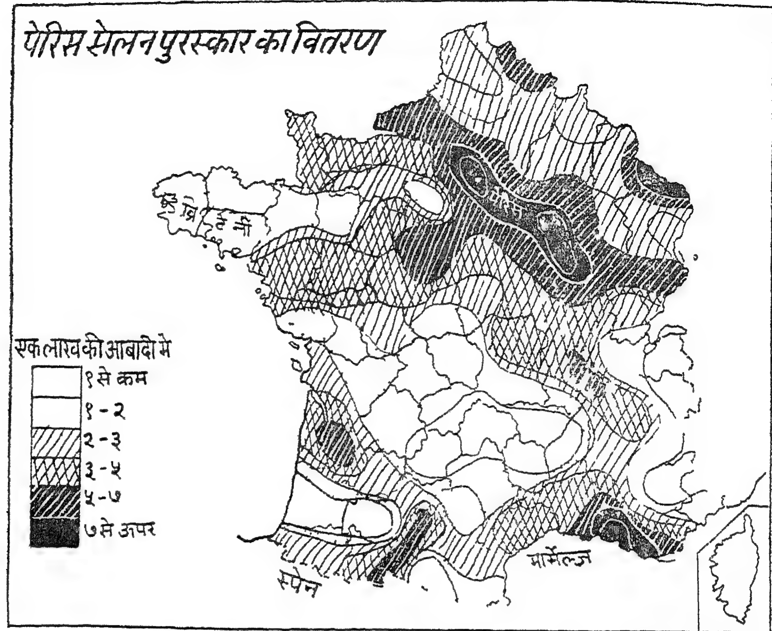


चित्र नं० ७५
फ्रान्स के चेम्बर आफ डिपुटीज में राजनीतिक प्रतिनिधित्व
(डब्लू० जेड० रिपले से)

[ऐसी आशा नहीं की जा सकती कि राजनीतिक प्रतिक्रिया भी स्वभाव की अन्य प्रवृत्तियों की भाँति स्वतः उत्पन्न होगी, क्योंकि स्वार्थ तथा किसी प्रदेश की आर्थिक दशाओं से सम्बन्ध आदि प्रश्न बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। इसलिए आपस में इतनी अधिक उलझी हुई बातों के कारण उनका पारस्परिक सम्बन्ध बहुत स्पष्ट नहीं हो सकता।

फिर भी मध्य फ्रान्स में राजनीति के सबसे अधिक मौलिक सुधारवादी मिलते हैं और इसका दक्षिणी आधा भाग आवर्गने तथा देश के सबसे अधिक अल्पाइन भाग से मिलता है।

आवर्गने के दक्षिण में रूढ़िवादी भाग मिलने से आश्चर्य न होना चाहिये क्योंकि एकाकीपन तथा पिछड़ापन ही इसका कारण समझा जा सकता है। परन्तु इससे यह नहीं स्पष्ट होता कि उसी क्षेत्र का उत्तरी भाग मौलिक सुधारवादी क्यों है? (देखो पृष्ठ ८९ के नीचे)



चित्र नं० ७६

फ्रान्स में पेरिस सेलन (Paris Salon) का पुरस्कार वितरण।

(टरक्वैन द्वारा, डब्लू० ज़ेड० रिपले से)

[यहाँ पर फिर देश के अधिक पढ़े लिखे भागों तथा बड़े नगरों में मिलने वाले अवसर का प्रभाव पड़ना अवश्यंभावी है।

इसलिये पेरिस, मार्सेल्स, बोर्डो तथा सेण्ट नज़ेयर के चारों ओर बड़े पुरस्कारवाले क्षेत्र है तथा छोटे पुरस्कार के क्षेत्र ब्रिटेनी, मेस्सिफ सेण्ट्रल और दक्षिण-पश्चिम के भाग है।

इस मानचित्र में यही बातें दिखायी गयी है। फिर भी स्पष्ट है कि सारी बातें इसमे नहीं आयी है। उदाहरण के लिए बड़े विस्तार के होते हुए भी तथा जो अवसर यहाँ मिलते है उनके बावजूद लियॉन्स, अन्य बड़े शहरों की तुलना में पुरस्कार का कोई बड़ा क्षेत्र नहीं बनाता। जब कि समस्त उत्तरी तथा उत्तर-पूर्वी भाग में, जो कि जनसंख्या के बड़े केन्द्रों की तुरन्त पहुँच के बाहर है, असाधारण बुद्धिमान् होने के प्रमाण मिलते है।

(देखो पृ० ८९ पर)

जहाँ तक राजनीतिक प्रतिनिधित्व का प्रश्न है, विभिन्न भागों में अधिक समानता नहीं है परन्तु कापालिक देशना से उसकी तुलना की अवहेलना नहीं करनी चाहिए। वहाँ चौड़े सिरवालों के दो क्षेत्र हैं। छोटा क्षेत्र फ्रान्स के उत्तर-पश्चिम में है तथा बड़ा क्षेत्र दक्षिण-पश्चिमी भाग से चलकर मैस्सिफ़ सेण्ट्रल को पार करके राइन नदी तक उत्तर की ओर जाता है। इनके मध्य में एक क्षेत्र लम्बे कपालवालों का पड़ता है। इस प्रकार के वितरण में तथा प्रगतिवादियों के प्रतिनिधित्व में काफ़ी समता मिलती है परन्तु केवल फ्लैण्डर्स में किसी निश्चित सादृश्य की कमी मालूम पड़ती है।

(पृ० ८७ का शेषांश)

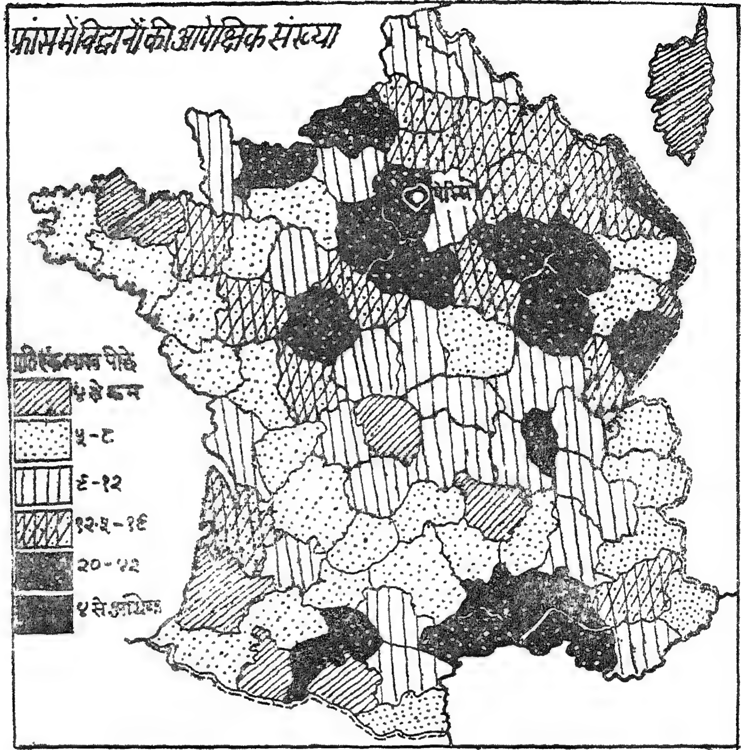
इस प्रकार के राजनीतिक मानचित्रों से अधिक अर्थ निकालने की चेष्टा न करनी चाहिए, क्योंकि पित्रागत स्वभाव की प्रवृत्तियाँ विभिन्न परिस्थितियों तथा आर्थिक दशाओं में विभिन्न परिणाम बतलाती हैं। इस उदाहरण को देखने के पश्चात् यह पता चल जाता है कि वह इसको गलत नहीं सिद्ध करतीं कि फ्रान्स ऐसे देश में राजनीतिक वितरण में अन्य बातों के साथ जातीय कारकों का भी हाथ है।]

(पृ० ८८ का शेषांश)

जो हो, इस मानचित्र और कापालिक देशना के वितरण के मानचित्र में काफ़ी निश्चित सम्बन्ध है तथा इससे यह स्पष्ट है कि जिन क्षेत्रों में कम मेधावी लोग हैं वह अधिक अल्पाइन हैं। इसका जो भी उत्तर हो, चाहे वंशपरम्परा प्राप्त गुण अथवा परिस्थिति ही इसका कारण हो।

इस प्रकार यह बात हम जोर देकर कह चुके हैं कि फ्रांस न केवल स्पष्ट जातिवैज्ञानिक प्रदेशों में ही बाँटा गया है, परन्तु ये प्रदेश (चाहे जो भी कारण समझा जाय) फ्रान्स की प्रतिभा के विकास में अलग-अलग ढंग से अंशदान करते हैं।

यदि यह कहा जाय कि यह इसलिए है कि अल्पाइननिवासी पहाड़ी प्रदेशों में रहते हैं (इस मत से हम पूर्णतया सहमत नहीं हैं) तब यह तथ्य अवश्य महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि इससे इस जातीय प्रकार के पृथक्करण का तथा इसके बहुत पुरानी अन्तःप्रसूत राष्ट्रीयता में बराबर बने रहने का पता चलता है।]



चित्र नं० ७७

(ओडिन द्वारा, १८९५, डब्लू० ज़ेड० रिपले से)

फ्रान्स में जन्मस्थान के आधार पर विद्वानों की सापेक्ष बहुलता

[प्रतिभा का वितरण दिखलाने वाले पिछले मानचित्र के लिए हमने जो कुछ कहा है, वही कुछ अंशों में इसके लिए भी उपयुक्त है।

आस पास की स्थिति के आधार का तर्क पूर्ण संतोषजनक नहीं प्रतीत होता, क्योंकि पेरिस के ठीक पूर्व में ही कम प्रतिभा का क्षेत्र मिलता है तथा सेण्ट नज़ेयर के क्षेत्र से इस सम्बन्ध में प्रायः कोई योगदान नहीं मिलता।

वही बात ठीक मालूम पड़ती है कि साधारणतया अल्पाइन प्रदेशों ने सबसे कम योगदान किया है। हाँ, वंशपरम्परा से ऐसा हुआ है अथवा आस-पास की स्थिति के कारण, इस पर हम ज़ोर नहीं देना चाहते।

(देखो पृ० ९१ पर)

फ्रान्स के अन्तिम दो मानचित्रों में जो बौद्धिक देन का वितरण दिखाया गया है उससे यह भली-भाँति प्रकट होता है कि फ्रान्स के उत्तर-पूर्व में नार्डिकों तथा दक्षिण में मेडिटेरेनियनों के बीच काफ़ी समानता है।

अब हम यह भी जानते हैं कि कितनी ही अनियमित बातें होती हैं। फिर अनेक सामाजिक तथा भौगोलिक प्रभावों का पड़ना, संस्कृति के केन्द्रों का निकट होना, उपयुक्त अवसर मिलना तथा और भी ऐसे तर्क हैं जिन्होंने रिपले[1] को विशेष रूप से प्रभावित किया है। इन सबको अच्छी तरह छाँटकर उनका उचित मूल्य आँकना चाहिए। परन्तु यदि हम हैवलाक इलिस[2] के ग्रन्थ का अध्ययन करें तो हमें यह विदित होगा कि असाधारण प्रतिभा के केन्द्र सबसे अच्छी भौगोलिक परिस्थितिवाले प्रदेशों में ही मिलें, यह आवश्यक नहीं। न उनका उन बड़े नगरों में होना ज़रूरी है जहाँ सामाजिक अवसर अधिक उपलब्ध हों। इस प्रकार ससेक्स लन्दन से इतने समीप होते हुए भी प्रतिभा से बिलकुल वंचित है जब कि लन्दन ने, हमें यदि ठीक स्मरण है तो, यद्यपि

(पृ० ९० का शेषांश)

यह प्रदेश जो कि ब्रिटेनी से मध्य फ्रान्स होता हुआ, (केवल आरमोरिकन शील्ड तथा मैस्सिफ़ सेण्ट्रल के मध्य भाग को छोड़कर फिर उत्तर-पूर्व की ओर आलसेस लोरेन की सीमा तक है, सबसे अधिक अल्पाइन लोगों का प्रदेश है तथा यह क्षेत्र उस क्षेत्र से मिलता है जिसमें साधारणतः सबसे कम प्रतिभावाले लोग हैं।

इसलिए योग्यता को प्रकट करने के अवसर का प्रश्न विचार करने योग्य हो अथवा न हो, यह कहना सम्भव है कि चाहे कुछ भी कारण हो, नार्डिक-प्रधान उत्तर पूर्व ने तथा मेडिटेरेनियन प्रधान दक्षिण ने फ्रान्स को विद्वत्ता में, जहाँ तक इस मानचित्र का सम्बन्ध है, सबसे अधिक योगदान किया है।

इसलिए देश के जाति-सम्बन्धी भागों तथा स्वभाव की विशेषताओं और मानसिक गुणों के क्षेत्रों में समानता है तथा घटनाओं का कारण समझने में इससे भी, भौगोलिक परिस्थिति के प्रभाव की तरह, सहायता मिलती है।

इससे यह अर्थ निकल सकता है कि इसमें दोनों चीज़ों का प्रभाव है। फिर भी जाति विज्ञान की दृष्टि से इनमें परस्पर सम्बन्ध है, यह तथ्य इससे मिट नहीं जाता और एक बार फिर ज़ोर देकर कहा जा सकता है कि फ्रान्स में विभिन्न जातिगत विशेषताएँ पायी जाती हैं।]

१. पूर्व कथित, पृष्ठ ५२४

२. ए स्टडी आफ़ ब्रिटिश जीनियस

उसकी सड़कें सोने से पटी होनी चाहिए थीं, जहाँ तक वहाँ पैदा हुए लोगों का सम्बन्ध है एक भी प्रतिभावान् व्यक्ति उत्पन्न नहीं किया, जैसा कि रिपले ने अपने सूत्र के आधार पर अनुमान लगाया है। साथ ही बर्कशायर जो कि ज्ञान के सबसे बड़े केन्द्र के पास स्थापित है, मूर्खता में ससेक्स का प्रतिस्पर्धी है।

दूसरी ओर ईस्ट ऐंग्लिया, दुर्गम वारविकशायर जो कि आधा जंगलों से घिरा हुआ है, जंगली तथा दूरस्थ डेवन क्षेत्र और पूर्वी कार्नवाल का उससे भी अधिक पहाड़ी भाग अंग्रेज़ी प्रतिभा के केन्द्र रह चुके हैं।

इसलिए इस प्रकार के प्रमाण अपने समक्ष होते हुए हम उन पारस्परिक सम्बन्धों को सरसरी तौर से अग्राह्य नहीं मान सकते जो फ्रान्स के इन अनेक मानचित्रों में मिलते है। हो सकता है कि वे सब के सब वैसे न हों जैसे कि दिखलाई पड़ते हैं तथा गहन अध्ययन के बाद उनकी व्याख्या में अनेक परिवर्तन करने की आवश्यकता पड़ सकती है, फिर भी शारीरिक समानताओं से यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त सामग्री रह जायगी कि वर्तमान समय तक विशिष्ट जातिगत समूह तथा जातिगत क्षेत्र विद्यमान हैं। साथ ही वे कम से कम आंशिक रूप से उन मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्तियों के लिए जिम्मेदार हो सकते हैं या उनका उनसे कोई न कोई सम्बन्ध हो सकता है, जिनका हम पर अपने आप यह प्रभाव पड़ता है कि न केवल जाति का स्थायित्व बना रहता है बल्कि, जैसा कि हमने पहले बतलाया है, इसका हमसे तथा जिस समाज में हम रहते हैं उससे काफ़ी महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध है।

इंग्लैण्ड में मनोवैज्ञानिक तथा जातिगत गुणों की समानता

यदि हम साथ में दिये हुए इंग्लैण्ड[१] तथा ब्रिटिश द्वीपपुंज के मानचित्रों को देखें तो हमें केवल यही ज्ञात न होगा कि वे प्रदेश जो केल्टिक नहीं हैं (अर्थात् सैक्सन, डेनिश तथा नार्वेजियन हैं) काले केशवाले प्रदेशों से पूर्णतया तो नहीं, जैसा कि स्वाभाविक है, पर बहुलांश में मिल जाते हैं। यह सादृश्य इस बात को स्थापित करने के लिए पर्याप्त है कि औद्योगिक क्रान्ति के उपरान्त भी जब कि बड़ी जन-संख्या एक स्थान से दूसरे स्थान में बस गयी, नार्डिकों तथा अल्पाइन मेडिटेरेनियनों और कुछ सीमा तक ऐटलाण्टिकों में भी प्राचीन जातीय सीमाएँ पूर्णतः नष्ट नहीं हुई तथा जन-संख्या के किसी भी प्रकार के अध्ययन में इस पर विचार करना आवश्यक है।

केवल इतना ही नहीं वरन् जो कुछ भी अभी फ्रान्स में मनोवैज्ञानिक परिस्थिति

१. रिपले से, पूर्व कथित, पृष्ठ ३१३, ३१८, ५२१, बेडो, टेलर, मारसेली द्वारा

के साथ इसका सम्बन्ध होने की संभावना के बारे में बतलाया गया है तथा जैसा कि सन् १८७२–१८७६ तक इंग्लैण्ड में आत्महत्याओं की अधिकता का मॉरसेली ने अपने आँकड़ों द्वारा पता लगाया है, इनको देखते हुए यह काफ़ी रोचक भी है। जैसा कि समझा जा सकता है, जीवन का सबसे अधिक बोझ उद्योगों तथा वाणिज्य के केन्द्रों में पड़ता है और इसी के आधार पर लन्दन में तथा उसके आस-पास, मिडलैंड में, यार्कशायर के वेस्ट राइडिग में तथा लंकाशायर में इसके सबसे अधिक तीव्र होने की अपेक्षा की जाती है जैसा कि हम देखते भी हैं।

इस पर भी इन क्षेत्रों को देखने के पश्चात् शान्त ससेक्स ऐसा क्षेत्र बचता है जो कि सूची में सबसे ऊपर है। एकान्त स्थित कम्बरलैण्ड, जिसकी सामाजिक तथा आर्थिक दशाएँ वेल्स की परिस्थितियों से अधिक भिन्न नहीं हैं—जैसे कृषि, भेड़ें चराना, कुछ खानों में काम करना—ठीक उसके पीछे आता है। ग्रामीण केण्ट तथा यार्कशायर का अनौद्योगिक ईस्ट राइडिंग, खेतिहर पूर्वी ऐंग्लिया तथा लिंकनशायर, इनके बाद आते हैं। इन सब में आत्महत्या की संख्या अधिक है। साथ ही ये सब गौरवर्ण तथा निःसन्देह इंग्लैण्ड के सबसे अधिक नार्डिक भाग हैं और यदि हम स्थानों के नामों का मानचित्र देखें तो विदित होगा कि जन-संख्या जर्मन उत्पत्ति के लोगों की है—ऐंग्लो सैक्सन, डेन्स तथा नार्समैन।

अल्पाइन-मेडिटेरेनियन तथा ऐटलाण्टिक जाति के काले केल्ट्स इस प्रवृत्ति से उतने ही मुक्त हैं जितने कि जर्मन उत्पत्तिवाले अंग्रेज़। यहाँ तक कि लन्दन के उत्तर का क्षेत्र, जहाँ के लोग पार्सन तथा अन्य जाति-वैज्ञानिकों द्वारा, बहुधा ऐंग्लो-सैक्सनों के पूर्व की उत्पत्ति के बतलाये जाते हैं तथा काले रंग के भी हैं, अधिक आत्महत्याओं की प्रवृत्ति से मुक्त हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रकार के सम्बन्ध केवल आकस्मिक[1] कहकर पूर्णतया गलत नहीं ठहराये जा सकते।

विभिन्न जातियों के अंश के अनुसार आँखों के रंग का अनुपात

हम लोग (अंग्रेज़ लोग) बेतहाशा रूप से मिश्रित नहीं हो चुके हैं, जैसा कि कुछ लोग समझते हैं। यह इस तथ्य से सिद्ध होता है कि यदि हम मुख्य जातीय गुणों को, जैसे आँखों तथा केशों का रंग, कद आदि को, देखें तो हम पायेंगे कि विभिन्न देशों तथा

१. हालाँ कि डब्लू० जेड० रिपले ने ऐसा कहा है।

प्रदेशों की जन-संख्या में इनका अनुपात, जैसा कि वहाँ के जातीय इतिहास तथा भूगोल से आशा करना चाहिए, वैसा ही है।

इस प्रकार साथ में दिये हुए चित्रों को[1] यदि हम देखें तो पता चलेगा कि स्वीडन वालों की आँखें, जिन्हें हम जानते हैं कि वे नार्डिक हैं तथा कुछ पूर्वी बाल्टिक भी हैं, मुख्य रूप से हलके रंग की हैं, जैसी कि हम आशा करते हैं। काली आँखें बहुत ही थोड़े लोगों की हैं।

यदि हम दक्षिण की ओर दक्षिण जर्मनी में जाते हैं, जहाँ अल्पाइन अंश अधिक बढ़ जाता है, तो जैसी कि हम आशा कर सकते हैं, हलके रंग की आँखें कम हो जाती हैं तथा काली आँखों की संख्या बढ़ती जाती है।

स्विटज़रलैण्ड में जो कि और भी अधिक अल्पाइन है, काली आँखों का अनुपात बहुत बढ़ जाता है।

जब कि हम मेडिटेरेनियन पर इटली में अथवा थोड़ी दूर रूमानिया तक पहुँच जाते हैं तो देखते हैं कि उन सभी देशों में जहाँ मेडिटेरेनियन जाति मुख्य है, कंजी-हलके रंग की आँखें बिलकुल समाप्त हो जाती हैं और केवल काली ही आँखें मिलती हैं।

जातीय गुणों की समानता

वितरण के इन मानचित्रों से प्रकट है कि न केवल इन पूर्णतया स्पष्ट प्रदेशों में ही जातीय गुण केन्द्रित हैं बल्कि समस्त नार्डिक विशेषताएँ, उदाहरणार्थ उत्तरी जर्मनी तथा पूर्वी इंगलैण्ड में, परस्पर सम्बन्धित होने का प्रयत्न करती हैं, जिससे पता चलता है कि ये जातीय वर्गों के स्थिरताप्राप्त बचे हुए लोग हैं जिनका अध्ययन हम (बड़े तथा छोटे प्रदेशों में) करते हैं।

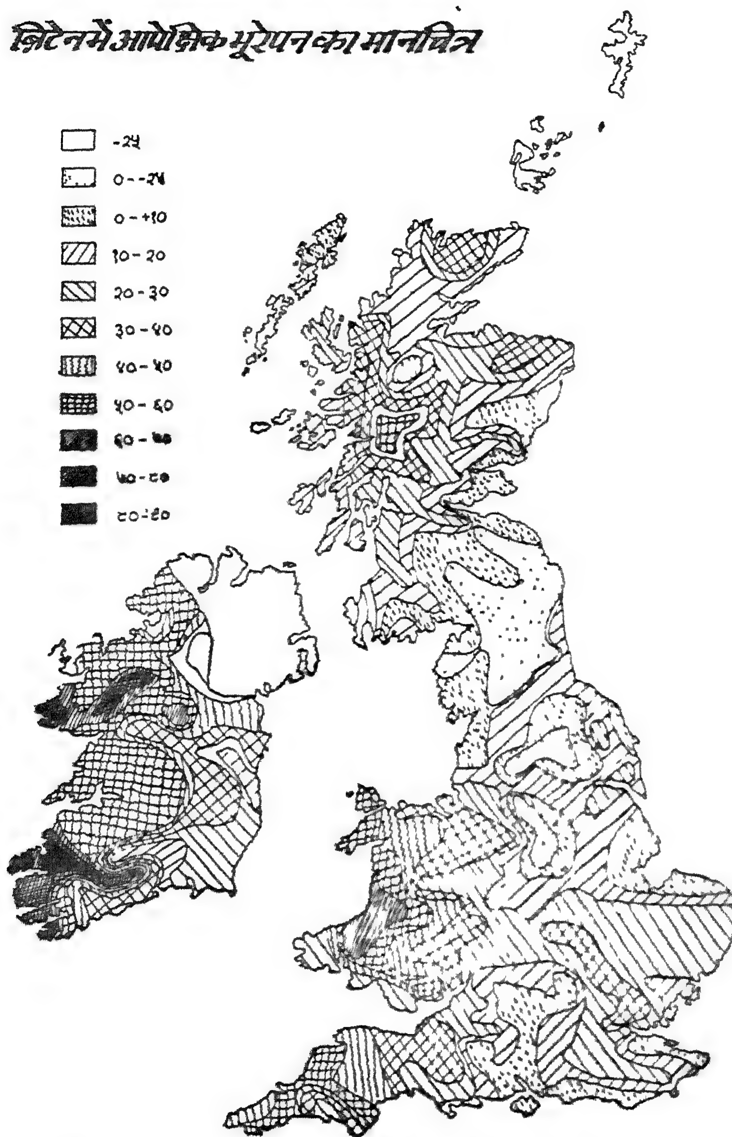
(पृष्ठ ९५ का शेषांश)

[**चित्र ७८, १३०८८ निरीक्षणों पर आधारित है, जैसा कि डा० बेडो के नीग्रसेन्स की देशना से अनुमानित किया गया है।**

ऐसा देखा जायगा कि (मिडलैण्ड के कुछ गहरे रंग के भाग को छोड़कर) पूर्वी ग्रेटब्रिटेन तथा मिडलैण्ड पश्चिम की अपेक्षा हलके रंग का है।

साधारणतया देश के पूर्व के आधे भाग के लोग अधिक नार्डिक हैं तथा पश्चिम में अटलान्टिकों व मेडिटेरेनियनों से तथा वेल्स में अल्पाइनों से विविध अंशों में मिश्रित लोग पाये जाते हैं।]

१. एफ़० के० गुन्थर द्वारा, 'दि रेशल एलीमेन्ट्स आफ़ यूरोपियन हिस्ट्री', मेथुवेन, लन्दन, १९२६



चित्र नं० ७८—ब्रिटेन में आपेक्षिक भूरेपन का मानचित्र (दे० पृ० ९४)

जर्मन विद्यार्थियों-सम्बन्धी अनुसन्धान

जाति के स्थायित्व के अन्य उदाहरण फ्रीबर्ग विश्वविद्यालय में गुणों के पारस्परिक सम्बन्ध के अनुसन्धान में मिलते हैं। विद्यार्थियों के दो समूहों की परीक्षा की गयी थी। पहले में ५७८ विद्यार्थी थे जिनकी आँखें नीली तथा बाल स्वर्णिम थे और दूसरे में २६३ जिनकी आँखें तथा केश काले रंग के थे। प्रथम समूहवाले दूसरे की तुलना में अधिक ऊँचे कद के तथा लम्बे कपालवाले थे। इस प्रकार यहाँ एक ओर तो प्रथम समूह में समस्त नार्डिक गुण तथा दूसरी ओर दूसरे समूह में समस्त अल्पाइन गुणों का सम्बन्ध मिलता था।

पार्थक्य बना रहता है

इसलिए हमारे पास ऐसे केवल दो ही नहीं वरन् अनेकों दृष्टान्त हैं जिनका खण्डन नहीं किया जा सकता। इनके अतिरिक्त और भी अधिक उदाहरण दिये जा सकते हैं। इससे स्पष्ट है कि चाहे जितना भी संकरण हुआ हो, उक्त दृष्टान्तों में एक भी मिश्रित अथवा प्रसंकर वंशसमूह नहीं बना है। काफी अधिक मात्रा में विशिष्ट प्रकार पृथक् रह गये हैं तथा व्यक्तियों में भी जातियों के गुण काफ़ी हद तक पृथक् पृथक् पाये जाते हैं।

यह अवश्य सत्य है कि पुनः सम्मिश्रण से अनेक नये प्रकारों के बनने की बात सोची जा सकती है, जैसे कि देखने में काफी हद तक नार्डिक प्रतीत होनेवाला मनुष्य, अल्पाइन अथवा मेडिटेरेनियन युवक की तरह काले बालोंवाला हो सकता है, परन्तु वस्तुस्थिति यह है कि वे समस्त गुण जो कि जाति-विशेष में मिलते हैं, प्रायः साथ ही बने रहने की प्रवृत्ति दिखलाते हैं। इसका आंशिक कारण यह है कि विविध स्थानों में बसी हुई जातियों की आपेक्षिक शुद्धता अब भी बनी हुई है (हालाँ कि सैकड़ों, हज़ारों नहीं लाखों वर्षों से इस प्रकार का मिश्रण होता आया है)। वास्तव में नार्डिक प्रदेशों के लिए, जिनका वर्णन अभी किया गया है, केवल यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है। कारण यह है कि संकर में अधिकांश नार्डिक अपसारी गुण होते हैं। इसलिए जब किसी

(पृष्ठ ९७ का शेषांश)

[यह डा० आइज़ेक टेलर के कार्य पर आधारित है। यह देखा जायगा कि ब्रिटेन में स्वर्ण केशोंवाले क्षेत्र मुख्य रूप से वही हैं जो नार्स, ऐंग्लो सैक्सन तथा डेनिश आबादी के हैं। इससे स्पष्ट है कि ब्रिटिश लोग अधिकांशतः जर्मन नार्डिक पूर्वजों के वंशज हैं। स्काटलैण्ड के पूर्वी-उत्तरी भाग में केल्टिक स्थानों के नाम खुले रंग के प्रदेशों से मेल खाते हैं जो फिर इस बात को सिद्ध करता है कि अधिकतर केल्ट्स लोगों में भी नार्डिक जाति का रक्त मिश्रित है।]



चित्र नं० ७९–ब्रिटिश द्वीपपुंज में स्थान-नामों का वितरण
(आई० टेलर द्वारा, १८९३, डब्लू० जेड० रिपले से)—(देखो पृष्ठ ९६)

अन्य जाति से उनका सम्मिश्रण होता है तो शीघ्र ही उनकी विशेषताएँ उक्त जाति के प्रभावी गुणों[1] के सामने दब जाती हैं।

जोड़े के चुनाव का प्रभाव

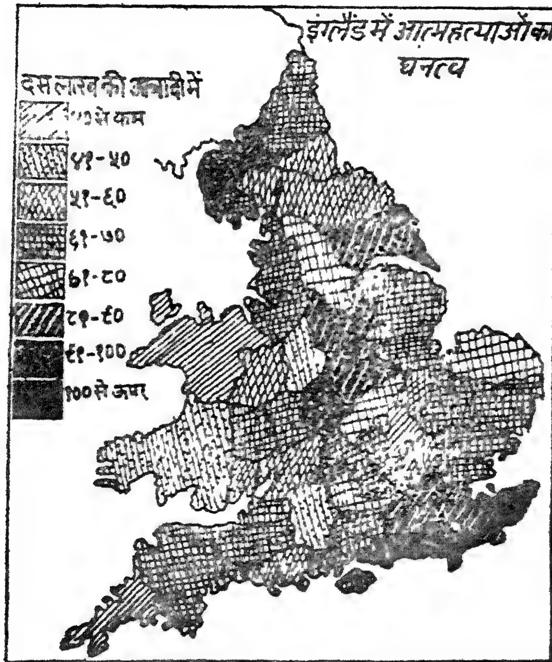
प्रत्येक जातीय समूह के गुणों के सम्बन्ध (जैसे कि नार्डिक में लम्बा कपाल, स्वर्णकेश, हलके रंग की आँखें तथा लम्बा कद अथवा मेडिटेरेनियन में लम्बा कपाल, काले केश तथा आँखें और छोटा कद) प्रायः उस समय टूट जाते हैं जब वैवाहिक सम्बन्ध मनमाने ढंग से होता है। जोड़े का चुनाव ठीक से होने पर ऐसा नहीं होने पाता किन्तु जाति-विज्ञान के ज्ञाता प्रायः इसकी उपेक्षा कर देते हैं।

आँकड़ों से पता चलता है कि विवाह-सम्बन्ध मनमाने तौर से बहुत कम ही होता है। कुछ गुणों के लिए जान में अथवा अनजान में चुनाव सदैव होता है। "वास्तविक माप से पता चलता है कि यदि एक मनुष्य औसत ऊँचाई से एक सीमा तक अधिक ऊँचा होता है, तो वह प्रायः ऐसी स्त्री से विवाह करता देखा गया है जिसकी ऊँचाई उसकी खुद की बढ़ी हुई ऊँचाई की तुलना में एक चौथाई से कुछ ही अधिक होती है। कार्ल पियर्सन ने वास्तविक गुणक ·२८ बतलाया है। 'असमान व्यक्तियों में आकर्षण' होता है, यह विचार इस दृष्टान्त में सत्य के विपरीत जान पड़ता है। यदि अन्य गुणों का मापन किया जाय, तब भी यही यथा-क्रमिक मिलन की प्रवृत्ति देख पड़ेगी। चाहे आँखों का रंग हो, केशों का रंग हो, स्वास्थ्य, बुद्धि, दीर्घायु, पागलपन अथवा बहरापन हो, ठीक माप लेने से पता चलता है कि पुरुष तथा उसकी स्त्री, भले ही वे रक्त से सम्बन्धित ज्ञात न हों, वास्तव में एक दूसरे से उतना ही मिलते-जुलते हैं जितना कि चाचा, भतीजी अथवा प्रथम चचेरे भाई बहन[2]।" यह यथा-क्रमिक मिलन एक ही जाति के भीतर अभिजनन करने की जातिगत मनोवृत्ति का सूचक है।

१. मोर के अल्पाइन क्षेत्र में तथा वेल्स के मेडिटेरेनियन-अल्पाइन-अटलान्टिक प्रदेश में केशों के साफ़ रंग की अपेक्षा गहरे रंग की प्रधान प्रवृत्ति मिलती है जो कि उन प्रदेशों में किसी भी नार्डिक गौर वर्ण पर आवरण का काम करती है। परिणाम यह होता है कि नार्डिक विशिष्टता दब जाती है और ग़ैर-नार्डिक समजातता वास्तव में जितनी है उससे अधिक दिखाई देने लगती है।

२. पोपनो (Popenoe) तथा जानसन (Johnson), पूर्वलिखित, पृष्ठ २१२

उन लोगों के विषय में जिनमें किसी दिये हुए क्षेत्र, समाज अथवा वर्ग के अन्दर बारवार परस्पर सम्बन्ध होता पाया जाता है, ऊपर जो कुछ कहा जा चुका है उससे



चित्र नं० ८०

(मॉरसेली द्वारा, १८८२, डब्लू० जेड० रिपले से)

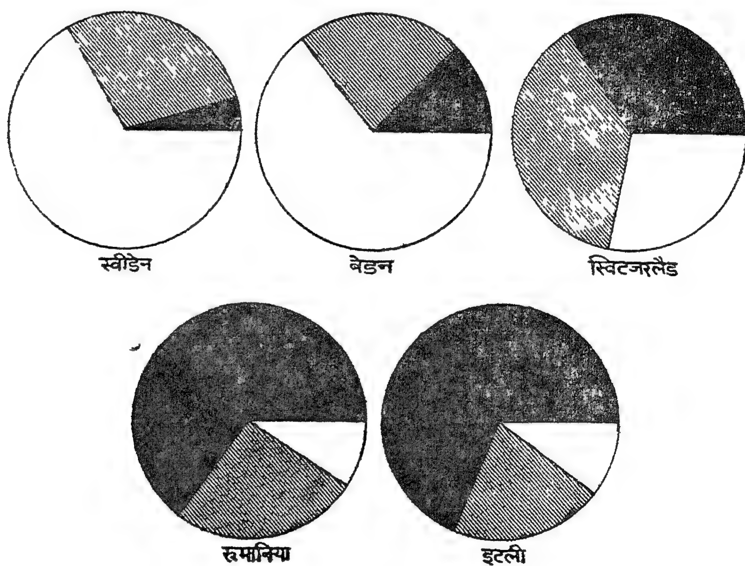
इंग्लैण्ड तथा वेल्स में प्रति १० लाख जनसंख्या में आत्महत्या के घनत्व का वितरण

[इस मानचित्र का फ्रान्स के इसी प्रकार के मानचित्र के साथ अध्ययन करना चाहिए।

अधिक परिश्रम के प्रदेशों, जैसे औद्योगिक क्षेत्रों तथा लन्दन को ध्यान में रखते हुए अधिक नार्डिक तथा ट्युटानिक क्षेत्रों के साथ वेल्स और कार्नवाल के केल्टिक तथा कम नार्डिक क्षेत्रों की अपेक्षा, आत्महत्याओं के ऊँचे औसत का निकट सम्बन्ध है।]

स्पष्ट है कि यह अनजाना चुनाव उस प्रकार के मनुष्यों की तरफ ले जाता है जिनमें कि चचेरे भाइयों की सी समानता पायी जाती है। वास्तव में यही प्रवृत्ति उन व्यक्तियों के चुनाव के मूल में होती है जो एक ही जाति या मुख्य समूह में उत्पन्न हुए हों तथा जिनकी जननिक बनावट चचेरे भाइयों के समान मिलती-जुलती हो। तात्पर्य यह है कि उनमें परस्पर का रक्त-सम्बन्ध दूर दूर के सम्बन्धों द्वारा पुनः सम्मिश्रित होता रहता है, इसलिए अंतः-प्रसवन, जैसा कि बहुत से यूरोप-निवासी समझते हैं, कोई अप्राकृतिक वस्तु नहीं है। वे लोग स्वयं भी, कदाचित् अज्ञान से, काफ़ी बड़ी संख्या में अपना विवाह-सम्बन्ध निश्चित करते समय ऐसा ही करते हैं। इसके साथ ही वन्य जातियों की भी स्वाभाविक प्रवृत्ति देखनी चाहिए जिसमें मनुष्य न केवल आपस में साथी ढूँढ़ते हैं बल्कि जब वे अन्य जातियों के लोगों से मिलते हैं तो उन्हें नष्ट कर देना चाहते हैं।

युद्ध एक प्रारम्भिक प्रवृत्ति है जिसकी उत्पत्ति अपने समूह (आरम्भ में परिवार



चित्र नं० ८१–८५—यूरोप के विभिन्न देशों में आँखों के रंग का वितरण

[चित्र से स्पष्ट है कि जैसे जैसे हम उत्तर (स्वीडेन) से मध्य यूरोपीय देशों; बेडन, जर्मनी तथा शाफ़ेसन कैन्टन, स्विटज़रलैण्ड से होकर दक्षिण यूरोप (रूमानिया तथा इटली) की ओर जाते हैं, वैसे वैसे कंजी आँखें कम होती जातीं तथा काली आँखों की संख्या बढ़ती जाती है।]

तथा जाति लेकिन अब बहुधा राष्ट्रीयता या राजनीतिक समूह) को बनाये रखने की इच्छा से हुई है। सर आर्थर कीथ[1] आस्ट्रेलिया के आदिवासियों की चर्चा करते हुए कहते हैं (J. R. A. I. Vol. XLVI, पृ० २३)—

"दो या अधिक वन-जातियों के मिश्रण का मुझे एक भी उदाहरण नहीं मिलता। प्रत्येक वन-जाति परस्पर मिश्रण को रोकने की भरसक चेष्टा करती है। यदि काले लोग कभी किसी अपरिचित से मिलते तो उसे अवश्य मार डालते थे। (अन्य जातियों के) अनोखे दीख पड़नेवाले बच्चों की भी इसी प्रकार हत्या कर डालते थे ('Curr')।"

जातीय गुण नये देशों में भी नहीं मिटते

जाति के स्थायित्व की उपेक्षा नये देशों में भी नहीं की जा सकती, जैसे कि अमेरिका महाद्वीप के देशों में जहाँ उपनिवेशों की स्थापना से नये लोग बस गये, जिनमें प्रत्येक यूरोपीय देश से धनी वर्गों के तथा किसान वर्गों के लोग भी आये और मिल जुलकर उन्होंने नये राष्ट्रों का निर्माण किया।

यद्यपि बहुत से उदाहरणों में किसी विशिष्ट अथवा महत्त्वपूर्ण जातीय प्रादेशिकता का अभाव होने से उन्हें प्रसंकरण के लिए सर्वोत्तम सुविधा प्राप्त थी, फिर भी हम अमेरिका-निवासियों को अपने माता-पिता की ही जाति की नस्लों को उत्पन्न करते पाते हैं। वे ऊँचे कद, गौर वर्ण, हलकी आँखों, लम्बे कपाल तथा लम्बे चेहरेवाले नार्डिकों से लेकर छोटे गठे हुए शरीर, गहरे रंग के केशों तथा आँखों, चौड़े तथा ऊँचे कपाल और लम्बी नाकवाले आर्मीनायड्स तक पाये जाते हैं। यह सत्य है कि अधिकांश भागों में चौड़े कपालवाले, सँकरे कपालवालों की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली हैं तथा, जैसा कि आगे बतलाया जायगा, लम्बे कपालवाले जातीय प्रकार का दूसरे लम्बे कपालवाले से संकरण होने पर भी सम्भवतः लम्बे कपालयुक्त व्यक्ति की ही उत्पत्ति होगी। परिणामतः अमेरिका-निवासियों में ज्यों-ज्यों अंतः-प्रसवन चलेगा वे लघु-कपाल की अपेक्षा दीर्घ-कपाल होते जायँगे। जाति का प्रभाव नष्ट हो जाने से ऐसा नहीं होता बल्कि उसके प्रभाव के कारण ही होता है। इसलिए मिश्रण कितना ही पूर्ण क्यों न हो, जाति नष्ट नहीं होती। केवल जाति-विज्ञान तथा वंशानुगति की समस्या अधिक जटिल होती जाती है।

अमेरिका का नये प्रकार का नव-उपार्जित गुणवाद (नीयोलामार्किज्म)

फ्रैन्स बोआस[1] तथा अन्य लोगों ने इसके विपरीत सिद्ध करने का प्रयत्न किया है

१. चेन्जेज इन दि बॉडिली फार्म ऑफ़ दि डिसेन्डेण्ट्स ऑफ़ इम्मीग्रान्ट्स, इम्मीग्रान्ट कमीशन, सेनेट डाकूमेन्ट (यू. एस. ए.) नं० २०८, १९११

तथा एक ऐसे सिद्धान्त का निर्माण किया है जिसका तर्कगत निष्कर्ष यही निकल सकता है कि अमेरिका-निवासियों की उत्पत्ति भले ही विभिन्न जातियों से हुई हो, अन्ततोगत्वा उनका यूरोप से कोई भी विशिष्ट सम्बन्ध नहीं रह जाता क्योंकि व्यापक प्रभाववाली अमेरिका की परिस्थितियाँ एक नये अमेरिकन प्रकार का निर्माण कर रही हैं।[१]

परिस्थितिवाद के प्रभाव को माननेवालों में प्रमुख फ्रांस बोआस ने यह दिखाने की चेष्टा की है कि अमेरिका के आप्रवासी यहूदियों के वंशजों के सिर प्रारम्भ के आप्रवासियों की अपेक्षा अधिक लम्बे होते हैं, जब कि सिसली-निवासियों में सत्य इसके विपरीत है। पर उसने इन दोनों को जातियाँ मानकर बड़ी गलती की है। परिणामतः मिश्रित लोगों की भाँति प्रत्येक पीढ़ी में अपने पूर्वजों की अपेक्षा कुछ विभिन्नता होगी, जैसा कि बोआस ने हिसाब लगाया है। इसके आगे भी उसने कहा है[२] कि यदि इन लोगों को फिर उनकी प्रारम्भिक परिस्थितियों में रख दिया जाय तो उनके कपाल के आकार भी अपने पुराने आकार में परिणत हो जायँगे ।

डेनीकर[३] तथा जाति-विज्ञान के अन्य लेखकों ने बोआस के मत को पूर्ण रूप से ठुकरा दिया है। इसमें सन्देह नहीं कि यदि उतने परिवर्तन हुए भी जितने कि बोआस ने माने हैं, तो भी इससे जातीय प्रकार में परिवर्तन हो जाने का परिस्थितिवादियों का दावा सिद्ध नहीं होता। परिस्थिति केवल यही कर सकती है कि उन सभी तत्त्वों को समाप्त कर दे जो नये स्थान के लिए कम उपयुक्त हों। इसलिए ऐसा हो सकता है कि चौड़े कापालिक प्रकार अथवा कपाल के उसी आकार से सम्बन्धित अन्य गुण, परिस्थितिविशेष में अधिक उपयुक्त होने के कारण बचे रह गये हैं। अथवा दूसरे उदाहरणों में माना जा सकता है कि परिस्थितीय दशाएँ व्यक्तियों के विशिष्ट समरूप

१. यह मत जो पूर्णतया उपार्जित गुणवाद (pure Lamarkism) है नात्सी तथा जर्मन जातित्ववाद (racialism) के कुछ मतों के काफ़ी निकट आ जाता है जो कि जर्मनी की पवित्र मिट्टी को इस प्रकार देखते थे कि वह, चाहे जितनी जातीय विभिन्नता वहाँ के लोगों में हो, उन्हें एक जाति (रेस) में परिवर्तित कर देती तथा वहाँ एक ही जाति उत्पन्न करती। यही कारण है कि युद्ध के पूर्व जर्मनी के अनेक लम्बे लम्बे भाषणों में बोदेन (Boden) तथा लैण्ड (Land) अक्सर सुनाई पड़ता था।

२. 'न्यु एवीडेन्स इन रिगार्ड टु दि इन्सटेबिलिटी आफ़ ह्यूमेन टाइप्स, प्रोसीडिंग्स आफ़ दि नेशनल एकेडिमी आफ़ साइन्स, II, १९१६।

३. Les races et les peoples de la terre, 1926, p. 138

को प्रभावित कर सकती है, जैसे कि रहने की बुरी दशाओं से कद की बाढ़ रुक जाती है, जहाँ कि विशेष गुण एक हों, जैसे ऊँचाई अथवा वज़न जिस पर कि आस-पास के रहने की दशाओं का प्रभाव सरलता से पड़ता हो। परन्तु एक बार भी सम परिस्थितियों के स्थापित हो जाने से जाति तुरन्त ही प्रभावित होगी तथा उसका नियमित विकास फिर आरम्भ हो जायगा। अतः जिन परिस्थितियों से वे आये थे उनमें फिर से पहुँच जाने से प्रारम्भिक प्रकार वे फिर ग्रहण कर लेंगे परन्तु यह जाति के मूल रूप में परिवर्तन का कोई प्रमाण नहीं है।

अब हम प्रथम दृष्टि पर आधारित ऐसे तर्कों को छोड़कर जिनसे ऐसे दावों की असमर्थनीयता प्रकट होती है, मोरेण्ट, सैम्प्सन,[1] आर० ए० फिशर तथा एच० ग्रे[2] द्वारा बोआस के निष्कर्षों पर की गयी आलोचनाओं का विचार करेंगे जिन्होंने पूर्ण रूप से उन्हें अविश्वसनीय ठहरा दिया है तथा कहे गये अनेक तथ्यों के सम्बन्ध में भी शंका उत्पन्न कर दी है।

पियर्सन[3] (Pearson) तथा अन्य लोगों की रचनाओं से पता चलता है कि यहूदी आप्रवासी पूर्व काल में जिन लोगों के पड़ोस में रहने के लिए गये, उनके साथ शीघ्र ही मिल-जुल गये। अमेरिका में यहूदियों के कपाल के आकार में परिवर्तन होने के कई अन्य कारणों के अतिरिक्त यह भी एक कारण, बोआस के अविश्वसनीय उपार्जितवाद (लैमार्कियन मत) के प्रयोग बिना ही, दिया जा सकता है।

पिटकायर्न द्वीप-निवासियों में मूल जाति के गुणों का बना रहना

पिटकायर्न द्वीप-निवासियों[4] से यह पता चलता है कि मिश्रित समुदायों में भी

१. न्यूयार्क के यहूदियों के माप के विषय में डा० मारिस फ़िशबर्ग तथा फ्रैन्ज़ बोआस द्वारा किये गये अनुसन्धान का अध्ययन बायोमेट्रीशिया (Biometritia) १९३६, भाग (Vol.) २८, पृष्ठ १

२. इनहेरिटेन्स इन मैन, बोआस के आकड़ों का विभिन्नता के विश्लेषण की रीति द्वारा किया गया अध्ययन—एनल्स आफ़ युजेनिक्स १९३७, भाग ८, पृष्ठ ७४

३. के० पियर्सन तथा एच० मोल द्वारा लिखित 'दि प्रोब्लम्स औफ़ एलियन इमीग्रेशन इन टुग्रेट ब्रिटेन' (रूस तथा पोलैण्ड के यहूदी बच्चों संबंधी अध्ययन से युक्त)। 'एनल्स आफ़ युजेनिक्स' १९२५, भाग १, पृष्ठ ५ तथा 'जीविश जेन्टाइल रिलेशनशिप्स' पर के० पियर्सन का लेख, बायोमेट्रिका, १९३६, भाग २८, पृष्ठ ३२

४. हक्सले तथा हेडन, पूर्वकथित, पृष्ठ १०२

मूल जाति के गुण कैसे बने रहते हैं। ये द्वीप-निवासी टहीटी की स्त्री तथा बाउन्टी म्युटेनियर्स १७८८ के वंशज हैं जिनमें शुद्ध यूरोप-निवासी से लेकर देशजों तक के सभी प्रकार के संयुक्त गुण मिलते हैं।

जातियों के गुण तथा परिस्थितियों से सामञ्जस्य

एक दूसरे प्रकार से भी प्रकृति सहायता करती है जिससे अन्तर्मिश्रण के कारण जाति के विशिष्ट गुण नष्ट न होने पायें। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जातीय मुख्य गुण सहस्रों वर्ष तक परिस्थिति के साथ सन्तुलन बनाये रखने का एक उपयोगी कार्य करते है। परिस्थिति, प्राकृतिक चुनाव द्वारा प्राचीन वर्गो से, उन प्रदेशों में जिनमें कि उनकी उत्पत्ति हुई है, जीवन के अनुपयुक्त प्रकारों को समाप्त कर देती है।

यही वजह है कि नार्डिक खुलते रंग का होता है जो कि ठंडे जलवायु के उपयुक्त है तथा सूर्य की किरणों को सरलता से ग्रहण कर लेता है जिसके फलस्वरूप लाभदायक विटामिन डी की उत्पत्ति होती है। इसी तरह नीग्रो (हब्शी) के नथुने चौड़े होते है जिससे वह वायु को बिना अधिक गर्म हुए ही अन्दर ले सके, जब कि यूरोप-निवासियों के सँकरे तथा एस्कीमोज के और भी अधिक सँकरे नथुने बिलकुल उलटा किन्तु उनके लिए पूर्ण रूप से लाभदायक कार्य करते हैं।

इसलिए परिणाम यह निकलता है कि यदि कोई संकरज किसी उग्र परिस्थिति में रहता है तो उसमें कुछ गुण ऐसे होते हैं जो उतने पूर्ण रूप से कार्य नहीं करते जितने से कि उसके किसी पैत्रिक पूर्वज के उस परिस्थिति में करते रहते थे। उदाहरणार्थ यदि एक मुलैटो, जिसके केश काले हैं तथा नथुने चौड़े है, नार्वे में रहता है तो उसे अवश्य ही प्राकृतिक असुविधा है तथा उसे शीघ्र ही परिस्थितियों के बुरे प्रभाव से पराजित होना पड़ता है। इसी प्रकार भारत के तथा दक्षिण इटली तक के नार्डिक विजेताओं में भी समाप्त हो जाने की प्रवृत्ति देखी जा चुकी है। यों प्रकृति ऐसा हथियार अपने हाथ में रखती है जिससे वह उन मिश्रित प्रकारों को, जिन्हें मनुष्य ने उस पर लाद रखा है तथा जो उन प्रदेशों के जीवन की दशाओं की दृष्टि से बाहरी या अन्य स्थानीय हैं, समाप्त कर देती है।

अनुपयुक्त जातीय नस्लों की परिस्थितियों द्वारा समाप्ति

परिस्थिति के विषय में ऐसे विचार के पश्चात् तथा मिश्रण से जो अन्य-स्थानीय प्रकार बनते हैं उन पर उनका प्रभाव देखकर यह भी स्मरण रखना चाहिए कि अमिश्रित वंश-सन्तति पर भी परिस्थिति का प्रभाव पड़ता है जब वह अपने को उस परिस्थिति से बिलकुल भिन्न पाती हैं। हम देख चुके है कि जब दो वंश-सन्ततियों का

संयोग होता है तो न केवल ऐसी जन-संख्या मिलती है जिसमें कुछ अस्थायी तत्त्व रहते हैं जो कि अन्यस्थानीय प्रकार-से प्रतीत होते हैं बल्कि उनसे समय-समय पर, जब वे अन्तर्विवाह करते हैं, कुछ बिलकुल समजात मनुष्य उत्पन्न होते हैं, जो अपने प्रारम्भिक वंश-समूह से मिलते-जुलते रहते हैं।

अब हम एक ऐसे आक्रमण का उदाहरण लेंगे जैसा कि आर्य लोगों का भारत में या वेन्डल्स (Vendels) का अफ्रीका में अथवा नार्मन्स का सिसली में हुआ था। व्यावहारिक दृष्टि से हम इन आक्रमणकारियों की गणना उन लोगो में कर सकते हैं जो मुख्यतः नार्डिक थे और ऐसी परिस्थितियों में गये जो नार्डिक लोगों के स्थायी निवास के लिए अनुपयुक्त थीं, अन्त में जिन प्रदेशों में बस गये वहीं के देशजों से उन्होंने अन्तर्विवाह किया। कुछ समय पश्चात् ये संतानें मुख्यतः तीन समूहों की हो गयी होंगी; वे जो कि नार्डिक सन्तति से मिलती-जुलती थी, वे जो कि बाहरी या अजीब सी देख पड़ती थीं तथा अन्त में वे जो शुद्ध देशज थी। संभवतः इन पिछले लोगो की संख्या सबसे अधिक रही होगी।

इस प्रकार के दृष्टान्त में जब कि प्रकृति उन अन्यस्थानीय मिश्रणो के प्रतिकूल है, जिनके धर्म-कर्म आसपास की परिस्थिति से मेल नही खाते, तो वह समजात नार्डिको के लिए और भी अधिक प्रतिकूल है क्योकि उनका भी अपनी परिस्थिति के साथ कोई सामंजस्य नही होता। परिणामतः दोनों ही सन्ततियाँ, बाहर से लादी गयी सी प्रतीत होनेवाली शुद्ध वंश की और वे प्रसकर सन्ततियाँ भी जिनमें बाहरी जाति की कुछ विशेषताएँ कायम रहती है, अन्त में देशज सन्तति को सर्वप्रधान स्थिति में छोड़कर समाप्त हो जाती हैं। दूसरे शब्दों में जब हम जातीय अन्तर्मिश्रण की उत्पत्ति करते है तब अक्सर प्रकृति उसमें हस्तक्षेप करती है और धीरे-धीरे न केवल अन्यस्थानीय तत्त्वों को ही जो उसके विचार से परिस्थिति के प्रतिकूल पडते हैं, नष्ट करती है बल्कि भली भाँति उत्पन्न उन प्रकारो को भी, जो कि किसी परिस्थिति-विशेष के लिए पूर्णतया अनुपयुक्त हैं, समाप्त कर देती है।

जाति बनी रहती है

अब तक हमने जिन प्रमाणों की समीक्षा की है, उनसे देखा है कि (१) वंशज के पित्रागति नियमों (Mendaliar Law) के कारण (जिसका आगे वर्णन किया जायगा), (२) कुछ उदाहरणों में पृथक् करने की कुछ भौगोलिक स्थितियों के प्रभाव के कारण, (३) वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने के पूर्व उचित चुनाव के सिलसिले मे उपलब्ध स्पष्ट साक्ष्य के कारण, तथा (४) बाहरी-से प्रतीत होनेवाले

प्रकारों और स्थिति-विशेष के प्रतिकूल पड़नेवाली संकर सन्ततियों को प्राय: नष्ट कर डालने की परिस्थितियों के प्रभाव के कारण यह स्वीकार करना पड़ता है कि जाति बराबर बनी रहती है। कभी कभी तो समुदायों या समाजों को देखने से ही उनकी जाति का बना रहना स्पष्ट हो जाता है, कभी क्षेत्र-विशेष को देखकर मानना पड़ता है कि वहाँ एक ही जाति के विशिष्ट गुणों का प्राधान्य है और कभी कभी बिलकुल विजातीय जन-संख्या के बीच में भी मूलजाति के गुणों की परम्परा जारी रखनेवाले बहुत से व्यक्ति फैले रहते हैं।

देशान्तरगमन तथा भ्रमण से जाति-विज्ञान का महत्त्व कम नहीं होता

परिणामत: यह कहना असत्य है तथा सब तथ्यों के विपरीत है कि चूँकि पिछले सौ वर्षों में मनुष्यों ने भारी संख्या में देशान्तर गमन किया है, जिससे समस्त जातियाँ पूर्ण रूप से मिश्रित हो चुकी हैं इसलिए जाति-विज्ञान के अध्ययन का अधिक महत्त्व नहीं रह गया है। वास्तव में ऐसा नहीं है परन्तु यदि ऐसा हो तो भी जातीय वंश-समूह अब भी पाये जाते हैं तथा जातियों का मिश्रण, जैसा कि हमने इस पुस्तक में कई बार बतलाया है, जाति को नष्ट नहीं करता पर उसकी समस्या को कुछ जटिल अवश्य बना देता है।

सन्तुलित जातीय समूह; यूनीजेन्स

हमें स्मरण रखना चाहिए कि यदि एक ही क्षेत्र या निश्चित जन-समूह के बीच होनेवाले विवाह-सम्बन्धों को काफ़ी अधिक समय दिया जाय जिसमें कि बाहरी लोगों का प्रवेश प्राय: न होने पाये[1], तो पित्रागति नियम, चुनाव तथा पति या पत्नी का यथाक्रमिक वरण ये तीनों चीज़ें मिलकर अपेक्षाकृत सन्तुलित जाति-समूहों के निर्माण में सहायक होंगी, जिनके यूरोप तथा अन्य क्षेत्रों के पुराने और स्थिरताप्राप्त राष्ट्र

१. यह स्मरण रखना चाहिए कि किसी देश में अवसर मिलने पर प्रारम्भ में बिना रोक के, जैसे कि संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में, प्रवासी लोग जाने पाते हैं किन्तु बाद में आवासियों के आगमन का नियंत्रण किया जाने लगता है और यह नियंत्रण प्राय: प्रतिषेध की सीमा तक पहुँच जाता है, जैसा कि अमेरिका में हुआ। एक बार ऐसा हो जाने पर पृथक्करण की स्थिति पहुँच जाती है। उस समय प्राकृतिक चुनाव (natural selection) **अपना कार्य प्रारम्भ करता है, जिससे कि एक समय में, शायद काफी लम्बे समय में, एक सन्तुलित जातीय प्रकार का निर्माण होने लगता है।**

तथा यहूदी अच्छे उदाहरण हैं[1]। ऐसे सब समूहों की मिश्रित पूर्वज परम्परा का प्रमाण उनमें इतनी अधिक विभिन्नता का पाया जाना है। किन्तु ये सब जातियाँ बन रही हैं ऐसा न समझना चाहिए, जैसा कि सर आर्थर कीथ का विश्वास है, परन्तु अवश्य ही वे ऐसे वंश-समूह अथवा प्रकार हैं जिनका कुछ जातिगत महत्त्व है[2]।

फिर भी सन्तुलित जातीय प्रकार के निर्माण के लिए जिसमें प्राचीन राष्ट्रीय समूहों से लेकर वे समूह तक शामिल हैं जिन्हें हम जाति की नस्ल या सन्तति कहते हैं तथा जिन्हें हम जाति के करीब करीब समकक्ष ही मानते हैं, अन्य बातों के अतिरिक्त एक लम्बे पृथक् वास की आवश्यकता पड़ती है और यह सन्देहास्पद है कि वे दशाएँ जो कि पूर्व काल में उपस्थित थीं भविष्य में कभी भी फिर से मिल सकती हैं।[3]

जाति-विज्ञान उपयोगी तथा साथ साथ शैक्षणिक भी

यह बात सिद्ध करने के लिए काफी कहा जा चुका है कि जाति (रेस) एक स्थायी तथा बनी रहनेवाली वस्तु है, चाहे हम बचे हुए समूहों के जातीय गुणों पर विचार करें

१. हक्सले तथा हेडन (Huxley and Haddon), पूर्वकथित, पृष्ठ १३७ ने अण्डमन-निवासी (Andamanese), शुद्ध पपुआ-निवासी तथा शायद आस्ट्रेलिया के देशजों की ओर संकेत करते हुए उन्हें ऐसे स्थिरीभूत सन्तुलित मिश्रित समाज का उदाहरण बतलाया है। परन्तु अन्तिम के विषय में हमें शंका होती है जब तक कि वे किसी ऐसे मिश्रित समुदायों के लिए नहीं कहे गये जो कि विभिन्न आस्ट्रलायड जातियों से बने हैं, जैसे कि कार्पेन्टारियन तथा मरे डार्लिंग के संकरण से बनी जातियाँ।

२. हालाँ कि हमारा ऐसा विश्वास है कि जातीय मिश्रण के कारण कोई "नयी" जाति, जैसा कि वास्तव में कहना चाहिए नहीं बनायी जा सकती तथा ऐसे मिश्रण से जिन प्रसंकरों का निर्माण होता है वे काफ़ी समय तक अस्थिर रहते हैं। फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि लम्बे पृथक्वास में कठिन प्राकृतिक चुनाव के कारण कुछ तत्त्व समूल नष्ट हो जाते हैं तथा नये प्रकारों का निर्माण होता है जिनका वंश शुद्ध तथा स्थायी होता है। इनको हम वास्तव में शुद्ध जातीय सन्तति, पशुओं की नस्लों की तरह मानते हैं तथा इस श्रेणी में हम अल्पाइन्स (Alpines), पूर्वी बाल्टिक, डाइनारिक (Dinaric) तथा अर्मीनायड को काकोसायड के उदाहरणस्वरूप रखते हैं।

३. जो कुछ आगे कहा जायगा उसको ध्यान में रखते हुए—हम 'जाति' शब्द का प्रयोग इनके लिए करते हैं—कुलागत समूह, जो कि छोटी जातियों के वंशों से बने हुए

जैसा कि हमने विभिन्न मानचित्रों में अध्ययन किया है अथवा हम उन गुणों को मिश्रित जनसंख्या में देखें। परिणामतः जाति-विज्ञान केवल पूर्वकालीन दशाओं का शैक्षणिक अध्ययन नहीं है परन्तु उपयोगिता की दृष्टि से भी उसका एक मूल्य है क्योंकि इसमें जीवित मनुष्यों के समजातीय तथा विजातीय समूहों की वंशानुगति के महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों का अध्ययन भी शामिल है।

उप-विभाग हैं, जाति से उत्पन्न वंश या प्रसंकर वंश, तथा प्राचीन और अपेक्षाकृत सरलता से पहचाने जानेवाले जातीय प्रकार के वंश (unigen), जैसे कि यहूदियों की भाँति प्राचीन राष्ट्रीय प्रकारों द्वारा निर्मित हैं। कुछ लोग इन्हें जातिगत एकक भी कहते हैं।

चौथा अध्याय

जाति और जातित्ववाद तथा जाति-विज्ञान पर उसका प्रभाव

यदि हम वर्तमान समय में प्रचलित जातित्ववाद के तथा तद्विरोधी सिद्धान्तों के उस प्रभाव का सामान्य विस्तार के साथ वर्णन न करें जो उन्होंने जाति-विज्ञान पर डाला है तो इसका मतलब यह होगा कि हम उन बहुत सी कठिनाइयों से बचना चाहते हैं जो पिछले कुछ वर्षों से इसकी उन्नति में बाधक रही हैं।

जाति-विज्ञान जातित्ववाद की लपेट में

जाति के स्थायित्व पर, जिसके सम्बन्ध में सन्देह करने की कुछ वर्षों पूर्व कोई आवश्यकता न पड़ती तथा जो कि जाति-वैज्ञानिक अध्ययन के लिए आधार रूप है, एक पूरा अध्याय लिखने का एक मुख्य कारण यह भी है कि लोगों को इस विषय में काफ़ी भ्रम उत्पन्न हो गया है। इसका मुख्य कारण जर्मनी में कुछ मिथ्या जाति-वैज्ञानिक सिद्धान्तों का विकास तथा उनके विरुद्ध उत्पन्न होनेवाली प्रतिक्रिया थी। हमारे मत से यह प्रतिक्रिया भी दुर्भाग्यवश कई क्षेत्रों में मिथ्या वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित थी। नात्सियों के जातिसम्बन्धी सिद्धान्तों का खण्डन करने के प्रयत्न में लोगों ने, कभी कभी तो शायद जान-बूझकर भी, जाति-विज्ञान को ही नात्सीवाद के साथ लपेट दिया, और तब जाति-विज्ञान के आधारभूत सिद्धान्तों पर ही आक्षेप किये जाने लगे।

इसका मुख्य कारण यह था कि उन विचारों की आलोचना, जिनके प्रवर्तक नात्सी समझे जाते थे, प्रधान रूप से दार्शनिकों के उस छोटे किन्तु प्रभावशाली गुट द्वारा की गयी जो न्यूनाधिक अंशों में उपार्जित गुणवाद (लामार्किज्म) के माननेवाले अथवा उन सिद्धान्तों की ओर झुकाव रखनेवाले थे तथा जिन्हें जाति की निश्चित और स्थिर वंशानुगति की बात मान्य नहीं है। उन लोगों ने जाति-विज्ञान के आधारभूत तथा रूढ़ विचारों को जातित्ववाद के साथ मिश्रित करके इस विज्ञान के आधार को ही शंकास्पद बना दिया है।

जातित्ववाद का आधार जाति-विज्ञान नहीं

यह पूर्णतया अन्यायपूर्ण तथा अवैज्ञानिक था। परन्तु इसके कारण हम लोगों के

लिए इस विकृत धारणा को ठीक करना अत्यावश्यक हो गया कि जाति की स्थिरता तथा वंशानुगति ने ही नात्सी जातीय दर्शन को जन्म दिया तथा जिस तरह वह गलत था, उसी प्रकार जाति-विज्ञान का यह विचार भी गलत है।

इस निष्कर्ष की सारहीनता स्पष्ट है। "अति सरलता" पर आधारित यह भूल कुछ कुछ इस प्रकार है—नात्सियो ने बतलाया कि हेरेनफोक नामक जाति थी जो कि आर्य अथवा नार्डिक थी, लेकिन उनका कहना गलत था। इसलिए नार्डिक जाति तो दूर रही, 'जाति' नाम की कोई वस्तु नही है तथा आगे किसी भी परिस्थिति मे आर्य पारिभाषिक शब्द का प्रयोग न करना चाहिए। जाति तथा नार्डिकों और आर्यो के विषय में चर्चा करना ही नात्सी होने का सबूत देना है। जाति-विज्ञान जाति का अध्ययन है इसलिए या तो यह एक नकली विज्ञान है अथवा इसका सुधार करना आवश्यक है तथा जाति उसका आधार है, यह बात उसमें से निकाल देनी चाहिए।

भारत में, जहाँ कि ये शब्द लिखे जा रहे है, ऐसा अनुमान होता है कि जाति (रेस) तथा जातित्ववाद की इस गड़बड़ी ने यहाँ के दार्शनिकों पर शायद ही कोई गम्भीर प्रभाव डाला हो। परन्तु यह बात पश्चिमी संसार के लिए नहीं कही जा सकती जहाँ कि प्रकाशकों से लेकर मानव-वैज्ञानिकों तक में उन आधारकों को न मानने में प्रतियोगिता रही है जो कि १९३३ में एडाल्फ हिटलर के अधिकार ग्रहण करने के समय तक सम्पूर्ण मानव-विज्ञानसम्बन्धी कार्यो के आधारस्वरूप थे। यह बात केवल अपेक्षाकृत महत्त्वहीन नये उपार्जित गुणवादियो (नीयो-लामार्किस्ट) मे ही नहीं पायी जाती।

जाति-विज्ञान के वैज्ञानिक प्रमाण में परिवर्तन नहीं हुआ

फिर भी कोई ऐसी बात प्रकाश में नही आयी जिससे जाति के सम्बन्ध में प्रतिष्ठित विद्वानों के विचारों में कोई मौलिक परिवर्तन हो गया हो। यदि उसे विज्ञान के रूप में रहना है तो जाति-विज्ञान में मानव-विज्ञान का संश्लेषण जो हम पाते है उसे वंशानुगत गुणों पर अब भी आधारित रहना चाहिए। उसकी प्रेरणा लेमार्क (Lamark) से नही मिल सकती जिसका विचार था कि जातियाँ परिस्थितियों से प्रभावित होती हैं। परन्तु वह डार्विन तथा मुख्यतः मेण्डल से मिलेगी जिनकी रचनाएँ वंशानुगति के महत्त्व तथा स्थायित्व की और इसलिए जाति की निश्चितता की शिक्षा देती है, केवल उन परिवर्तनों तथा विकासात्मक बातों को छोड़कर जो स्वयं उनकी जननिक बनावट से उत्पन्न होती है।

इसलिए पूर्व दृष्टिकोण पुनः स्थापित करने के लिए तथा जाति-विज्ञान और उससे मिलनेवाले ज्ञान को, जैसा कि वह प्रतिष्ठित साहित्य के आधार पर विकसित

हुआ है, ठीक से देखने के लिए यह आवश्यक है कि हम इन दोनों सुझावों को ठुकरा दें —एक तो यह कि जाति में स्थायित्व की वात गलत है; दूसरे यह कि असत्यता केवल जाति-विज्ञान में ही नहीं पायी जाती।

जहाँ तक वंशानुगत गुणों के स्थायित्व का प्रश्न है तथ्य बिलकुल स्पष्ट हैं। केवल उनका अध्ययन करने की आवश्यकता है।

कुछ भी हो, उन गलत धारणाओं को दूर करने के लिए जो नात्सी जातित्ववादियों द्वारा उत्पन्न की गयी थीं तथा नात्सियों के प्रति जो प्रतिक्रिया हुई जिसे हम उतना ही



चित्र नं० ८६—काउंट गोबिनो (Count Gobineau) १८१६—१८८२

[जाति पर एक प्रभावोत्पादक पुस्तक लिखनेवाले ये फ्रान्सीसी लेखक हैं जिन्होंने जर्मनी के लोगों में बड़ी सक्रिय शक्ति देखी। इनके ग्रन्थ ने जर्मनी के राजनीतिज्ञों का ध्यान आकर्षित किया तथा वही आगे चलकर जर्मनी की जातित्ववादी विचारधारा का आधार बना।]

गलत समझते हैं, उसकी गलती को स्पष्ट करने के लिए इस विषय की गहराई तक तथा जाति-विज्ञान के उस विकृत रूप के विकास तक जाना आवश्यक है, जिसे बाद में 'जातित्ववाद' (रेशलिज्म) की संज्ञा प्राप्त हुई।

नात्सी जानित्ववाद, उपार्जित गुणवाद पर आधारित है

इस प्रकार के अध्ययन से एक महत्त्वपूर्ण बात जो विचित्र सी मालूम होती है, यह विदित होती है कि जानित्ववाद का आधार जाति-विज्ञान में नहीं है, यद्यपि अक्सर ऐसा कहा जाता है, और न मेण्डल तथा डार्विन में बल्कि उसका आधार वास्तव में

लेमार्क में मिलता है। यह उन्हीं विचारों तथा दर्शन के निर्माता एवं प्रवर्तक है जो कि जातित्ववाद के विरोधी वर्तमान नवीन उपार्जित गुणवादियों के सिद्धान्तों में पाये जाते हैं।

जैसे जैसे हम आगे बढ़ेंगे यह कुछ आश्चर्यजनक सा लगनेवाला तथ्य स्पष्ट होता जायगा।



चित्र नं० ८७

हौस्टन स्टेवर्ट चेम्बरलैन (Houston Steward Chamberlain)

१८५५—१९२७

[आरम्भ में ये अंग्रेज थे परन्तु बाद में इन्होंने जर्मन राष्ट्रीयता स्वीकार कर ली। इन्होंने काउण्ट गोबिनो के विचारों का समर्थन किया तथा बाद की नात्सी जातीय विचारधारा की नींव डाली।

इस प्रकार जर्मन जातित्ववाद की अधिकांश चेतना तथा उसका विचार दो विदेशियों के ग्रन्थों पर आधारित है।]

जर्मन जातित्ववाद का प्रारम्भ

वर्तमान समय में राजनीतिक दर्शन के आधार पर मानव-विज्ञान का गलत प्रयोग काउंट गोबिनो तथा हौस्टन स्टेवर्ट चेम्बरलैन से आरम्भ होता है, जैसा कि जातित्ववाद के विरोधी भी स्वीकार करने में नहीं हिचकते।

यह बात इतनी महत्त्वपूर्ण है कि चेम्बरलैन से आरंभ होनेवाले नात्सियों के जातित्व सम्बन्धी सिद्धान्तों के विकास का क्रम जानना नितान्त आवश्यक है। तब हमें

विदित होगा कि उनके दृष्टिकोण में और विशुद्ध जाति-वैज्ञानिक अन्वेषण तथा विचारों में कितना अधिक अन्तर है। साथ ही इसके परिणामस्वरूप स्पष्ट हो जायगा कि यह कहना सत्य का गला घोंटना है कि कोई ग्रन्थ अथवा अन्वेषक यदि जाति का अध्ययन जीव-विज्ञान के आधार पर करे तो वह नात्सी जातित्ववाद के वर्णन के पद-चिह्नों पर चल रहा है।

नात्सी जातित्ववाद के अ-जातीय आधार का प्रकटीकरण

डर फ्युहरर (Der Fuehrer) नामक पुस्तक के कारण समाजवादी लेखक कोनरेड हीडेन को काफ़ी श्रेय प्राप्त है। वे उन थोड़े-से व्यक्तियों में से हैं जो यह समझ गये थे कि नात्सी जातीय विचारधारा के प्रवर्तकों की जाति-विज्ञान सम्बन्धी धारणा कितनी विकृत थी।

चेम्बरलेन ने 'शुद्ध' जाति के विचार का उपहास किया था

वास्तव में नात्सी जानित्ववाद का प्रवर्तक 'जाति' नामक जीव-वैज्ञानिक सत्ता पर इतना कम विश्वास करता था कि उसने, जैसा कि कोनरेड हीडेन ने बतलाया है, यह कहा था —

"जाति मनुष्य की बनायी हुई है, यही चेम्बरलेन के लिए इनिहास की गुप्त बातों की कुंजी है।"[1]

"चेम्बरलेन ने कपोलकल्पित 'शुद्ध जाति' की हँसी उड़ायी है। यह एक रहस्यमयी धारणा है, एक हवाई कल्पना है।"[2]

वास्तव में चेम्बरलेन ने कभी इस बात का प्रतिपादन नहीं किया कि दुनिया में शुद्ध जातियाँ हैं, जिन्होंने शुद्ध बनी रहकर मानव-समाज को लाभ पहुँचाने में कोई अंशदान किया है।

चेम्बरलेन ने जाति-मिश्रण की आवश्यकता की शिक्षा दी

इसके विपरीत (आजकल के बहुत मे प्रगतिशील लोगों की भाँति) उन्होंने यह सिखलाया कि जातीय मिश्रण वांछनीय है। उनके अनुसार केवल जातिगत मिश्रण से ही अनुपम बुद्धि के लोगों की उत्पत्ति हो सकती है। उनके पक्षपातपूर्ण विचार मे (यदि उनका मस्तिष्क विकृत नहीं था तो) इसका प्रमाण प्रशा-निवासियों में मिलता

१. कोनरेड हीडेन, डर फ्युहरर (Der Fuehrer), पृष्ठ १८९
२. पूर्वलिखित, पृष्ठ १९०

है जिनको उन्होंने जर्मन (ऐंग्लो-सैक्सन 'जर्मन') तथा स्लाव (Slav) के संकरण से उत्पन्न अति-मानव माना है। उनका कथन था कि वांछनीय प्रकारों को चुन लेना चाहिए और तब उनमें अंतःप्रसवन होना चाहिए।

रक्त की नहीं, बन्धुता की जाति

इससे चेम्बरलेन ने आगे यह तर्क रखा कि इन सब बुद्धिमान् लोगों के योग से एक जाति बन जायगी जो रक्त पर नहीं वरन् बन्धुता पर आधारित होगी।

अवश्य ही यह समस्त विचार हास्यजनक और शब्दों की भूलभुलैयाँ है क्योंकि यहाँ 'जाति' शब्द का प्रयोग जिस अर्थ में किया गया है वह दूसरे स्थान पर लिये गये अर्थ से भिन्न है। परन्तु ऐसा करने में चेम्बरलेन उन लेखकों से थोड़ा ही समय पूर्व थे जो कि जाति शब्द से चौकते थे और जिन्होंने उस शब्द का भरसक शिथिल प्रयोग किया है तथा उसकी वह उचित परिभाषा मानने से इनकार किया है जिसका प्रतिपादन पहले के वैज्ञानिक कार्यकर्ता कर चुके थे।

चुनाव पर आधारित बन्धुता

इन असम्भव प्रतिज्ञावाक्यों (प्रेमिसेज) से इस प्रश्न पर कि क्या मनुष्य रक्त से सम्बन्धित हैं, चेम्बरलेन तर्क करने को तैयार थे। उनका जवाब था—"मैं नहीं जानता और न जानने की मुझे परवाह ही है। चुनाव की बन्धुता के अतिरिक्त अन्य कोई सम्बन्ध अधिक निकटता स्थापित नहीं करता।"

यहाँ पर हमारे समक्ष, एक हास्यास्पद रूप में, कुछ प्राचीन अध्यात्मवादियों का 'चुनाव' का सिद्धान्त है। परन्तु इन्होंने उन लोगों के चुनाव के अतिरिक्त, जो स्वर्ग के आध्यात्मिक साम्राज्य में जायँगे, और अधिक उपदेश देने का साहस नहीं किया। चेम्बरलेन संसार के थे तथा सांसारिक थे। उन्होंने इस संसार के लिए ही शासन के विचारानुरूप चुनाव की शिक्षा दी।

चेम्बरलेन के "आर्य"

विचार-परम्पराओं के इस विचित्र-से चुनाव के आधार पर ही, चेम्बरलेन के अनुसार, आर्यों की उत्पत्ति हुई, जैसा कि हीडेन (Heiden) ने संकेत किया है। 'आर्य क्या है' इस प्रश्न का बड़ा आश्चर्यजनक उत्तर चेम्बरलेन ने दिया—"इस प्रश्न का **उत्तर निश्चित रूप से**[१] देने का साहस करने के लिए **जाति-विज्ञान का कुछ भी ज्ञान**[२]

१, २. मोटा टाइप लेखक द्वारा

आवश्यक नहीं।......जिन लोगों को आर्यों के नाम से सम्बोधित करना हमने सीखा है, उनमें पारस्परिक काफ़ी विभिन्नता पायी जाती है। उनके कपालीय ढाँचे में भी विभिन्नता मिलती है, तथा उनकी त्वचा, आँखें और केशों के रंग भी कई तरह के होते हैं। यदि ऐसा अनुमान किया जाय कि किसी समय में एक जाति इण्डो-यूरोपियन नाम की थी तब हमारे पास इस आशय के अनेक एकत्रित प्रमाणों के लिए क्या तर्क है कि अन्य पूर्णतया असम्बन्धित प्रकार अस्मरणीय काल से हमारे वर्तमान समय के तथाकथित आर्य राष्ट्रों में प्रदर्शित रहे हैं। अधिक से अधिक हम यही कह सकते हैं कि कितने ही व्यक्तियों को आर्य कह दें परन्तु सम्पूर्ण लोगों को नहीं कह सकते।"

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि कोई भी प्रख्यात जातिवैज्ञानिक ऐसा नहीं था जिसने इस बात से इनकार किया हो कि सांस्कृतिक तथा भाषासम्बन्धी आर्य शब्द 'जाति' शब्द के समकक्ष रखा जा सकता है। इसके विपरीत प्रत्येक मानव-वैज्ञानिक, यदि उसने कभी इस प्रश्न पर विचार किया है, इस बात को मानता है कि अधिकतर प्राचीन आर्यों में कुछ जाति-वैज्ञानिक आधार रहा होगा तथा उसका प्रमाण काफ़ी समय तक मिलता रहा।

इन सबके अतिरिक्त प्रत्येक जातिवैज्ञानिक इस बात पर जोर देगा कि यदि आर्य तथा नार्डिक दोनों बराबरी के शब्द नहीं, तब भी आर्य लोगों का, उनकी भाषा तथा संस्कृति का, संतोषजनक विवेचन जाति तथा जाति-विज्ञान की ओर निर्देश किये बिना नहीं हो सकता।

इसलिए यदि हम नात्सी जातित्ववाद के प्रवर्तकों द्वारा प्रयुक्त इस शब्दावली का समानान्तर रूप ढूंढ़ना चाहें तो हमें इसके लिए जाति-विज्ञान के ग्रन्थों को उलटना होगा।

इसके विपरीत, ऐसे ही विचार प्रायः अक्षरशः तथाकथित उन लोकतन्त्रवादी दार्शनिकों के लेखन में मिलते हैं जिन्होंने इस पीढ़ी में उन मौलिक जीव-वैज्ञानिक तथा जातीय सिद्धान्तों को, जिन पर कि जानि-विज्ञान का शास्त्र सदैव ही आधारित रहा है, नष्ट करने या उनका मूल्य कम करने का प्रयत्न किया है।

हम उनकी रचनाओं में ही पढ़ते हैं कि किसी जातीय समूह में अनेक जातियों के तत्त्वों का मिश्रण होता है तथा उनको समझने में जाति-विज्ञान का ज्ञान अनावश्यक और वास्तव में अवांछनीय है।

चेम्बरलेन के दर्शन का राष्ट्रीयतावादी आधार

प्राचीन समय में जर्मनों की प्रबल राष्ट्रीयता, जो कि चेम्बरलेन की भावना का आधार थी[१], छिन्न-भिन्न हो गयी।

उन्हें उस राष्ट्रीयता के बन्धनों के अन्दर ही सब कुछ ठीक करना था।

चेम्बरलेन तथा मार्क्स के सिद्धान्तों[२] में यही विशेष अन्तर है कि जहाँ मार्क्स ने अपने राजनीतिक 'जीव-विज्ञान' का प्रतिपादन विश्वव्यापी पैमाने पर किया है, वहाँ चेम्बरलेन को अपने सिद्धान्तों की व्याख्या संकुचित क्षेत्र में करनी पड़ी है। परिणामतः काफ़ी दुर्बोध तथा रहस्यमय ढंग से यह स्थापित करना आवश्यक हो गया कि जर्मनी में विशिष्ट मनुष्यों की संख्या (जो कि वही है जैसे कि चुने हुए आर्य) अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक थी। इसका यह अर्थ निकला कि इन विशिष्ट मनुष्यों के प्रसवन तथा अंतःप्रसवन का कर्तव्य केवल जर्मनी का ही था (अवश्य ही सब मिश्रित जातीय पूर्वजों से थे), जब तक कि समस्त जर्मन निवासी प्रशा के जंकर्स विशिष्ट मनुष्य अथवा आर्य न हो जायँ।

१. (तथा मुख्य रूप से शायद अब भी है—क्योंकि समय ही बता सकता है कि उसके विशिष्ट रूप में कोई वास्तविक परिवर्तन हुआ है या नहीं)।

२. रूस में वंशानुगति सम्बन्धी प्राचीन मतों के प्रति जो अरुचि है, उसके अन्तर्गत उत्परिवर्तन पर आधारित वंशानुगति सम्बन्धी कारकों के स्थायित्व का सिद्धान्त आता है, जिसने लिसेन्को के नये मार्क्सवादी जीव-विज्ञान को जन्म दिया तथा जुड़वों सम्बन्धी उस अध्ययन को अनुत्साहित किया जिसका परिणाम परिस्थितियों की तुलना में वंशानुगति के अधिक महत्त्व की स्थापना करता है। उस अरुचि का कारण यह है कि मार्क्सवाद का दर्शन डारविन तथा मेण्डेल के सिद्धान्तों पर आधारित पश्चिमी संसार के दर्शनशास्त्रीय सिद्धान्तों के विरुद्ध है। ये वास्तव में, जैसा कि हमने किसी अन्य स्थान पर बतलाया है, उपार्जित गुणवाद (लामार्किज्म) पर आधारित हैं।

तथ्य यह है कि चेम्बरलेन ने मार्क्स के 'जीव-विज्ञान' की तरह वंशानुगति को महत्त्व नहीं दिया तथा दोनों का ही जन्म उपार्जित गुणवाद से हुआ और दोनों के ही दर्शनशास्त्र में कुछ समान तथ्य हैं। यद्यपि, जैसा कि अब हम बतला रहे हैं, जर्मनी में चेम्बरलेन के ऊपर जर्मन राष्ट्रीयता का प्रभाव तथा कम्युनिस्ट दर्शन पर कार्ल मार्क्स के अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण का प्रभाव पड़ा, जिससे नात्सीवाद तथा साम्यवाद के दर्शनों में एक फूट सी पैदा हो गयी, नहीं तो दोनों की ही उत्पत्ति उपार्जित गुणवाद से हुई है।

मार्क्सवाद तथा चेम्बरलेन में अन्तर

चेम्बरलेन तथा मार्क्सवाद के बीच के अन्तर ने जर्मनी के नात्सीवाद के रूप में एक प्रतिद्वन्द्वी सामाजिक आन्दोलन को जन्म दिया, जिसे ठीक ही राष्ट्रीय समाजवाद कहते हैं, जिसने अपने साथी कम्युनिज्म को नष्ट करने का लक्ष्य उसी उत्साह से बनाया जितना दोनों में उस समय के समाज के ढाँचे को बदल देने का उत्साह था।

जब कि चेम्बरलेन का लक्ष्य अपने विशिष्ट मनुष्यों का अधिकांश एक राष्ट्र-राज्य में स्थित रखना था, जर्मन दर्शनशास्त्री मार्क्स ने, यहूदी होने के कारण, राष्ट्रीयता की अपेक्षा अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से अधिक विचार किया तथा उसे चेम्बरलेन की भाँति अपने आपको सीमित नहीं रखना पड़ा।

जर्मन राज्य ने चेम्बरलेन की विचारधारा को सीमित कर दिया। यह सोचने के लिए कुछ गम्भीर कारण हैं क्योंकि ऐसा सभी जर्मनी के दर्शन-शास्त्रज्ञों के लिए हो सकता है जिन्हें अपने सिद्धान्तों को कार्यरूप में परिणत करने के लिए कम बुद्धिमान् जनता की राय की आवश्यकता पड़ती है तथा ऐसा सभी स्थानों में होता है जहाँ कि राजनीतिक दर्शन का जनता की भावना से सम्बन्ध है।

इन मतों की विभिन्नता के उपरान्त भी, जैसा हमने अभी देखा है, चेम्बरलेन ने 'जाति' शब्द का उस अर्थ में, जिसमें हम उसे लेते हैं, मजाक उड़ाया है, जैसा कि कोई भी कट्टर मार्क्सवादी करेगा।

चेम्बरलेन नात्सी जातित्ववाद के प्रवर्तक

चेम्बरलेन के समय से ही नात्सी जातित्ववाद के सम्पूर्ण ढाँचे का विकास आरम्भ हुआ। यह सत्य है कि चेम्बरलेन[1] के सिद्धान्तों में दृढ़ तथा तार्किक तथ्यों की इतनी कमी है कि उनके अनुयायियों को भी कठिनाइयाँ पड़ीं। जातिसम्बन्धी प्रश्नों पर नात्सियों ने जो गोलमटोल तथा अनिश्चित कथन किये उसका कारण यह है कि अन्य लोगों ने, जैसे कि रोज़ेनबर्ग ने 'आर्य' तथा 'जाति' के सिद्धान्तों को पुनः कुछ वास्तविकता का रूप देने का प्रयत्न किया। इसका परिणाम यह हुआ कि नात्सी जब नार्डिक शब्द का प्रयोग करते थे तो कभी कभी उनका अभिप्राय सचमुच 'नार्डिक' से ही था, परन्तु अक्सर इस शब्द से एक समय उनका तो अभिप्राय 'आर्य' से होता तथा दूसरे समय चेम्बरलेन

१. उसी तरह जिस तरह कि जातिविज्ञान के सम्बन्ध में मार्क्सवाद की स्थिति है, जैसा कि सामान्यतः रूस में जीववैज्ञानिक अध्ययन की प्रवृत्तियों से पता चलता है।

के 'आर्य' (अर्थात् चुने हुए विशिष्ट मनुष्यों) से, अथवा जर्मन राष्ट्र से, अथवा जर्मन जाति के सभी राष्ट्रों आदि से होता। इस प्रकार की अनिश्चितता उन लोगों के जातिसम्बन्धी समस्त कथनों में मिलती है।

जातिसम्बन्धी निगूढ़ सिद्धान्त

फिर भी चेम्बरलेन के सिद्धान्तों में तथा बाद के नात्सियों में भी, जिन्होंने उनके आधार पर अपने विचारों की स्थापना की, विचारों की जो भी गड़बड़ी तथा पारस्परिक विरोध हो और वैज्ञानिक तथ्यों के साथ असत्य बातों का तथा गढ़न्त कथाओं का जैसा भी मिश्रण हो, एक बात निश्चित है और वह यह कि इन सब उपदेशों के पीछे सदैव ही चेम्बरलेन का निगूढ़ सिद्धान्त विद्यमान रहता है। यह समझना कठिन है कि इस युग में जब कि तर्क और ज्ञान की सभी शाखाओं में तथ्यों की माँग की जाती है, पूरे के पूरे दर्शन का विकास हुआ, जिसने जाति-विज्ञान के तथ्यपूर्ण तरीकों की अवहेलना की और ऐसे सिद्धान्तों को अपनाया जिनके लिए कोई आधार न था।

यही स्थिति है जिससे हम जर्मनी के एक प्रतिष्ठित मानव-विज्ञानवेत्ता कोसीना को पूर्ण निश्चय के साथ "अ-जर्मन शरीर में जर्मन आत्मा"[१] जैसी मूर्खतापूर्ण बात कहते पाते हैं।

रोज़ेनबर्ग के उपदेश

यद्यपि रोज़ेनबर्ग ने (मानव-विज्ञान के अनेक दृढ़ कथनों को देखकर) अपनी **'दि मिथ आफ़ दि ट्वेन्टिएथ सेन्चुरी'** नामक[२] पुस्तक में नात्सियों के जातित्ववादी सिद्धान्तों को जातिसम्बन्धी पारिभाषिक शब्दावली के अधिक कट्टरतापूर्ण प्रयोग की

१. वे कुछ शर्तों के साथ कह सकते थे कि कुछ वंशानुगत मानसिक तथा स्वभावगत विशिष्टताओं का सम्बन्ध ऐसे गुणों के साथ जोड़ा जा सकता है जो प्रसवन में इधर से उधर हट जाते हैं, इसलिए यह संभव है (यद्यपि इसे प्रमाणित करना होगा) कि कुछ स्थितियों में किसी मनुष्य के मानसिक तथा प्राकृतिक पित्रागत गुण किन्हीं दृष्टिकोणों से प्रत्यक्ष से भिन्न हो सकते हैं, जैसा कि बाह्य समरूप (pheno type) से पता चलता है। परन्तु कोई भी इतनी स्पष्ट घोषणा नहीं कर सकता कि अ-जर्मन शरीर में जर्मन आत्मा हो सकती है, भले ही राष्ट्रीयतासूचक ये शब्द शुद्ध जातिवैज्ञानिक परिभाषा तथा शब्दावली में ही क्यों न परिणत कर दिये जायें।

२. म्युनिख (Munich), १९३५

ओर ले जाने का प्रयत्न किया है, फिर भी वे 'जाति' के सम्बन्ध में इस रहस्यमय चुनावसम्बन्धी विचार को नहीं त्याग सके। इसलिए हम उन्हें भी उसी प्रकार की भाषा का प्रयोग करते हुए पाते हैं–"जाति सम्बन्धी इतिहास ही इस तरह साथ साथ प्राकृतिक इतिहास तथा रहस्यमय आत्मा (Soul Mistique) भी है।

डाइनारिक जाति आन्तरिक रूप में नार्डिक बतायी गयी

इसी तरह डाइनारिक जातीय प्रकार की चर्चा करते समय, जो कि नार्डिक से काफ़ी भिन्न है **परन्तु जर्मन निवासियों में यह एक बहुत आवश्यक नस्ल है,*** उसने बड़े ठाट से कहा कि "डाइनारिक आन्तरिक रूप से बहुधा नार्डिक तरीकों से बने हैं।"

किसी अन्य स्थान पर रोजेनबर्ग ने स्पष्ट कर दिया है कि नयी राजशाही की बुनियाद वे मनुष्य हैं जो कि **आध्यात्मिक, राजनीतिक तथा फौजी अर्थ में** भावी जर्मन राष्ट्र के सामने आनेवाली लड़ाई में सम्मुख खड़े रहें और यद्यपि उनकी राय थी कि उनमें से लगभग ८० प्रतिशत नार्डिक 'प्रकार' के होंगे, तथापि उन्होंने स्पष्ट कर दिया है कि नार्डिक गुणों की कमी नयी राजशाही में मिलने में (जिसे चेम्बरलेन ने 'आर्य' कहा है) बाधक नहीं होगी। उन्होंने यह भी कहा कि अन्य लोगों में (जो नार्डिक नहीं हैं) पित्रागति जो **अपने आप को कार्यरूप में प्रदर्शित करती है बाहरी आकार प्रकार से अधिक महत्त्व की है।***

गाटफ्रीड नीस ने चेम्बरलेन के अस्पष्ट 'जाति' के विचार से उन्हीं पित्रागत गुणों को दिखलाया है क्योंकि उनका कथन है कि रक्त की समरूपता से स्वभाव में भी समरूपता आ जाती है जो कि देश की समान भाषा तथा बन्धुता की भावना में प्रकट होती है। इसके बाद भूमि तथा इतिहास से भी उसमें और परिवर्तन होता है।

नात्सियों की दृष्टि में परिस्थिति का महत्त्व

यहाँ पर जाति की परीक्षा के लिए न केवल जर्मन भाषा तथा जर्मन सिद्धान्तों की ही सहायता ली गयी है परन्तु उपार्जित गुणवाद (Lamarkisn) भी आ जाता है जो बाह्य परिस्थितियों के प्रभाव पर अधिक ज़ोर देता है जो कि जर्मनों के अनुसार बहुधा भूमि (या मिट्टी का) ही प्रभाव होता है।

हमें यह बात ध्यान से न भुला देनी चाहिए कि चेम्बरलेन के पूर्व जर्मन राष्ट्रवादियों ने अपने चौड़े अ-नार्डिक कपालों को परिस्थितियों का परिणाम बतलाने का प्रयत्न किया था।

***मोटा टाइप लेखक द्वारा**

भूमि अथवा मिट्टी, (बोदेन Boden) जर्मन निवासियों के लिए सदैव एक रहस्य-मय प्रभाव रखती है। उसी के आधार पर हम नात्सियों को **'रक्त तथा भूमि'** के लिए अधिक ज़ोर देते पाते हैं। नात्सी की मिश्रित जाति की पूर्वज-परम्परा में जो भी त्रुटि रही हो उसको ठीक करने के लिए उस ने **पवित्र जर्मन** मिट्टी **के रहस्यमय** प्रभाव में पूर्ण विश्वास रखा।

चेम्बरलेन का आधार अन्त तक बना रहा

जातिसम्बन्धी नात्सी सिद्धान्तों की और अधिक व्याख्या करना हमारा अभिप्राय नहीं है। इसके अन्त में यह कहना पर्याप्त होगा कि जब कभी एक तथा कभी दूसरे नात्सी दर्शनशास्त्री एवं धर्मशासकों के प्रतिपादन में विभिन्नता पायी जाती है—अक्सर उनके विचार परस्पर-विरोधी होते हैं—इस आधार पर कि उस मत के उपदेशक ने मानवविज्ञान के कुछ मिलते जुलते तथ्य पर अपने मत को आधारित किया है अथवा हाउस्टन चेम्बरलेन के आधार पर, तब भी चेम्बरलेन का आधार सदैव बना रहता है।

इसी आधार पर नात्सियों ने अनार्यों, अयूरोपीयों, जापानियों, अनार्य[1] फिन निवा-सियों तथा हंगरी के लोगों को अपने "चुने हुए" लोगों में सम्मिलित रखा है, जब कि उसी समय उन लोगों ने हालैण्ड के सेफर्डिम् यहूदियों को जो बहुलांश में नार्डिक हैं, अथवा नार्डिक जाति के पोलैण्ड निवासियों को (जिनकी संख्या बहुत है) इस संसार में रहने तक का अधिकार नहीं दिया।

क्रूर समुराई की 'आर्य आत्मा' थी, इस कारण उसे नात्सियों के साथ हैरेनफ़ोक की ट्रेन में जिसमें कि चुनाववाले समूह के लोग थे, यात्रा करने की अनुमति दे दी गयी। ये लोग अन्दर से, रहस्यमय रूप से, अन्तरात्मा की बन्धुता से सम्बन्धित थे। परन्तु यहूदियों तथा पोलैण्डनिवासियों को, जिनमें से कुछ शुद्ध नार्डिक जाति के थे, इसलिए नष्ट कर देना आवश्यक था कि उनकी 'अनार्य आत्मा' थी।

वास्तव में यह कहना अतिरंजित न होगा कि यहूदी नात्सियों द्वारा इसलिए नष्ट नहीं किया गया था कि वह **'जाति' में** जर्मनों से भिन्न था,[2] बल्कि इसलिए कि

१. उनमें से अधिकांश के लक्षण मुख्यतः जो स्वीडिश पीढ़ी के हैं, नार्डिक हैं।

२. यदि वह लोग जाति के रूपरंग का प्रयोग करते तो उन्हें लेबर फ्रन्ट (Labour Front) **के अध्यक्ष डा० ले** (Dr. Ley) **तथा एस० एस०** (S. S. C.) **के अध्यक्ष हिमलर** (Himmlar) **तथा अपने कई अन्य नेताओं को नष्ट करना पड़ता।**

उसकी 'आत्मा' सिद्धान्ततः जर्मननिवासियों से भिन्न थी और परिणामतः वह आन्तरिक रूप से उन चुने हुए विजातीयों के साथ गिने जाने के अयोग्य था जो कि वास्तव में **रक्त से** नहीं परन्तु बन्धुता **के 'सम्बन्ध'** से आर्य थे।

नात्सी जातित्ववाद, जातिविज्ञान का विरोधी है

चेम्बरलेन के सिद्धान्त का आधार समाज के सचेतन संघटन में विश्वास करने से ठीक उलटा है। इसकी उत्पत्ति भी उसी स्थान से हुई जहाँ से उन अन्य सिद्धान्तों की जिनका विश्वास है कि मनुष्य प्रकृति से अधिक शक्तिशाली है तथा वह अपनी परिस्थिति को बदलकर अपने भाग्य का नियंत्रण कर सकता है। इसी के द्वारा वह एक "आदर्श" समाज का निर्माण कर सकता है, भले ही इसके लिए उसे हिंसा की सहायता लेनी पड़े जैसा कि जर्मनी तथा रूस में हुआ है।

इन बातों में यह उपार्जित गुणवाद के काफ़ी निकट है। इस दृष्टि से चेम्बरलेन के विचार या सिद्धान्त, जिनका नात्सीवाद की दार्शनिक नींव डालने में इतना अधिक हाथ था, उन्हीं प्रारम्भिक सिद्धान्तों से उत्पन्न होते हैं जो कि वंशानुगत गुणों का प्रभाव नहीं मानते तथा जिन्होंने परिस्थिति तथा अन्य बाहरी शक्तियों के प्रभाव पर अधिक ज़ोर दिया है, जिनसे या तो यह आशा की जा सकती है कि प्राप्त गुणों को विकसित करें अथवा किसी भी तरह पित्रागति के प्रभाव को निरर्थक बना दें।

जातिविज्ञान जातित्ववादी दर्शन नहीं

ऐसी आशा है कि यह बतलाने के लिए काफ़ी कहा जा चुका है कि **जातिवैज्ञानिक** नात्सी-जातित्ववादी दर्शनशास्त्री नहीं है, क्योंकि उसकी अभिरुचि तो मनुष्य की अनेक विभिन्नताओं तथा भेदों में और मानवता एवं जाति के जीववैज्ञानिक दृष्टिकोण में है।

जो कुछ हमने कहा है उससे स्वतः स्पष्ट है कि जातिविज्ञान, नात्सी जातित्ववादी सिद्धान्तों का आधार होने के बजाय वास्तव में स्थिति इसके ठीक विपरीत है। कारण यह है कि जातिविज्ञान उन सभी प्रतिज्ञा-वाक्यों को अस्वीकार करता है जिन पर कि नात्सियों के उपदेश आधारित थे। उसी तरह नात्सी जातित्ववादी सिद्धान्त उनके ठीक विपरीत थे जिन पर कि जातिविज्ञान आधारित है।

वास्तव में यह कहना अत्युक्तिपूर्ण न होगा कि शायद वह अपने प्रयोग में भले ही भिन्न रहा हो, फिर भी नात्सी जातीय दर्शन मूल रूप से वही था जैसा कि उसके अनेक विरोधियों के मत थे, अर्थात् उपार्जित गुणवाद में विश्वास, न कि जीव-वैज्ञानिक या

जातिगत अर्थ में जाति के महत्त्व पर विश्वास जैसा कि जाति-वैज्ञानिकों तथा जाति, विज्ञान के सभी संस्थापकों ने बतलाया है।

हमें आशा है कि जो बात इस अध्याय के आरम्भ में हमने कही है, यह संक्षिप्त विवेचन उसे सिद्ध करने के लिए पर्याप्त होगा कि नात्सी सिद्धान्तों की जड़ें, साम्य-वादियों की ही भाँति, उन्हीं सिद्धान्तों में हैं, जैसी कि उन लोगों के सिद्धान्तों में जिन्होंने नात्सीवाद की आलोचना करते समय जातिविज्ञान के प्राचीन विचारों का मूल्य कम करने का प्रयत्न किया। यह जाति-विज्ञान इस वास्तविकता पर आधारित है कि जाति नामक कोई वस्तु अवश्य है तथा साधारणतः इससे अधिक कुछ भी नहीं किया जा सकता कि उसे चुपचाप मान लिया जाय और वैज्ञानिक रूप से उसका अध्ययन तथा विश्लेषण किया जाय।

गत यूरोपीय युद्ध के समय नात्सियों के आलोचकों की एक जमात की जमात पैदा हो गयी थी। उन्होंने एक गलती तो यह की कि जातिविज्ञान के उन मुख्य सिद्धान्तों पर ही आक्षेप करना आरंभ कर दिया जिनके आधार पर वास्तव में नात्सी जातित्व-वाद का खोखलापन दिखलाया जा सकता था। दूसरे उन्होंने उन्हीं प्रतिज्ञावाक्यों (प्रेमि-सेज) को मान लिया जो नात्सीवाद में माने गये थे तथा जिनकी बुनियाद ही इस बात पर थी कि जाति के रूप में काट-छाँट की जा सकती है और परिस्थितियों के कारण उसमें महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किया जा सकता है। इस प्रकार उन्होंने खुद ही अपने आपको गंभीर आलोचना का लक्ष्य बना लिया।

एक तो जातित्ववाद का नात्सी जातीय दर्शन तथा दूसरा जो कि इसकी प्रतिक्रिया द्वारा उत्पन्न हुआ, जिसे हम जातित्ववाद का विरोधी कह सकते हैं, लेकिन जो नात्सी जातित्ववाद की ही तरह उपार्जित गुणवाद से उत्पन्न हुआ—इन दोनों मिथ्या सिद्धान्तों के बीच में से बचते हुए हमें जाति-विज्ञान का अध्ययन करना होगा।

जैसा कि पहले ही बतलाया जा चुका है, इन मिथ्या जाति-वैज्ञानिक मतों की चर्चा इस आक्षेप का हमेशा के लिए खण्डन करने के लिए की गयी है कि मनुष्य के अध्ययन में जीव-वैज्ञानिक दृष्टिकोण ही जातिसम्बन्धी अविवेकपूर्ण धारणा का कारण तथा आधार है तथा इस पीढ़ी ने जो अन्य भयानक वस्तुएँ देखी हैं, उनके लिए भी वही जिम्मेदार है।

द्वितीय खण्ड

जननिक विद्या की खोज तथा विकास, पौधों तथा पशुओं में जाति की प्रक्रिया, पित्र्यसूत्रों में जननिक स्थिति की रीतियां और कोशों से उनका सम्बन्ध, लिंग-प्रथन तथा अन्य जननिक तत्त्व और उत्परिवर्तन एवं वंशानुगत गुणों में उनका प्रभाव।

द्वितीय खण्ड की भूमिका

वंशानुगति वह आधारभूत प्रक्रिया है जिससे जाति नियन्त्रित होती है।

इसलिए वंशानुगतिसम्बन्धी प्रश्न का तथा जातीय गुणों के प्रत्येक मनुष्य में एवं मनुष्यों के समूहों में हस्तान्तरित होने के प्रश्न का विवेचन करने के पूर्व यह देखना आवश्यक है कि इसकी प्रक्रिया प्रकृति में किस प्रकार होती है।

यह मुख्यतः इसलिए आवश्यक है कि केवल पौधों तथा पशुओं में ही वंशानुगति के नियमों का विस्तृत अध्ययन किया जा सका है तथा बाद में उन्हीं नियमों का मनुष्य पर प्रयोग करने से उसकी जननिक बनावट की जटिलता का पता चला है।

आगे के अध्यायों में जननिक विज्ञान के मुख्य तथा ऐतिहासिक सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है, जिससे वंशानुगति के सिद्धान्तों के आधार स्पष्ट हो जायँ और विद्यार्थी, जातियों तथा मनुष्यों के नियमो को, जब कि इनका वर्णन आगे किया जायगा भली-भाँति समझ सकें।

जननिक विषय के अधिक विस्तृत अध्ययन के लिए पाठकों का ध्यान वर्तमान समय के उन ग्रन्थों की ओर आकर्षित किया जाता है जिनमें पूर्ण रूप से केवल इसी का वर्णन है।

पाँचवाँ अध्याय

जाति की प्रक्रिया का पता लगाने तथा उसे समझने की क्रिया के विकास पर संक्षिप्त विवेचन

इस बात के प्रतिपादन के लिए पर्याप्त कहा जा चुका है कि वंश-परम्परा प्राप्त गुणों को, जिनके सम्बन्ध में कोई भ्रम नहीं हो सकता, प्रदर्शित करनेवाली जातियाँ तथा मिश्रित जन-समूह संसार में विद्यमान हैं। इसके परिणामस्वरूप स्पष्ट है कि जाति-विज्ञान का अध्ययन एक तथ्यानुमोदित सत्य है, इसलिए इसका व्यावहारिक आधार भी होना चाहिए। यह केवल शैक्षणिक अभिरुचि की ही वस्तु नहीं है, परन्तु जाति का मतलब पूर्ण रूप से समझने के लिए जनन-विद्या की प्रविधि को, जो कि समस्त जीवित प्राणियों के लिए जातिसम्बन्धी गुणों के प्रजनन में सहायक है, समझ लेना आवश्यक है।

इसलिए जातियों के वंशक्रम की प्रक्रिया की खोज तथा उससे उत्पन्न अन्य बातों का और इस क्षेत्र के मुख्य कार्यकर्ताओं तथा अन्वेषकों द्वारा प्रतिपादित विचारों का संक्षेप में विवेचन करना आवश्यक है। इसके पश्चात् हम वास्तविक प्रक्रिया अथवा वंशानुगति के नियमों पर ध्यान देंगे, क्योंकि मस्तिष्क में इस ज्ञान के बिना हम जाति-सम्बन्धी आधारक (मैट्रिक्स, क्षेत्रवस्तु) के विकास के बारे में, जो कि मानवता के निर्माण के लिए सहायक है, गलत परिणामों पर पहुँचने से नहीं बच सकते।

डारविन

वंश-विस्तार या वंश-परम्परासम्बन्धी सिद्धान्तों के आधारभूत ढाँचे के लिए हम मुख्यतः चार्ल्स डारविन के ऋणी हैं। उन्होने प्राकृतिक चुनाव के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है जो कि विकास की उस अवस्था में अवश्य ही अनुभव-जन्य ज्ञान तथा अवलोकन पर आधारित था, जब कि बाद के वैज्ञानिक कार्यकर्ताओं के लिए सूक्ष्म निरीक्षण तथा विस्तृत संपरीक्षण सुलभ हो गया था।

प्राकृतिक चुनाव के सिद्धान्त में यह मुख्य विचार भी शामिल था कि "चेतन

(आरगैनिक) संसार में कुछ रूपान्तर के साथ वंश-गुण का होना प्रकृति का मुख्य नियम है।"

डि राइस (De Vries)

हम शकल की भिन्नताओं के ज्ञान के लिए, जिन्हें उत्परिवर्तन (म्यूटेशन्स) कहते हैं, हालैण्ड के विख्यात पदार्थवैज्ञानिक (नैचुरेलिस्ट) डि राइस के ऋणी हैं। ये उन परिवर्तनों के साथ मिलकर, जो अभिजनन में सतत होते रहनेवाले वंशागत लक्षणों के पुनर्गठित सम्मिश्रणों के परिणाम हैं, समस्त जीवित पदार्थों में, जिन पर डारविन का प्राकृतिक चुनाव का सिद्धान्त लागू होता है, दृष्टिगोचर होनेवाले निरन्तर परिवर्तनशील रूपान्तरों को जन्म देते हैं।

मेण्डल का नियम

फिर भी चेको-स्लोवाकिया स्थित ब्रुन के मठाधिकारी ग्रेगर जान मेण्डल के हम वंशानुगति की प्रक्रिया या कार्यविधि के ठीक ज्ञान के लिए तथा अभिजनन के किसी सम्परीक्षण द्वारा उत्पादित प्रकारों में दृष्टिगोचर रूपान्तरों के लिए आभारी हैं।

वह निश्चित नियम जिसकी मेण्डल ने खोज की, काफ़ी सीमा तक डारविन द्वारा समझे गये पीढ़ी के अनिश्चित सिद्धान्तों का स्थान लेता है तथा डि राइस द्वारा बतलाये गये कुछ परिवर्तनों के बारे में बतलाता है,जिनको कि उसने कभी कभी गलती में उत्परिवर्त्तन (म्यूटेशन्स) समझा है, जब कि वह सन्तति-प्रसार के शुद्ध नियम के अनुसार वंशानगत गुण का फिर से प्रकटीकरण होना मात्र था।

लेमार्क का सिद्धान्त

इन कार्यकर्ताओं के तथा बाद के मनुष्यों के एकत्रित प्रमाणों ने लेमार्क के आधारभूत मतों को, जो सीखे हुए या प्राप्त किये गुणों की पित्रागति के सिद्धान्तों पर आधारित है, भंग कर दिया। वास्तव में ऐसा देखा गया है कि जीवित प्राणी या वृक्षादि परिस्थिति के प्रभाव से परिवर्तित तो होते हैं, जैसे कि खराब दशाओं के कारण पौधों की पूरी ऊँचाई होने में बाधा पड़ती है अथवा दूसरी तरफ जब उत्तम परिस्थितियों तथा ख़ुराक के कारण उनका विकास औसत से अधिक हो जाता है, किन्तु ये गुण एक पीढ़ी से दूसरी में पारेषित नहीं होते, क्योंकि उन्होंने वंशानुगति की प्रक्रिया पर प्रभाव नहीं डाला है।

डारविन पर लेमार्क की समस्याओं का प्रभाव पड़ा है तथा उन्होंने इसके लिए 'पैनजेनेसिस' सिद्धान्त को निकाला ('शब्द-व्याख्या' देखिए)। फिर भी उन्होंने उपा-

र्जित गुणवाद की त्रुटियों को अवश्य भाँप लिया होगा क्योंकि उन्होंने उपार्जित गुणों की पित्रागति के सिद्धान्त की अपेक्षा अपना मुख्य विश्वास प्राकृतिक चुनाव पर रखा, जो कि उद्‌विकास के पीछे काम करनेवाली मुख्य शक्ति है। इस प्रकार बात यह नहीं थी कि सचेनन जीव-जन्तु या उद्‌भिज्ज परिस्थितियों के प्रभाव से नये गुणों को लेकर सन्तति तक पारेषित करता है बल्कि प्राकृतिक चुनाव, जो कुछ जीवन से उसे बचे रहने के लिए मिले, स्वयं चुनता है।

लेमार्क का सिद्धान्त तथा उसके साथ डारविन का 'पैनजेनेमिस' का सिद्धान्त दोनों ही वीजमैन के शक्तिशाली तर्क के समक्ष तथा पैनजेनेसिस के सिद्धान्त को रोकने के प्रयत्न में गैल्टन ने जो उलटे परिणाम निकाले उनसे नष्ट हो गये। वंशानुगति के तथ्यों से भी, जो मेण्डल्ल के सिद्धान्त के प्रतिपादन के साथ प्रसिद्ध हुए, इसकी पुष्टि हुई।

इस पर भी बीच बीच में लेमार्क के सिद्धान्त का फिर से प्रतिष्ठापन करने के लिए प्रयत्न किये गये तथा मुख्यतः अमेरिका में नव-उपार्जित गुणवाद की उत्पत्ति हुई जिसने कुछ मानव-वैज्ञानिकों तथा उन अन्य लेखकों को प्रभावित किया है जिन्होंने जाति के विकास को मोड़नेवाले कारकों में परिस्थिति को माना तथा वंशानुगति के माने हुए मतों को गलत सिद्ध करने का प्रयत्न किया।

भौगोलिक कार्य-कारण के सिद्धान्त को माननेवाले, जिनके प्रतिनिधि अमेरिका के विख्यात भूगोलवेत्ता स्वर्गीय एल्सवर्थ हन्टिंगटन थे, भूगोल के क्षेत्र के अन्दर उसी प्रकार के नव-उपार्जित गुणवादी दृष्टिकोण के अनुयायी थे। यद्यपि भौगोलिक कार्य-कारण के मतवालों के सिद्धान्त एक समान नहीं है परन्तु साधारणतया यह कहा जा सकता है कि उनके अनुसार भौगोलिक परिस्थिति अर्थात् प्रकृति किसी दिये हुए प्रदेश में उत्पन्न होनेवाले मनुष्यों के प्रकार, जाति, राष्ट्रीयता तथा सभ्यता को निर्धारित करती है।

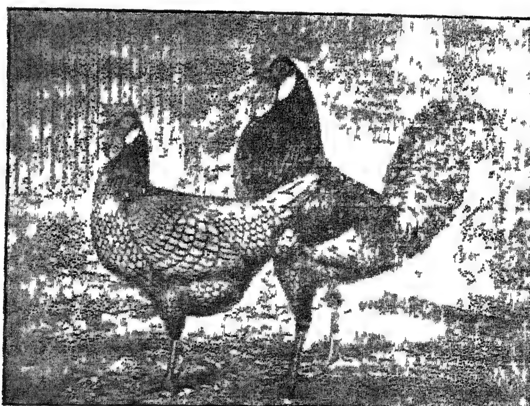
जहाँ तक वे स्पष्ट रूप से अथवा लक्षणा से यह कहते है कि मनुष्य के विकास को निर्धारित करने में वंशानुगति की स्थिति का प्रभाव है, वे नवोपार्जित-गुणवाद के माननेवाले है, हालाँ कि एक ओर तो जीववैज्ञानिक शास्त्रों तथा दूसरी ओर भूगोल के नियमों से अपेक्षाकृत कम सम्पर्क होने के कारण सदैव इसका पूर्ण ज्ञान नहीं हो पाता।

अमेरिका तथा सोवियत रूस के खिचाव को दृष्टि मे रखते हुए यह कुछ अनोखी-सी चीज़ मालूम होती है। मास्को नव-उपार्जित गुणवाद का दूसरा बड़ा समर्थक है, जैसा कि लिसेन्को के विचारों से पता चलता है। मानवविज्ञान के क्षेत्र में नव-उपार्जित गुणवाद के तर्कों के विषय मे अधिक प्रकाश उस समय डाला जायगा जब

कि हम पौधो, पशुओ तथा मनुष्यो की वशानुगति से एकत्रित तथ्यों के आधार पर उनके दिये हुए तर्कों का अध्ययन करेंगे।

मेण्डल द्वारा किये गये प्रसवनसबन्धी संपरीक्षण

मठाधिकारी मेण्डल ने, जो कि परिस्थितिवादियो को अन्य किसी से अधिक असुविधाजनक सिद्ध हुए हैं, अपने मठ के बाग मे अन्य पुष्पो तथा मटरो के प्रसवन-सबन्धी सपरीक्षण १८५० तथा १८६० के आसपास के वर्षो मे किये हैं, जिनका विवरण ब्रुन सोसायटी ऑफ नेचुरल साइन्स की काररवाई मे प्रकाशित किया गया। इसका पता विज्ञानजगत् मे इस शताब्दी के प्रारम्भ तक नही चल पाया था।



चित्र नं० ८८

(राइट की बुक ऑफ पोल्ट्री से उद्धृत)

एण्डालूसियन कुक्कुट (Andalasuion Fowl)

[**इससे नीली एण्डालूसियन की उत्पत्ति होती है जो कि अपूर्ण प्रभावी का एक शास्त्रीय उदाहरण है तथा जिसका कारण आगे चलकर बहुगुण वाले भिन्न युग्म** (allelomorphs) **बतलाया गया है।**]

मटरों के प्रजनन से उदाहरण

उसके कार्यों के परिणामस्वरूप मेण्डल के नियमो की उत्पत्ति हुई है। यदि सरल से सरल शब्दो में कहा जाय तो उसमें हम पित्रागति की प्रणाली को नियमित गणितीय रूप में पाते हैं।

इस प्रकार जब गोल तथा सिकुड़े हुए मटरों को संकरण द्वारा प्रजनित किया जाता है तो मेण्डल ने देखा कि प्रथम जनन में सब गोल दिखाई देते थे तथा सिकुड़े हुए मटरों की उत्पत्ति नहीं हुई।

इस पर भी मेण्डल ने जब इन मटरों से अन्य मटरों की उत्पत्ति की तब यह ज्ञात हुआ कि दूसरे जनन में एक चौथाई मटर सिकुड़े हुए थे जो कि अपने किसी एक प्रारम्भिक जोड़े के ही अनुरूप उत्पन्न हुए थे।

प्रभावी तथा अपसारी गुणों का पता लगाना

इससे यह सिद्ध करना सम्भव था कि प्रसवन में किसी जोड़े में से एक अपने दूसरे साथी की अपेक्षा, जिसे हम अपसारी कहते हैं, अधिक प्रभावी रहता है।

जब मटरों को इस प्रकार से मिलाया जाता है तो प्रभावी गुण हट जानेवाले गुण को पूर्ण रूप से छिपा लेता है तथा जहाँ तक ऊपर से देखने पर पता चलता है, नये उत्पन्न मटर पुराने मटरों में से एक का रूप ले लेते हैं। इस विशेष उदाहरण में प्रभावयुक्त गोल आकार के मटर थे। परन्तु वास्तव में सन्तति में फिर भी कुछ सिकुड़े हुए अपसारी गुण चले जाते हैं तथा आकार के उपरान्त भी यह जनन गोल मटरों का एक शुद्ध प्रसवन न होकर प्रसंकर प्रकार है।

जैसा कि हमने अभी देखा है, इस नस्ल का संकरण होने पर सिकुड़ेपन का अपसारी गुण २५ प्रतिशत में हम पाते हैं परन्तु ऐसा होते हुए भी, हालाँ कि ७५ प्रतिशत प्रभावयुक्त गोल मटर से लगते रहे हों पर वास्तव में वे इस प्रकार के नहीं थे।

कारण यह है कि अगले अर्थात् दूसरे जनन में ऐसा देखा गया था कि शेष ७५ प्रतिशत में केवल एक तिहाई (२५ प्रतिशत) प्रभावी शुद्ध गोल मटर निकले, बाकी दूसरे जनन के दो तिहाई (अर्थात् ५० प्रतिशत) के प्रजनन से ठीक अपना-सा ही अनुपात का सम्बन्ध निकला अर्थात् शुद्ध गोल मटर २५ प्रतिशत, पूर्ण सिकुड़े हुए २५ प्रतिशत तथा प्रत्यक्ष रूप में ५० प्रतिशत गोल पैदा हुए। परन्तु इस दूसरे जनन में गोल तथा सिकुड़े मटर ठीक उसी अनुपात में मिलते हैं जैसा कि प्रथम जनन में गोल मटरों का अंतः-प्रसवन हुआ था।

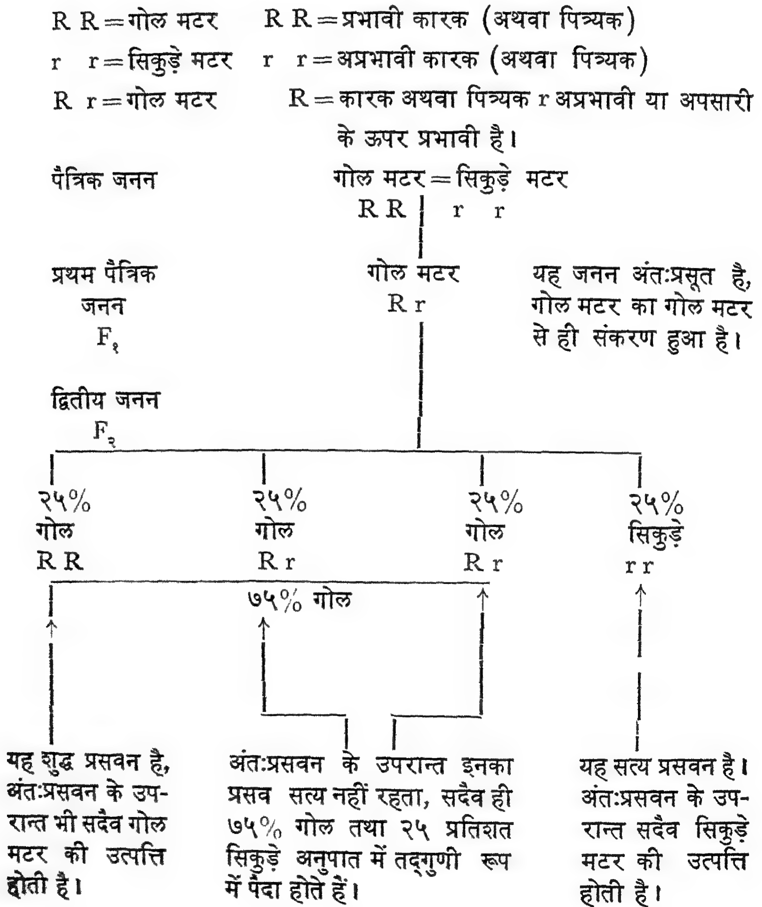
इन संपरीक्षणों के पश्चात मेण्डल ने जिस नियम का पता लगाया उसे हम चित्र नं० ८९ में देख सकते हैं।

इस प्रकार अपने प्रसवन के संपरीक्षणों में एक पौधे के एक गुण को पृथक करके, जैसा कि मटरों में गोल तथा सिकुड़े गुण हैं, मेण्डल ने एक स्पष्ट नियम का होना सिद्ध कर दिया है। हालाँ कि मेण्डल ने अपने संपरीक्षणों में इसके आगे भी कार्य किया तथा

उन पौधों का संकरण किया जिनमें एक से अधिक गुण सम्बद्ध थे। इस प्रकार के अनुसन्धानों के परिणामों का वर्णन हम आगे करेंगे क्योंकि पशु तथा मानव के जननिक अध्ययन के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है।

चित्र नं० ८९

मेण्डल के नियम की क्रिया, जैसी कि गोल तथा सिकुड़े मटरों के संकरण में कार्य करती हुई देखी गयी—



फिर भी मेण्डल ने केवल अपने संपरीक्षणों के परिणामों का अर्थ ही नहीं समझाया बल्कि सन्तति के संकरण में मिलनेवाले अनुपात की भविष्यवाणी भी वह कर सका, जैसा कि आजकल हम कर सकते हैं। इस प्रकार, जो केवल एक सिद्धान्त (थ्योरी) ही होता वह एक नियम (ला) के रूप में स्थापित हो गया।

मेण्डल के कारक, पित्र्यक हैं

बाद के अनुसन्धानकर्ता, जो कि मेण्डल के ही कार्यों पर अपनी खोज करते रहे हैं, यह दिखलाने में सफल हुए हैं कि यह गुण, पित्र्यक (जीन्स) द्वारा उत्पन्न होते हैं। फिर यही पित्र्यक अपनी बारी में पित्र्यसूत्र द्वारा समस्त जीवित पदार्थों के प्रजनन-कोश में ले जाये जाते हैं।

व्यत्यसन (क्रासिंग ओवर)

साथ ही बाद के अन्वेषण से इस बात का पता चलता है कि जब प्रत्येक माता-पिता के पित्र्यसूत्र मिलते हैं तो पहले एक दूसरे के चारों ओर गुथ जाते हैं, फिर अलग हो जाते हैं तथा जोड़े बनाते हैं। एक जोड़ा प्रत्येक माता-पिता से बनता है। इस प्रकार से वह अगली बनती हुई पीढ़ी के कोशों में पित्र्यसूत्र के जोड़ों की उत्पत्ति करते हैं जिसे **अर्ध-सूत्रण** (meiosis) कहते हैं। इस प्रकार की क्रिया में आकस्मिक घटनाएँ हो सकती हैं और कभी-कभी हो भी जाती हैं तथा एक या बहुत से पित्र्यक जो एक विशेष पित्र्यसूत्र में रहते हैं, पृथक् होकर इस प्रकार से खो जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त जब पित्र्यसूत्र एक दूसरे के चारो ओर गुथ जाते हैं तब वह एक दूसरे में फँसकर टूट जाते हैं जिसमे एक का एक भाग अन्य के दूसरे भाग के साथ लग जाता है। उस समय नये प्रकार के पित्र्यसूत्र होंगे। इन सबकी व्याख्या कुछ विस्तार से हम आगे करेंगे। लेकिन यहाँ पर यह ध्यान रखना आवश्यक है कि इस प्रकार की आकस्मिक घटनाएँ सचमुच हो जाया करती हैं तथा इस प्रकार वंशानुगति की प्रक्रिया समझने में वे जटिलता को बढ़ा देती हैं।

यह भली भाँति समझा जा सकता है कि मेण्डल के आविष्कारों के पूर्व, जिसके कारण हम वंशानुगति की कार्यप्रणाली की स्पष्ट क्रिया को समझ सके हैं, इस प्रकार की जटिलताएँ ऐसी रहस्यमय प्रकृति की थीं कि बहुत से उदाहरणों में गुण किस प्रकार से पारेषित हो जाते हैं, यह समझना लगभग असम्भव सा हो गया था।

पित्र्यसूत्रों की संख्यावृद्धि

इन आकस्मिक घटनाओं के अतिरिक्त जिनसे नये जननिक अथवा वंशानुगत

कारकों की उत्पत्ति होती है, कुछ अन्य भी है जिनके कारण ठीक ठीक नही समझे जा सके है, सिवा इसके कि वे पाये जाते है। इसकी खोज से जीवित पदार्थों की उन्नति तथा विकासविषयक ज्ञान में काफ़ी उन्नति हुई है।

इस प्रकार की घटनाओं में यह भी देखी जा सकती है कि कभी-कभी एक पित्र्य-सूत्र अपने ही समान अन्य पित्र्यसूत्र की उत्पत्ति नहीं कर पाता, परन्तु एक या दो जोड़ों अथवा अधिक जोड़ों की करता है जिनको कि द्विगुण, चतुर्गुण अथवा बहुगुण वाले कहते हैं। किसी एक वर्ग के पित्र्यसूत्रों की वास्तविक संख्या के परिवर्धन से मनुष्य द्वारा प्रयोग में लाये जानेवाले पौधों मे, जैसे गेहूँ, जौ, आलू तथा केलों के प्रकारों में कुछ विशेष उन्नति हुई है।

उत्परिवर्तनों (म्यूटेशन्स) की उत्पत्ति

इससे अथवा इसी प्रकार की अन्य खोजों से स्पष्ट है कि इन सबको उन प्रक्रियाओं में रखा जाय जो उत्परिवर्तनों का निर्माण करती हैं और जो कि मेण्डल के साधारण नियम के अपवाद है, तिस पर भी जिनकी क्रिया ठीक उससे मिलती है। इन्हीं उत्परि-वर्तनों के कारण नये प्रकार, जातियाँ तथा किस्में, ऐसे नये गुणों के एकत्रित होने से, एक समय में पैदा हो जाती है।

उत्परिवर्तनों का कारण

इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि यह परिवर्तन भौगोलिक परिस्थिति के प्रभाव के कारण नहीं है परन्तु वास्तव में वंशानुगति की जानी-समझी हुई प्रक्रिया से होनेवाली चीज़ों के परिणामस्वरूप है[१]।

१. गुणों के पारेषण में परिस्थिति के प्रभाव का विषय इस पुस्तक के आगे के भाग में कुछ विस्तार से लिखा गया है। इसलिए जो तर्क वहाँ दिये गये हैं उनको फिर से यहाँ दुहराना उचित नहीं जान पड़ता, सिवा उन साधारण परिणामों के जिनका कि वर्णन हमने अभी किया है। हमें पूर्ण जानकारी है कि रेडियो-सक्रियता द्वारा उत्परिवर्तन को उभाड़ा जा सकता है तथा इसको हम परिस्थिति का परिणाम कह सकते हैं। परन्तु जैसा कि हमने आगे बतलाया है, यह सदैव मृत्युकारक अथवा अधिक से अधिक हानिप्रद होते हैं, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि उत्परिवर्तन जो कि उद्विकास के लिए आवश्यक हैं इस प्रकार उत्पन्न हुए।

उत्परिवर्तन नये प्रकारों तथा किस्मों के आधार

हालाँ कि यह साधारणतया आवश्यक है कि किसी नये प्रकार की उत्पत्ति के लिए वर्ग के जननिक ढाँचे में अनेकों उत्परिवर्तन इकट्ठे हो चुके हों, फिर भी हाल्डेन तथा अन्य लोगों के कार्यों से स्पष्ट हो गया है कि इसके लिए साधारणतः एक सीमित संख्या में उत्परिवर्तनों की आवश्यकता है। इस प्रकार छोटी पूँछवाली मैन्क्स (manx) बिल्ली तथा लम्बी पूँछवाली नीली बिल्ली की विभिन्नता में केवल चार पित्र्यक ही सम्बद्ध हैं।

जैसी कि हमें आशा करनी चाहिए, यह भी खोज की गयी कि किस्मों के अन्तर्गत विभिन्नता, किस्मों के प्रकारों की विभिन्नता की अपेक्षा अधिक संख्या में जननिक विभिन्नता पर आधारित है। यह संख्या अक्सर काफ़ी बड़ी होती है परन्तु ऐसा होते हुए भी किस्मों में ही पारस्परिक विभिन्नता तथा जातियों में प्रकारों की विभिन्नता होना जननिक दृष्टि से एक ही ढंग की चीजें हैं।

संक्षेप में यही वंशानुगति की प्रक्रिया है।

जीवित पदार्थों के उद्भाविक विकास का साधारण सिद्धान्त तथा उससे सम्बन्धित अनुभवजन्य तर्क एवं वर्गीकरण चार्ल्स डारविन तथा उनके सहकारियों की देन है।

वंशानुगति की क्रिया के विषय में हमारे पास जो विशिष्ट तथा सच्चा पदार्थगत वैज्ञानिक ज्ञान है, उसके लिए हम ब्रुन के मठाधिकारी तथा मीठे मटरों, मटरों तथा प्रिमरोज़ सम्बन्धी उसके कार्यों के, जो उसने अपने मठ के बगीचे में किये, आभारी हैं।

इसी के आधार पर अन्य लोगों ने कार्य किये तथा बीसवीं शताब्दी में न केवल मेण्डल के नियम की ही स्थापना की गयी बल्कि उसकी सहायता से वंशानुगति के रहस्य एक-एक करके खुलते जा रहे हैं तथा एक बड़ा ज्ञान-भण्डार, जिसकी जानकारी डारविन को भी नहीं थी, हम लोगों के समक्ष आ गया।

मेण्डल के कारकों (फ़ैक्टर्स) से, जैसा कि वे कहे जाते थे, हम लोग इस सीमा तक जान गये है कि वे पित्र्यक होते हैं जो पित्र्यसूत्र में रहते हैं तथा जो कि शरीर के कोशों में तथा प्रजनन कोशों में जोड़ुवाँ मिलते हैं।

हमें अपने अनुभव से यह भी ज्ञान हुआ है कि कभी कभी पित्र्यक तथा पित्र्यसूत्रों (क्रोमोसोम) में कुछ आकस्मिक घटना हो जाती है या कभी कभी कुछ अन्य परिवर्तन हो जाते हैं, जिन्हें हम पूर्ण रूप से नहीं समझते तथा जिनको प्रथम बार डि राइस ने उपग्रहण किया है तथा जो सामूहिक रूप से उत्परिवर्तन कहलाते हैं। मेण्डल के कार्यों

के प्रकाश में, यदि एक बार उत्परिवर्तन हो चुके हैं तो हम उनके कार्यों को माप सकते हैं। हालाँकि हमें सदैव ही यह ज्ञान नहीं होता कि वे किस प्रकार हुए हैं।

अनेक लोगों ने ज्ञान की इस दिशा के विकास के लिए कार्य किया है तथा कुछ का नाम अगले अध्यायों में दिया जायगा, इसलिए ऐसा करना यहाँ पर आवश्यक नहीं समझा गया।

संक्षेप में हमने उन मूल आधारों को देखा है जिन पर वंशानुगति कार्य करती है।

अगले अध्याय में हम न केवल प्राकृतिक चुनाव की उपयोगिता पर विचार करेंगे जो कि मेण्डल की वंशानुगति के प्रकाश में अधिक समझी जाती हैं, बल्कि बाद के अध्यायों में जननिक क्रियाओं का वर्णन करेंगे जिनको कि इसमें संक्षेप में विषय के प्राक्कथन के रूप में, बतलाया गया है।

छठा अध्याय

मनुष्य के तथा जातियों के उद्विकास में प्राकृतिक चुनाव का स्थान

जैसा कि हमने पिछले अध्याय में देखा है, डारविन ने उद्विकास के लिए प्राकृतिक चुनाव को प्रारम्भिक शक्ति माना है। इतना अवश्य है कि उन्होंने मेण्डल के नियम की स्थापना के पूर्व ही लिखा है, अतः वे इस विषय को जीविन पदार्थों के जननिक संगठन के निश्चित पारिभाषिक शब्दों में विकसिन नहीं कर मके।

इस पर भी आज हमें ज्ञात है कि यदि डारविन का प्राकृतिक चुनाव ठीक है तो उसे उम जननिक शास्त्र के द्वारा, जिसकी कार्य-विधि की हमें जानकारी है, तथा उसके सदृश कार्य करना चाहिए।

प्राकृतिक चुनाव अनेक प्रकार मे कार्य करता है। उसके आवश्यक तरीकों में एक परिस्थिति भी है।

प्राकृतिक चुनाव के तरीके के रूप में परिस्थिति की व्याख्या हमें उस प्रभाव से भिन्न रूप में करना है जो कि सीखे हुए गुणों की पित्रागति के लेमार्क के उपार्जित गुणवाद में[1] पड़ता है।

प्राकृतिक चुनाव में परिस्थिनि का कार्य

वास्तव में परिस्थिति का प्रभाव अनेक प्रकार मे पड़ना है।

उदाहरण के लिए वह क्रूर हो सकती है जिससे वे मभी अयोग्य प्रकार जो किसी एक परिस्थिनि-विशेष में सफलतापूर्वक बने रहने में असमर्थ हों, नष्ट हो जायँ। इस हालत में यह समस्त जाति को, अथवा यदि सब नहीं तो उसके एक बड़े भाग को नष्ट कर देती है। वास्तव में जो कुछ बचता है वह मूल वर्ग का सबमे योग्य भाग है। चूँकि

1. Lamarkian Theory

यह बची हुई जाति समस्त जाति का स्थान ले लेती है, अतः जनसंख्या पहले की अपेक्षा अधिक योग्य हो जाती है, क्योंकि उसकी उत्पत्ति सबसे अधिक उपयुक्त तत्त्वों से होती है जिसमें शक्तिहीन तथा गरीबों को समाप्त कर दिया गया है।

इसके विपरीत परिस्थिति लाभदायक भी सिद्ध हो सकती है क्योंकि उसके द्वारा प्रदत्त सुविधाओं से किसी वर्ग का विकास हो सकता है। इससे किसी सन्तति की संख्या शीघ्र बढ़ सकती है तथा यदि वह वास्तव में योग्य है तो वह इतनी बढ़ सकती है कि अपने पड़ोसी को दबा ले या नष्ट कर दे तथा अयोग्यों की जगह स्वयं स्थापित हो जाय।

इसके लिए लेमार्क के सिद्धान्तों के प्रतिकूल, जिसमें उन्होंने यह बतलाया है कि अन्य दशाओं के साथ, जलवायु तथा भौगोलिक दशाएँ केवल बाहरी आकार (बाह्य समरूप 'Phenotype') में ही परिवर्तन नहीं करतीं, परन्तु ऐसा करने में बड़े सूक्ष्म तरीके से आन्तरिक संघटन (समपित्र्यक 'genotype') में भी परिवर्तन करती हैं। वास्तव में यह देखा गया है कि प्राकृतिक चुनाव के तरीके के रूप में परिस्थिति का कार्य है—अनुपयुक्त प्रकारों को नष्ट करके, उपयुक्त तथा शक्तिशाली प्रकारों को प्रोत्साहित करना। परन्तु किसी भी रूप में यह वास्तविक तथा रचनात्मक शक्ति नहीं है। इसका वंशानुगति की कार्यप्रणाली में कोई भाग नहीं है। यह केवल जननिक विज्ञान द्वारा दिये गये परिवर्तनशील अनेक गुणों के आधार पर ही अपना कार्य करती है।

फिर भी आजकल वंशानुगति के बढ़े हुए ज्ञान के दृष्टिकोण से हम अब जानते हैं कि किसी एक ही किस्म के अन्तर्गत प्राकृतिक चुनाव के कारण जो परिवर्तन होते है वे मनमाने तौर से नहीं होते, जैसा कि डारविन का विचार था। ऐसा ज्ञात होता है कि विकास अथवा उद्भव किन्हीं नियमित सिद्धान्तों पर ही हो सकता है क्योंकि प्राकृतिक चुनाव के कार्य के लिए जननिक संघटन पहले से ही मुख्यतः वंशानुगति से निश्चित रहता है तथा जहाँ पर उत्परिवर्तन हो जाते है वहाँ पर एक साथ सभी ओर न होकर एक विशेष दिशा में एक निश्चित सीमा के अन्दर ही होते हैं।

प्राकृतिक चुनाव में जननिक कारक

केम्ब्रिज के प्रोफ़ेसर आर० ए० फिशर ने, जो एक प्रतिष्ठित जननिक शास्त्रज्ञ हैं, बतलाया है कि प्राकृतिक चुनाव के कार्य के लिए भौगोलिक परिस्थिति ही एक मात्र साधन नहीं है। जब कि यह माना जा चुका है कि भौगोलिक या किसी अन्य प्रकार की परिस्थिति अपनी ही सीमा में किसी एक प्रकार के चुनाव के लिए, जो उस परिस्थिति में रहने के लिए सबसे उपयुक्त है, कारक (फेक्टर) हो सकती है, जननिक परिवर्तन

भी जो किसी किस्म में हो जाते हैं प्राकृतिक चुनाव पर उतना ही प्रभाव डालते हैं। कोई किस्म यदि उत्परिवर्तन द्वारा विकसित होगी, उसकी अधिक कार्यक्षमता अपने पड़ोस की अन्य किस्मों पर तुरंत प्रभाव डाल सकती है जो कि अति-जीवन के युद्ध (स्ट्रगिल फॉर सरवाइवल) में उससे सम्बन्धित हों।

उदाहरण के लिए उपकारी उत्परिवर्तन (म्यूटेशन) के कारण आखेटवाले पशुओं में यदि उछलने की अधिक क्षमता आ जाय, तो उनके लक्ष्य बननेवाले पशुओं में भी उनसे बचने की अधिक शक्ति उत्पन्न हो जा सकती है।

किस्मों के जननिक संघटन के विभिन्न पशुओं में यदि कुछ में हमले से बचने की शक्ति न हो तो शिकारी द्वारा ऐसी किस्म का नाश कर दिया जाता है। फिर भी यदि अपनी वंशानुगति के आधारक से कुछ पशुओं में रफ्तार तथा फ़ुर्ती पैदा करनेवाले कारकों का पृथक्करण हो जाता है तो वे पशु अपने शत्रुओं से बच जाते हैं। यद्यपि शेष नष्ट हो चुके हैं पर जो बच जाते हैं, वे अधिक निपुण सन्तति से उनका स्थान ले लेते हैं। इस प्रकार सन्तति अधिक तीव्र तथा फुर्तीली हो जाती है तथा चूँकि यह गुण जननिक है, सुधरे हुए प्रकार उसी प्रकार की सन्तति उत्पन्न करेंगे। इस प्रकार उस किस्म के विकास की दिशा में एक और छोटा तथा आवश्यक कदम बढ़ेगा।

उद्‌विकास में जातिगत प्रतियोगिता भी आवश्यक

परिणामतः जीवित पदार्थों में प्रतियोगिता उतनी ही आवश्यक है जितनी कि परिस्थिति, यह चुनने के लिए कि कौन-सी किस्म बनी रहेगी तथा अपने प्रकार की उन्नति करेगी। जिस प्रकार प्रतियोगी जीवित पदार्थ अपनी ही वंशानुगति के परिणाम हैं, वास्तव में यह देखा जायगा कि जो कुछ हम आज हैं तथा हमारे चारों ओर जो पशु तथा वनस्पति-जगत् पाया जाता है वह वंशानुगति का उतना ही, बल्कि अधिक परिणाम है जितना कि परिस्थिति का जो कि चुनाव के आधार पर कार्य करती है।

प्राकृतिक चुनाव में भूगोल का कार्य

जहाँ पर भूगोल अपना कार्य करता है (जैसा कि हमने पहले बतलाया है तथा आगे अधिक विस्तार में बतलायेंगे) अपने निश्चय से करता है कि किसी विशेष प्रकार की किस्म किसी विशेष परिस्थिति में जीवित रह सकती है अथवा नहीं, इसके विपरीत किसी दूसरी जाति के लिए विशेष उपयुक्त दशाओं की उत्पत्ति करके उसे जीवित रखता है। इस प्रकार एक में तो एक समूह से कुछ प्रकारों को नष्ट कर देता है अथवा दूसरे में अन्य को ऐसी अनुकूल दशाएँ देता है जिनसे वह अधिक शीघ्रता से अपने प्रति-

द्वन्द्वी के समक्ष बढ़ सके। इस प्रकार वंशानुगत विभिन्न सन्ततियाँ या तो हटने को बाध्य हो जाती हैं अथवा बनी रहने, उन्नति करने को प्रोत्साहित होती हैं।

प्राकृतिक सीमाओं द्वारा भूगोल का पृथक्करण कार्य

भूगोल केवल इसी प्रकार अपना कार्य नहीं करता बल्कि इसका और भी कार्य है तथा वह कार्य है दूरी की रुकावट द्वारा पृथक् कर देना, जैसे कि समुद्रों के कारण एक स्थान से दूसरे स्थान पृथक् हो जाते हैं अथवा ऊँचे पर्वतों तथा पठारों या बड़े बड़े बर्फीले प्रदेशों या मरुस्थलीय पेटियों अथवा मरुस्थलों द्वारा पृथक्करण कर दिया जाता है। इनके द्वारा यह उसी किस्म के हिस्सों को विभिन्न परिस्थितियों में पृथक् कर देता है। एक भाग को दूसरे भाग की अपेक्षा बिलकुल विभिन्न दशाओं में रखता है तथा पृथक्करण द्वारा प्रत्येक समूह अपने में ही प्रसवन करता है। भूगोल न केवल एक जीवित आकार को पुराने आकार से प्राकृतिक चुनाव द्वारा बदल सकता है परन्तु किसी किस्म के एक प्रकार को दूसरे से संसार के अन्य भागों में बिलकुल दूसरे प्रकार से परिवर्तित कर देता है।

इस दशा में परिस्थिति जिस प्रकार से प्रभाव डालती है वह नीचे दिया जा रहा है।

मान लीजिए कि किसी किस्म में ऐसा उत्परिवर्तन हो चुका है जो एक दी हुई परिस्थिति के अनुरूप है। इससे यह परिणाम निकलता है कि जब उस जाति के सदस्य वैसी परिस्थिति में जाते हैं तब उन्हें अधिक सुविधा होती है।

यदि साथ ही वही परिस्थिति विशेष रूप से उन गुणों के लिए अनुपयुक्त है जिनमें उत्परिवर्तन नहीं हुआ है, तव वह उसी जाति के पुराने गुणों के लिए उतनी ही अनुपयुक्त होगी जितनी कि नये गुणों के लिए उपयुक्त समझी जायगी। परिणामतः समय के साथ उस परिस्थितिवाले प्रदेश में केवल नये उत्परिर्वातित गुण पाये जायँगे जब कि अन्य स्थानों पर उन्हीं किस्मों में पुराने गुण पाये जायँगे, यदि सब उसी प्रकार के नहीं तो कम से कम एक गुण में इस प्रकार की किस्में दो प्रकार की पायी जायँगी।

भूगोल के पृथक्करण के प्रभाव के कारण जिसने किसी किस्म के एक हिस्से को दूसरे से अच्छी तरह पृथक् कर दिया है, उनमें अंतःप्रसवन नहीं होगा तथा इसी प्रकार से एक वर्ग में पुराने गुणों का पुनरुत्थान नहीं होगा और न किस्म (स्पीसीज) की अन्य शाखाओं में नये रक्त का ही प्रवेश हो सकेगा।

फलस्वरूप पृथक्करण द्वारा अंतःप्रसवन पूर्ण रूप से रोका जाने के कारण एक ही किस्म के अन्दर समानता नहीं कायम रखी जा सकती।

प्राकृतिक चुनाव में क्षेत्र द्वारा भौगोलिक पृथक्करण का प्रभाव

भूगोल, जैसा कि प्रो० फिशर ने बतलाया है, उन क्षेत्रों में भी जहाँ हज़ारों मील लम्बी दूरी में एक ही प्रकार की किस्म पायी जाती है तथा जहाँ कि प्राकृतिक सीमाओं द्वारा प्रदेश पृथक् नहीं हैं, चुनाव का कार्य कर सकता है। इस प्रकार दक्षिण भाग में जिन पित्र्यकों के लिए दशाएँ उपयुक्त हैं उनके लिए लगभग हज़ार मील उत्तर की ओर वहाँ की परिस्थितीय दशाएँ काफ़ी असुविधाजनक हो सकती हैं। इस प्रकार से एक बड़े क्षेत्र में एक किस्म के फैल जाने से भी वह विभिन्न प्रकारों में बँट सकती है।

मानव तथा प्राकृतिक चुनाव

इस प्रकार की पुस्तक में हमें प्राकृतिक चुनाव की विशेष चर्चा करनी पड़नी है, क्योंकि मानव पर उसका प्रभाव पड़ता है। वास्तव में आगे जो कुछ कहा गया है वह किसी न किसी रूप में इस विषय के बारे में इस संक्षिप्त विवरण की अपेक्षा काफ़ी विस्तार से कहा गया है। यह संक्षिप्त विवरण इस स्थान पर केवल यह बतलाने के उद्देश्य से दिया गया है कि जीवित पदार्थों में प्राकृतिक पदार्थों का नियम किस प्रकार से कार्य करता है तथा यह भी कि इसका कार्य मेण्डल द्वारा खोजे गये सिद्धान्तों के, जो बाद में जननिक शास्त्र के रूप में विकसित हुए, विपरीत नहीं है।

फिर भी जब हम मानव की उत्पत्ति, संसार में उसका वितरण तथा इस युग से हिमयुग के सम्बन्ध पर विचार करते हैं तब हमें मालूम होता है कि मानव के विकास में प्राकृतिक चुनाव एक आवश्यक कारक रहा है।

वास्तव में इसमें कोई सन्देह नहीं कि काकेसायड तथा मंगोलायड वर्गों की, मेलो-नायड की अपेक्षा (जिसमें कि निग्रायड तथा आस्ट्रलायड सम्मिलित हैं) अधिक उन्नतिशील दशाओं के होने का मुख्य कारण अधिकांशतः प्राकृतिक चुनाव ही है।

साथ ही प्राकृतिक चुनाव ने उन विभिन्न रूपों में ही कार्य नहीं किया है जिनका हमने विवरण दिया है, बल्कि उसके अन्य रूप भी हैं जो वास्तव में उतने स्पष्ट नहीं हैं।

हमारा यह मत है कि मध्य एशिया के पश्चिमी भाग में बड़ा विस्तार होने से काके-सायड वर्ग को इतना बड़ा क्षेत्र मिला जिसमें भौगोलिक क्षेत्र के पृथक्करण के प्रभाव के कारण, तथा कोई अन्य भौगोलिक रुकावट न होने के कारण, उसकी दो मुख्य शाखाएँ हो गयीं—उत्तरी जो कि बाद में नार्डिक जाति के रूप में विकसित हुई तथा दूसरी दक्षिणी शाखा जो कि मेडिटेरेनियन जाति हुई।

हमारा यह भी विश्वास है कि भूगोल के पृथक्करण के प्रभाव ने काकेसायड को

दक्षिण की काली जातियों से मध्य एशिया तक की विशाल दुर्गम पर्वत-मालाओं द्वारा अलग रखकर प्राकृतिक चुनाव में सहायता दी।

पश्चिमी साइबेरिया के मैदानों की जिन कठिन स्थितियों ने, मुख्यतः शीत की तीव्रता ने, वर्ग के दुर्बल व्यक्तियों को नष्ट कर दिया, बुद्धि तथा चतुरता को महत्त्व प्रदान किया, उन्हीं दशाओं ने काकेसायड नामक एक उच्चतर विशिष्ट जाति की उत्पत्ति को संभव बनाया, जिसने तभी से मानव-इतिहास में काफ़ी बड़ा भाग लिया है। उन्हीं ऊजड़ तथा शीत दशाओं ने मंगोलायड के पूर्वजों को प्रभावित किया तथा इसमें सन्देह नहीं कि इसी प्रकार पीली जातियों के शीघ्र विकास में सहायता दी जो कि काकेसायड के साथ उन्नतिशील मानव-वर्ग है। इन्हीं दोनों जातियों ने महत्त्वपूर्ण सभ्यताओं का विकास किया है। इस प्रकार के प्राकृतिक चुनाव, भौगोलिक ढंग के थे, जिनकी परिभाषा पहले दी जा चुकी है।

फिर भी इसमें तनिक सन्देह नहीं कि प्रोफ़ेसर आर० ए० फिशर द्वारा प्रतिपादित उस प्रकार का प्राकृतिक चुनाव भी, जिसमें एक वर्ग में निपुणता का विकास होने से दूसरे वर्ग पर भी इसका तुरंत प्रभाव पड़ता है, मनुष्य पर लागू होता है।

एक बार जब काकेसायड तथा मंगोलायड वर्ग चारों तरफ फैलने लगे, तब इन विशिष्ट प्रकार के मनुष्यों ने मेलानायड वर्ग को दबा दिया या नष्ट कर दिया होगा। इस वर्ग के जो लोग बच गये, वे सब योग्य और समर्थ थे तथा इन लोगों ने भी अपनी बारी में दूर बसी हुई काली जातियों को अधिक योग्य बना दिया।

आगे चलकर इन विषयों की हमें काफ़ी चर्चा करनी है, मुख्यतः जब हम यूरोप में काकेसायड लोगों के बसने का, पुरापाषाण काल में नेग्रायड लोगों से इनका सम्बन्ध होने का तथा बाद में इनके यूरोप तथा उत्तरी अफ़रीका से निकाले जाने का, जब कि वे पूर्व काल में इन भागों में बसने गये थे, वर्णन करेंगे।

इस स्थान पर इन बातों का केवल उल्लेख करने का अभिप्राय यह स्पष्ट करना है कि डारविन का प्राकृतिक चुनाव का सिद्धान्त, जैसा कि बाद के लेखकों द्वारा, उन नियमों के आधार पर जो मेण्डल ने खोज निकाले थे, उसमें रूपान्तर किया गया तथा जननिक शास्त्र की शब्दावली के आधार पर जो ग्राह्य बना दिया गया, अन्य जीवों की भाँति मनुष्यों पर भी लागू है तथा यह डारविन के उद्‌विकास के सिद्धान्त से सम्बन्धित केवल एक शैक्षणिक सिद्धान्त ही नहीं है।

यही कारण है कि इसके लिए पूरा एक अध्याय दिया गया है, यद्यपि बिषय का विस्तार देखते हुए सब बातें थोड़े में ही कही गयी हैं तथा अध्याय की पृष्ठ-संख्या भी अधिक नहीं बढ़ने दी गयी है।

सातवाँ अध्याय

जीवित पदार्थों में अपरिमित भिन्नता तथा जातियों और कुलगत समूहों एवं आकस्मिक पृथक्करण द्वारा स्थापित प्रतिबन्ध

यह स्पष्ट है कि जब हम अपने चारों ओर पौधों, पशुओं तथा मनुष्यों की संख्या को देखते हैं तो उनमें अपरिमित विभिन्नता मिलती है तथा प्रकृति सब किस्मों के सम्बन्ध में अथवा उनके अन्दर पूर्ण समरूपता की उत्पत्ति के हेतु ही कार्य नहीं करती।

हम अवश्य ही आगे मानव की विभिन्नताओं पर अधिक विस्तार से विचार करेंगे परन्तु इस समय हमारा अभिप्राय केवल उन आवश्यक जननिक कारणों को संक्षिप्त रूप में बतलाना है जो कि उस विभिन्नता के लिए आंशिक रूप से जिम्मेदार हैं जिसे हम प्रकृति के नियमों के रूप में प्रत्येक स्थान में कार्य करते हुए पाते हैं। इसलिए मानव की विभिन्नता के आधार के अध्ययन को हम आगे के लिए छोड़ते हैं, हालाँ कि जो कुछ भी इस विषय के बारे में हम आगे कहेंगे, वह उन्हीं सिद्धान्तों पर आधारित होगा जिनका विवरण संक्षेप में यहाँ पर किया जा रहा है।

हमने देखा है कि पौधों, पशुओं तथा मनुष्यों के गुण, मेण्डल के कारकों (फैक्टर्स) के कारण हैं जिनको हम पित्र्यक या जनकबीज (जीन्स) कहते हैं। उनकी प्रकृति तथा उनके विषय में जो कुछ अभी तक हम लिखने में सफल हो सके हैं, अगले अध्यायों में उससे अधिक विस्तार से उनकी चर्चा करेंगे।

जैसे जैसे आगे बढ़ेंगे जो कुछ स्पष्ट होता जायगा उसे जानने के पूर्व केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि जीवित पदार्थों का प्रत्येक गुण जननिक संघटन के कारण है, एक पित्र्यक एक से अधिक गुणों को नियंत्रित करता है। यह भी सत्य है कि एक ही दीखनेवाली विशेषता एक से अधिक पित्र्यक द्वारा नियन्त्रित हो।

इन्हीं कारणों से जीवित पदार्थों के प्रत्येक सम्मिश्रण में जटिलता पायी जाती है तथा यही कारण है कि दो जन चाहे वे वृक्ष की पत्तियाँ अथवा मनुष्य ही क्यों न हों, पूर्ण रूप से समान नहीं पाये जाते, हालाँ कि जातीय रूप से दोनों एक ही नस्ल (स्ट्रेन) के हो सकते हैं।

मनुष्य में पित्र्यकों के सम्भावित संयोजनों की संख्या

शिकागो के प्रोफेसर सेवल राइट ने यह दिखलाया है कि यदि पित्र्यक के केवल चार स्वरूप तथा यदि पित्र्यकों के केवल सौ जोड़े होते, तब ऐसी दशा में संयोजनों की संख्या इतनी बड़ी होती कि वह १० पर १०० के विस्तारचिह्न या घात ($१०^{१००}$) के बराबर लिखी जाती। परन्तु गणित न जाननेवाले के लिए इसका कोई अर्थ नहीं निकलता; इसलिए हम कहेंगे कि लगभग किसी साधारण पुस्तक के पृष्ठ में दो रेखाओं तक १ के बाद शून्यों की भरमार कर देने के बराबर वह होती।

यह दृष्टि में रखते हुए कि मनुष्य में पित्र्यकों की संख्या बहुत बड़ी है, ये आँकड़े उन संयोजनों की संख्या से जो कि बन सकते हैं वास्तव में बहुत कम हैं—वस्तुतः राइट ने हिसाब लगाया है कि विश्व में जितने विद्युदणु दीखते है उनकी संख्या से कहीं अधिक संख्या ऐसे संयोजनों की है।

इसी कारण किसी एक जाति के एक मनुष्य में उसी जाति के दूसरे मनुष्य से, यदि परिस्थिति के प्रभाव से मिलाकर देखा जाय तो, आश्चर्यजनक विभिन्नता पायी जाती है।

इसमे दो मूल तत्त्व सम्मिलित है।

एक समजात (होमोजीनस, समांग) जातीय समूह में भी यह आशा नही की जा सकती कि प्रत्येक मनुष्य में सभी छोटे गुण एक ही प्रकार के होंगे, हालाँ कि मुख्य गुणो में अवश्य ही समानता होगी। इन सन्ततियों के जननिक नियन्त्रण तथा अगणित जननिक संयोजन के परिणामस्वरूप हम प्रत्येक जाति में आश्चर्यजनक विभिन्नता पाते हैं जिसके विषय में सेवल राइट ने बतलाया है।

जननिक विभिन्नता का परिस्थिति से अन्तःसम्बन्ध

पशुओं तथा मानव में जन्म के पूर्व की दशाओं से लेकर वह परिस्थिति भी एक कारक होती है जो कि समस्त विकास तथा प्रौढ़ता तक उन्हें घेरे रहती है।

जब कि हम इस बात पर जोर देना चाहते है कि परिस्थिति किसी भी सीमा तक, जहाँ तक हम देख सकते है, जीवित वस्तुओं की वंशानुगति पर कोई प्रभाव नहीं डालती, हम स्वीकार करते है कि वह बाहरी गुणों पर जिनको कि बाह्य समरूप कहा जाता है, प्रभाव डाल सकती है। यह वंशानुगत न होकर अन्य तरह का होता है।

इस प्रकार पोषण की अच्छी दशाएँ अच्छे विकास को प्रोत्साहित करती हैं तथा बुरी दशाएँ विकास को रोकती हैं। इसलिए या तो पौधे पूर्ण विकसित हो सकते है या अविकसित ही रह जाते हैं।

परिणामतः समरूपता के आकार के विकास में इन परिस्थितियों के कारण और भी अधिक तथा अनन्त प्रकार की विभिन्नता पायी जाती है।

इस प्रकार से ये दोनों दशाएँ मिलकर तथा अलग अलग—पित्र्यक के अनन्त सम्भावित संयोजक तथा परिस्थितीय सूत्रों से उत्पन्न समरूपगत परिवर्तन—ऐसी है जिनके कारण किसी वृक्ष की दो पत्तियाँ तथा कोई दो मनुष्य, यहाँ तक कि दो जोड़वाँ बच्चे भी एक से नहीं होते, हालाँ कि जोड़वाँ जननिक बनावट में बिलकुल समान होते हैं।

विभिन्नता पर प्रतिबन्ध

इतना कहने के पश्चात् यह याद रखना चाहिए कि जननिक ढंग की सम्भावित विभिन्नता पर कुछ प्रतिबन्ध लगे हुए हैं जिससे विभिन्नता की वह मात्रा स्वयं ही घट जाती है जिस पर कि परिस्थिति समरूपगत और अधिक विभिन्नता लाने के लिए प्रभाव डाल सकती हो।

पशुओं तथा मुख्यतः मनुष्यों की असीमित विभिन्नता में जिन जिन प्रतिबन्धों का उल्लेख किया जा सकता है, उनमें यह तथ्य भी है कि प्रत्येक किस्म में साथी का चुनाव पूर्णतया स्वच्छन्द नही है।

जननिक विभिन्नता पर जातिगत, सांस्कृतिक तथा सामाजिक प्रतिबन्ध

जहाँ तक मनुष्यों का सम्बन्ध है, यह विशेष रूप से सत्य है। मनुष्य जातियों तथा जातीय समूहों में, सामाजिक तथा प्रादेशिक संघटनों आदि में बँटा हुआ है। साथ में भाषा की सीमाएँ भी आ जाती है तथा यथानुरूप मिलन की मूल प्रवृत्ति के कारण मनुष्यों में अपेक्षाकृत अपने निकट सम्बन्धियो में ही अन्तर्विवाह करने की प्रवृत्ति पायी जाती है। जहाँ तक कि वास्तव में इन सब एकत्रित सूत्रो से विदित है, मनुष्य किसी एक जाति या किस्म में भी स्वतन्त्रतापूर्वक विवाह नही करते। परिणामतः यदि पूर्ण रूप से अन्तःप्रसवन किया जाय तब मनुष्य द्वारा सिद्धान्ततः जितने संमिश्रित पित्र्यक उत्पन्न हो सकते हैं, कार्य रूप में वे बिलकुल नही देख पड़ते।

इस विषय में महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि मानव बड़े बड़े मुख्य वर्गों में बँटा हुआ है। फिर ये वर्ग जातियो में बँटे हुए हैं तथा प्रत्येक के अपने सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक और भाषावार समूह हैं। प्रत्येक अपना अलग क्षेत्र बनाने का प्रयत्न करता है।

इसलिए जब कि एक जाति के भीतर प्रत्येक मनुष्य दूसरो से भिन्न होता है (नहीं तो सिवा उसके कपड़ों के उसको पहचानना असम्भव हो जाय) वह विभिन्नता

वास्तव में पित्र्यकों की अधिक संख्या से बहुत कम है जो कि उसी नस्ल के सदस्यों में सब में पाये जाते हैं तथा जो उसे अपरिचितों की दृष्टि में समजातता का रूप देते हैं। इस प्रकार किसी नार्वे-निवासी की दृष्टि में चीन के अथवा तिब्बत के निवासी अधिकांशतः समान दिखाई देंगे जब कि नीग्रो लोगों को सब अंग्रेज़ एक समान देख पड़ेंगे।

कुलागत समूहों में प्रकृति का प्रबन्ध

इसलिए जब कि प्रोफ़ेसर सेवल राइट का यह कथन यथार्थ ही है कि यदि मानव में बिना रोक-टोक के संकरण होता तो बहुत बड़ी संख्या में मनुष्यों में जननिक संयोजन मिलते, पर जातियों तथा उपविभागों में विभाजन तथा स्वतन्त्र अन्तर्विवाह पर प्रतिबन्ध होने के कारण इन सम्भावित पुनःसंयोजनों का होना कम हो जाता है। इस प्रकार मनुष्यों के समूहों में जो विभिन्नता हो सकती है, वह कम हो जाती है।

जाति की इस रुकावट की विशेष महत्ता है क्योंकि यही जीवित पदार्थों में एक ऐसे बड़े समूह की उत्पत्ति करने से रोकती है जिसमें प्रत्येक जन दूसरे से इतना भिन्न होता कि कोई भी समान गुण किसी भी समूह में न मिलता।

फिर भी, यह तत्त्व केवल मनुष्यों तक ही सीमित है।

जब हम मुख्य वर्ग (जीनस) से किस्मों (स्पीसीज) तक, फिर प्रकारों तथा उनसे व्यक्तियों तक आते हैं, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि सभी प्राणियों में अपने ही प्रवर्ग अथवा किस्मों में भी साथी का चुनाव बेरोक-टोक नहीं है बल्कि वे कुलागत समूहों में बँटे हुए हैं।

इस प्रकार से बिल्लियों में न तो अनन्त प्रकार की 'बिल्लियाँ' हैं और न शेर से लेकर बिल्ली तक बाघ, चीता तथा अमेरिकन बिलाव होती हुई ऐसी परम्परा है जिसमें से सभी अथवा कोई भी एक दूसरे का संग कर सकते हों। इसके विपरीत बिल्लियाँ साधारण वर्गीकरण के अन्तर्गत अपने कुलों में ही परिबद्ध हैं। फिर प्रत्येक किस्म तथा प्रकार के भीतर भी उपसमूहों के मिलने के चिह्न पाये जाते हैं।

मनुष्य की जातियाँ कुलागत समूह हैं

इस प्रकार जब हम मनुष्यों पर आते हैं तब ऐसी आशा नहीं की जा सकती कि जो कुछ वास्तव में हम पाते हैं उसके अलावा और कुछ मिलना चाहिए, अर्थात् जातियाँ तथा उनके उपविभाग जिनमें जाति के अन्तर्गत एक उपजाति तथा दूसरी में अन्तर है तथा एक जाति से दूसरी में भी अन्तर है।

जातियों अथवा कुलागत समूहों के कारण

इसके अनेक कारण हैं जिनमें से कुलागत समूहों की उत्पत्ति के लिए एक अथवा सभी का प्रभाव हो सकता है।

इनको निम्नलिखित प्रकार से समझा जा सकता है—

(१) सचेतन (आरगैनिक) उद्भव
(२) प्राकृतिक चुनाव
(३) यथानुरूप मिलन
(४) अक्रमिक अथवा आकस्मिक समूह-निर्माण
(५) जननिक प्रवृत्ति।

कुलागत समूहों का सचेतन उद्भव

अनेक कुलागत समूहों का उद्भव समान ही है।

किसी एक छोटे समूह के उत्परिवर्तन के कारण, जो कि किसी दूसरे समूह के उत्परिवर्तन से भिन्न हैं, भी उनकी उत्पत्ति हो सकती है। इसी प्रकार उनके वंशज प्रत्येक समूह में एक दूसरे से भिन्न होते गये।

इस प्रकार मेडिटेरेनियनों तथा नार्डिकों की उत्पत्ति समान समझी जा सकती है। उत्तर में नार्डिक लोगों में एक उत्परिवर्तन स्वर्ण केशों में हुआ, दूसरा कंजी आँखों में तथा एक और श्वेत त्वचा में हुआ। इस प्रकार वे लोग समान मूलवर्ग से तथा मेडिटेरेनियन वालों से भिन्न हो गये।

फिर भी वास्तव में किसी एक समूह, झुण्ड अथवा जाति में एक या अधिक कारकों की स्थापना के बिना, जिनको कि अब बतलाया जायगा, समजातता के विकास की स्थापना नहीं की जा सकती।

कुलागत समूहों के उद्भव से सम्बन्धित प्राकृतिक चुनाव

किसी सचेतन समूह में यदि इस प्रकार के भागों की उत्पत्ति एक बार प्रारम्भ हो जाती है तब प्राकृतिक चुनाव या तो परिस्थितियों द्वारा अथवा एक की अपेक्षा दूसरे की अधिक कार्यक्षमता द्वारा अनुपयुक्त प्रकारों का नाश करने लगता है तथा यदि वह प्रकार उत्पन्न होनेवाले कुलागन समूहों के बीच में थोड़े समय तक रहनेवाले होते हैं तो जातियों की उत्पत्ति होती है।

इस प्रकार से नार्डिक के उदाहरण में यदि प्रथम काकेसायड प्रकृति की परिस्थितियाँ अपने उत्तरी भाग में साफ रंग, स्वर्ण केश तथा कंजी आँखों के लिए उपयुक्त

थीं, तो उन्होंने कालों को तथा उन सबों को जिनमें कि इन गुणों की कमी थी, नष्ट कर दिया। इस प्रकार नार्डिकों तथा मेडिटेरेनियनों में पृथक्करण हुआ।

इसी प्रकार यदि श्वेत रंग तथा यौद्धिक पराक्रम का साथ हो जाय तब उससे उन क्षेत्रों में, जहाँ कि नार्डिक जनसंख्या में उत्परिवर्तन हुआ है, काले लोगों का नाश हो जायगा तथा अन्त में नार्डिक कुलागत समूहों की उत्पत्ति होगी।

यथानुरूप मिलन तथा कुलागत समूहों का विकास

कुलागत समूहों की स्थापना में यथानुरूप मिलन की नैसर्गिक प्रवृत्ति की सहायता भी महत्त्वपूर्ण है। यह प्रवृत्ति पशुओं में इतनी तीव्र है कि एक बार उत्परिवर्तन के बाद भिन्नता आने पर तथा पृथक्करण होने पर, जो कि उसकी स्थापना में सहायक है, सभी प्रकार भिन्न रहते हैं।

मनुष्यों में भी ऐसा ही पाया जाता है जैसा कि हम आगे देखेंगे, हालाँ कि नैसर्गिक प्रवृत्ति इतनी तीव्र नहीं रहती क्योंकि उसकी शक्ति का कुछ भाग उस सम्बन्ध के मानसिक बोध में पारेषित हो जाता है, जो कि एक ही सामाजिक क्रम, संस्कृति, भाषा, वर्ग, राष्ट्रीयता तथा वर्ण इत्यादि के विचारों पर आधारित होता है।

चाहे जो हो, सदैव यह शक्ति कुलागत समूहों की ओर तीव्र दबाव डालती रहती है अथवा दूसरे शब्दों में जातियों के निर्माण तथा बने रहने में सहायता करती है।

हम इस प्रवृत्ति के विषय में आगे वर्णन करेंगे तथा मानव समाज में उसकी सापेक्ष शक्ति देखेंगे और तब विदित होगा कि यह सभ्य लोगों में भी, काफ़ी ऊँचे दरजे की पायी जाती है।

अक्रमिक अथवा आकस्मिक समूह

समान-मूल जननिक आधार की किसी जनसंख्या में, जिसके कुछ सदस्यों के कुछ गुणों में उत्परिवर्तन होता है, जो कि भिन्न-भिन्न स्थानों में बसे हों, इनमें, जैसा कि राइट ने बतलाया है, केवल अक्रमिक सम्मिश्रण द्वारा ही पित्र्यकों (जीन्स) का पुर्नविभाजन इस प्रकार होगा कि एक स्थान की आबादी दूसरे स्थान की आबादी से भिन्न होगी। यदि इस नियम से कार्य होता है तो इसका यह अर्थ हुआ कि कोई समानजातीय वर्ग अथवा प्रकार जब ऐसे भौगोलिक भागों में बँट जाता है, जो कि घाटियों, द्वीपों, मरुस्थलों अथवा वनों द्वारा बन जाते हैं, तो इसके परिणामस्वरूप ऐसे व्यक्तिगत समूह बन जा सकते हैं जो मूल समानजातीय वर्ग से तथा आपस में भी किंचित भिन्न हो सकते हैं।

जननिक प्रवृत्ति

अक्रमिक अथवा आकस्मिक समूह, जननिक प्रवृत्ति से काफ़ी निकट से सम्बन्धित हैं। इस विषय के बारे में हम बाद में पूर्ण रूप से विचार करेंगे।

संक्षेप में अभिप्राय यह है कि किसी एक अथवा अन्य कारण से यदि अक्रमिक समूहों की उत्पत्ति हो जाती है तब प्राकृतिक चुनाव द्वारा बहुत से समूह नष्ट हो सकते हैं तथा बचे हुए वही होते हैं जिनमें कि नये उत्परिवर्तित पित्र्यक पाये जाते हैं।

इसलिए जहाँ तक इन गुणों से अभिप्राय है, मौलिक विशेषताएँ पूर्णतया नष्ट हो जायेंगी।

सचमुच यह वहाँ बहुत महत्त्वपूर्ण है जहाँ कि नये गुण किसी अन्य वर्ग के संकरण से उत्पन्न होते हैं तथा जहाँ परिणामतः अक्रमिक संघटन द्वारा किसी एक पृथक् प्रदेश में एक ऐसे संकरज प्रकार का स्थापन होता है जिसमें दोनों सन्ततियों के पित्र्यक मिलते हैं, बाद में प्राकृतिक चुनाव के कारण प्रारम्भ की शुद्ध नस्ल नष्ट हो जाती है।

इस उदाहरण में पित्र्यक एक नस्ल से दूसरी में चले गये हैं तथा उनका मूल रूप नष्ट हो गया है। इस प्रकार एक नयी अभिजाति (ब्रीड) की स्थापना होती है।

फिर भी जननिक प्रवृत्ति केवल उन्हीं छोटे समूहों में कार्य करती है जो कि काफ़ी लम्बे समय से एक दूसरे से तथा मुख्य जातियों से अलग रहते हैं। मनुष्य के प्रारम्भिक इतिहास में ऐसी दशाएँ अवश्य मिलती थीं परन्तु इतना समय बीतने पर अब उनमें कमी हो गयी है।

कुलागत समूहों के निर्माण की प्रवृत्ति का महत्त्व

इन अनेक तत्त्वों की क्रिया से तथा मुख्यतः राइट के गणितीय प्रदर्शन से मानव-वैज्ञानिकों के लिए जो महत्त्वपूर्ण परिणाम निकलता है वह यह है कि जातियों के एक दूसरे में लीन होने के स्थान पर उनमें सदैव इसके विपरीत क्रिया होती रहती है। जातियों में सदैव टूटकर अनेक उपभागों में विभाजित होने की प्रवृत्ति पायी जाती है अथवा वे मिश्रित समूह बनकर जाति के समान अपना कार्य करती हैं।

संकरण के वंशानुगति सम्बन्धी आधारों के ज्ञान के विकास की जो संक्षिप्त व्याख्या हमने इसमें तथा अन्य दो अध्यायों में की है, उसकी आवश्यकता हमें संश्लेषण के हेतु पड़ी। इस सिलसिले में कुछ परिणामों की चर्चा यहाँ पहले से ही कर देनी पड़ी है यद्यपि इनका अधिक विस्तृत वर्णन आगे के अध्यायों में किया जायगा, उनकी अधिक जानकारी तथा उन प्रमाणों के लिए, जिनके आधार पर उक्त परिणाम निकाले गये हैं, हम पाठकों का ध्यान उन तर्कों की ओर दिलाना चाहते हैं जो वहाँ प्रस्तुत किये गये हैं।

फिर भी हमने जननिक विद्या (जेनेटिक्स) का विकास देख लिया है तथा संक्षेप में वंशानुगति के उस रूप की झलक भी देख ली है जिसका संबन्ध मेण्डल के पित्रागति सिद्धान्त से है। हमने उससे सम्बद्ध परिस्थिति के कुछ पहलुओं तथा प्राकृतिक चुनाव पर भी विचार कर लिया है। साथ ही हमने प्रकृति की वह उजागर प्रवृत्ति भी देखी है जो उस जननिक विभिन्नता का विरोध करती है जो कि कुलागत समूहों अथवा जातियों के विकास में पृथक्करण द्वारा उत्पन्न हो जा सकती है तथा जिससे उन जातियों तथा संकरणों की उत्पत्ति होती है जो कि सभी जीवित पदार्थों तथा मनुष्यों के साधारण तथा सचेतन समूहों का आधार है।

इन मतों से कई स्थानों पर जो समस्या उठती है, उस पर, जैसा कि हमने अभी कहा है, आगे अधिक विस्तार से विचार किया जायगा।

फिर भी अब अगले अध्याय में, जैसा कि हमने अभी तक किया है, उससे अधिक विस्तार के साथ इसकी व्याख्या करना आवश्यक है कि जाति अथवा वंशानुगति की वास्तविक कार्यप्रणाली कैसी है। मेण्डल के पित्रागति सिद्धान्त का जो सीधा-सादा वर्णन हमने किया है, उसकी चर्चा अधिक विस्तार से करनी होगी, क्योंकि जब हम मनुष्यों की वंशानुगति, भौतिक तथा मानसिक गुणों के पित्रागति सिद्धान्त की, जिनका जाति-वैज्ञानिक महत्त्व है, व्याख्या करेंगे तो सूक्ष्म विवेचन के बिना मनुष्यों में देख पड़ने वाली वंशानुगति की प्रक्रिया को समझना सम्भव न होगा।

आठवाँ अध्याय

कोश, जननिक स्थिति तथा प्रजनन की रीति और पित्र्यसूत्रों का कार्य

अभी तक हमने वंशानुगति सम्बन्धी उन सिद्धान्तों की चर्चा की है जिनको मेण्डल ने कारकों (फैक्टर्स) का जोड़ा समझा तथा जिन्हें आज हम पित्र्यक[1] कहते हैं। परन्तु पित्र्यक, पित्र्यसूत्रों[2] में मिलते हैं तथा पित्र्यसूत्र, कोशों (सेल्स, कोशिकाओं) के भाग हैं, इसलिए यह आवश्यक है कि इन अन्य तत्त्वों को दृष्टि में रखकर जननविद्या के कार्यों पर विचार किया जाय।

इस पर विचार करने के लिए कोशों से प्रारम्भ करना ठीक होगा।

शरीर के कोश

मनुष्य तथा पशुओं के शरीर इन्हीं कोशों (कोशिकाओं) से बने हुए हैं तथा यह वह पदार्थ है जिससे शरीर का ढाँचा बनता है। इसलिए यह समझा जा सकता है कि उनको क्यों 'सचेतन ढाँचे का एकक' कहा गया है।

नये कोशों का जन्म मौजूदा कोशों के विभाजन से होता है।

कोश का आवश्यक भाग प्राणरस (जीवद्रव्य प्रोटोप्लाज्म) है, जो कि वास्तव में समस्त जीवन का आधार है। इस शब्द का अर्थ **"प्रथम आकार"** भी यही सूचित करता है। मनुष्य, कुत्ता, बन्दर (एप), वनवृक्ष अथवा छत्रक (कुकुरमुत्ता, मशरूम)--इन सब के जीवन का आरम्भ प्राणरस के एक छोटे अणुवीक्षणीय तत्त्व से होता है।

प्राणरस (प्रोटोप्लाज्म, जीवद्रव्य) का विश्लेषण किया जा चुका है तथा उसके रासायनिक गुणों का भी ज्ञान हो गया है। परन्तु इस पर भी उसमें कुछ ऐसा

१. Gene
२. Chromosome

अधिक तत्त्व भी पाया जाता है जिसका निर्माण प्रयोगशाला में अब तक नहीं किया जा सका है। वह कुछ अधिक वस्तु जीवन ही है।

कभी कभी साधारण जीवित पदार्थों का पूरा शरीर एक कोश का ही बना होता है, जैसे क्लेमीडोमोनस[1] तथा एमीबा में। परन्तु जीवन की विकसित अवस्थाओं में सचेतन पदार्थ बहुकोशीय होते हैं।

मांस, तन्तुओं के समूहों से बना होता है तथा ये समूह अगणित कोशों के बने होते हैं। मांसपेशी के कोश फैलते तथा सिकुड़ते हैं तथा यही मांसपेशियों की गति के आधार हैं। न केवल मांस ही परन्तु अस्थियाँ भी कोशों से बनी होती हैं। हालाँ कि, जैसी आशा की जा सकती है, इतने कठोर आधारक (मैट्रिक्स) में दबे रहने के कारण उनके गुणों में परिवर्तन पाया जाता है। चूँकि ये जीवित कोश हड्डियों के ढाँचे में मिलते हैं, यही कारण है कि हड्डी टूट जाने पर फिर से जुड़ जाती है। उसी प्रकार से रक्त में भी कोश पाये जाते हैं, हालाँ कि इसमें वे उतने ही तरल हैं जितने कि हड्डियों में कठोर या स्थिर हैं।

त्वचा जो कि मांसपेशियों, अस्थियों तथा रक्त को ढँके रहती है, स्वयं ही कोशों की परतों से बनी होती है। अन्दर का भाग निचर्म (dermis) तथा परत का बाहरी भाग उपरिचर्म (epidermis) कहलाता है।

प्रत्येक पशु तथा पौधा जो कि बहुकोशीय होता है, जीवन केवल एक कोश से ही आरम्भ करता है। कोशों के निरन्तर विभाजन से ऊतकों (टिशूज) का निर्माण होता है।

पैत्रिक कोशों से अन्य कोशों की उत्पत्ति इस ढंग से होती है कि उनके आवश्यक पदार्थ उचित रूप से इनमें स्थानान्तरित हो जाते हैं। होता यह है कि कोश की न्यष्टि (न्यूक्लिअस) तथा साथ का प्राणरस (जीवद्रव्य) जो उसको घेरे रहता है, विभाजित हो जाते हैं। न्यष्टि में एक चमकीले रंग का पदार्थ (क्रोमैटिन) होता है जो कि धब्बे डालने वाला प्राणरसिक (प्रोटोप्लाज्मिक) पदार्थ है। इस रंजितक (क्रोमैटिन) द्वारा त्वचा, केश तथा आँखों के रंग का अथवा कपालों के आकार का तथा फल-फूलों के आकार-प्रकार का, यहाँ तक कि हमारे स्वभाव तथा मानसिक गुणों तक का निर्धारण होता है।

१. Chlamydomonas

पित्र्यसूत्र (क्रोमोसोम)

विभाजन के पूर्व चमकीले रंग का पदार्थ 'क्रोमैटिन' (रंजितक) एक जाल की भाँति मालूम होता है, जैसा कि दिये गये चित्र नं० ९० में दिखलाया गया है। परन्तु एक बार विभाजन हो जाने पर वह अनेक समूहों में बँट जाता है जिन्हें पित्र्यसूत्र कहते हैं। ये पित्र्यसूत्र अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि प्रत्येक किस्म (स्पीसीज) में सदैव होते है। उदाहरण के लिए मनुष्य में २४ जोड़े पित्र्यसूत्र हैं।

तनु (सोमैटिक) कोशों में शरीरसूत्र-विभाजन

जब एक शरीरसूत्र विभाजित होता है तब प्रत्येक पित्र्यसूत्र लम्बाई में बँट जाता है और प्रत्येक अर्ध भाग एक नया पित्र्यसूत्र बन जाता है तथा कोश की विपरीत दिशा में चला जाता है, जहाँ पर यह नये पित्र्यसूत्र जो कि अर्ध पित्र्यसूत्र से बने हैं, मिलकर एक दूसरे कोश का निर्माण करते है जिसमें पित्र्यकोशो के वही आधारिक तत्त्व होते हैं।

इस क्रिया को शरीरसूत्र विभाजन (मिटासिस) कहते है।

कीटाणु-कोशों में अर्धसूत्रण (मायोसिस)

इन कीटाणु-कोशों की क्रिया शरीर के कोशो की क्रिया की भाँति नही होती। यह वास्तव में इसलिए होता है, क्योकि वे आकार में भिन्न है, अतः बाहरी परिस्थितीय दशाएँ जो कि शरीर के कोशों को प्रभावित करती हैं, प्रजनन के कोशो को प्रभावित नहीं करती। यही वास्तव में उपार्जितगुणवाद[1] के एक ग्राह्य सिद्धान्त न होने का मुख्य कारण है।

(पृ० १५४ का शेषांश)

अन्त में दो नये कोशों का निर्माण जो कि स्थिर दशा में रहते है तथा चारों पित्र्य सूत्र न्यष्टि में, जिसमें चमकने वाला पदार्थ हो, विलीन हो जाते है।

१. Lamarkism

चित्र नं० ९०

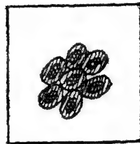
शरीर-सूत्र-विभाजन (Mitosis) का उदाहरण अथवा शरीर-कोशों का विभाजन, केवल पित्र्यसूत्रों को दिखलाते हुए।

=कोश की न्यष्टि।

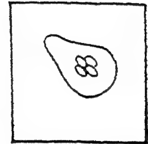
=न्यष्टि के चारों ओर झिल्ली (मेम्ब्रेन)

=पित्र्यसूत्र (क्रोमोसोम)

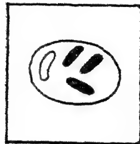
=कोश (सेल)



कोश अपनी प्रारम्भिक स्थिर दशा में।



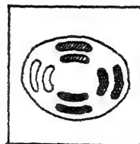
कोश में कार्य प्रारम्भ तथा पित्र्यसूत्रों के निर्माण का आरम्भ।



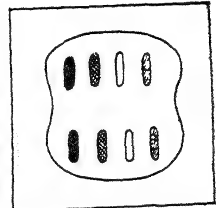
पित्र्यसूत्रों का बनना।



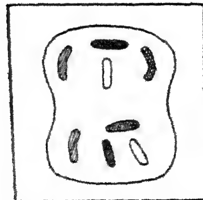
पित्र्यसूत्रों में शरीर सूत्र-विभाजन की क्रिया का होना।



पित्र्यसूत्रों का जोड़ों में बँटना।



पित्र्यसूत्र अब अपने को छाँट लेते हैं तथा प्रत्येक नवनिर्मित जोड़े का एक कोश विपरीत भाग में चला जाता है



पित्र्यसूत्रों का नये कोशों में बनना आरम्भ, प्रत्येक कोश में चार पित्र्यसूत्र हैं।

(दे० पृ० १५३)

प्रजनन-कोशों की क्रिया इस प्रकार है।

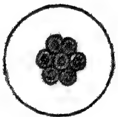
यह विदित है कि निषेचन (गर्भाधान, फर्टिलिजेशन) में नर तथा मादा के

चित्र नं० ९१

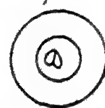
अर्धसूत्रण (meiosis) का उदाहरण अथवा वह विभाजन जिससे कीटाणु (जर्म) कोशों का निर्माण होता है; कोशों का चित्रण जो चार पित्र्यसूत्रों से आरम्भ होते हैं।

चिन्ह वही हैं जैसा कि पिछले चित्र में।

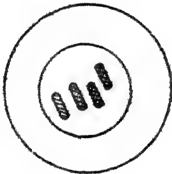
पित्र्यसूत्रों की जाली भिन्न है जिससे कि जोड़ों में दिखलाये जा सकें।



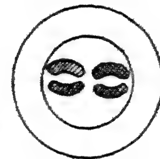
कोश प्रारम्भिग दशा में।



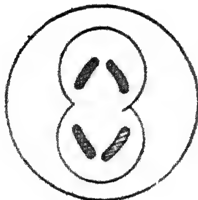
चार पित्र्यसूत्रों के पृथक्करण का प्रारम्भ जो कि जोड़ों में हैं।



पित्र्यसूत्रों के दो जोड़े



कोश-विभाजन, अर्धसूत्रण का आरम्भ



अर्धसूत्रण लगभग पूर्ण अवस्था में।



दो नये अर्धकोशों का निर्माण हुआ है, प्रत्येक में पित्र्यसूत्रों की संख्या प्रत्येक की प्रारम्भिक दशा से आधी है।

इससे प्रजनन कोशों की न्यष्टि (nucleus) का निर्माण होता है।

इन अर्ध कोशों (हाफ सेल्स) को जन्यु (gametes) कहते हैं।

इस प्रकार से अर्ध सूत्रण (मियासिस) द्वारा कोशों का विभाजन होता है जिससे प्रजनन अथवा कीटाणु-कोश बनते हैं। इनमें प्रारम्भिक कोशों की अपेक्षा पित्र्यसूत्रों की संख्या आधी रहती है।

पित्र्यसूत्रों के मिलने से निषेचित स्त्रीबीज की न्यष्टि का निर्माण होता है। परन्तु इसमें इसके पूर्व कि ऐसा हो सके, पहले ही कोश-विभाजन हो चुकता है जिसे अर्धसूत्रण कहते हैं। इसमें पित्र्यसूत्रों के अर्ध भागों में बँटने तथा फिर कोशों का विभाजन होने के बजाय, जैसा कि शरीर के कोशों में होता है, जिसका उल्लेख अभी किया गया है, वे पित्र्यसूत्र ही वास्तव में विभाजित हो जाते हैं। इस प्रकार आधे पित्र्यसूत्र कोश के प्रत्येक ओर चले जाते हैं। वहाँ पर हमें प्रत्येक जन्यु (गैमीट) की (उन कोशों को कहते हैं जो कि निषेचन होने पर मिल जाते हैं) न्यष्टि मिलती है।

यह क्रिया दिये हुए चित्र नं० ९१ में अधिक स्पष्ट रूप से दिखलाई देगी।

इस क्रिया को अर्धसूत्रण (Meiosis) कहते हैं।

जब निषेचन होता है, नरजन्यु (गैमीट) मादाजन्यु से मिल जाता है तथा प्रत्येक में शरीर-कोशों में मिलनेवाले पित्र्यसूत्रों (क्रोमोसोम्स) की आधी संख्या रहती है। यदि यह क्रिया न हो तब ऐसा होगा कि नर-कोश का मादा-कोश से मिलन होने पर प्रत्येक कोश-विभाजन में मादा पित्र्यसूत्रों की संख्या दुगनी हो जायगी तथा फिर नर तथा मादा जन्युओं का संयोग होगा। इस प्रकार से मनुष्य में निषेचित स्त्रीबीज के २४ जोड़ा पित्र्यसूत्रों की अपेक्षा, जैसा कि होना चाहिए, अर्धसूत्रण की असफलता से ४८ जोड़े पित्र्यसूत्रों की उत्पत्ति होगी। इस तरह निषिक्त स्त्रीबीज में पित्र्यसूत्रों की ठीक संख्या बनाये रखने तथा साथ ही प्रत्येक माता-पिता से आधे पित्र्यसूत्रों की संख्या लेने के लिए, अर्धसूत्रण का होना आवश्यक है।

आकार में ये कोशजन्यु अणुवीक्षणीय होते हैं। शुक्राणु (नरबीज जो कि स्त्री-बीज ओवम अथवा डिम्बों का निषेचन करते हैं) डिम्ब के आकार का सहस्त्रवाँ भाग होते हैं। फिर भी आश्चर्य है कि इनके भीतर ही जीविज पित्रागति (आरगैनिक इनहेरिटेन्स) की प्रक्रिया होती है। स्त्रीबीज के कोश के विपरीत जिसमें अधिक पौष्टिक पदार्थ होता है तथा मध्य में न्यष्टि की स्थिति होती है, शुक्रकोश में एक सिर होता है, जो कि न्यष्टि है, तथा एक पूंछ भी जो कि मेढ़क के बच्चे की भाँति सिर को सीधा रखती है। अधिक बड़ा स्त्रीबीज (डिम्ब) जिसमें पौष्टिक पदार्थ होता है, इस सदैव घूमते रहनेवाले शुक्राणु से निषेचित होता है।

ऐसा कहा गया है कि कीटाणु-प्राणरस का आधार न्यष्टि में है जहाँ वह अत्यन्त जटिल स्थिति में रहता है। उसमें विकास की तथा जीवित बने रहने की बड़ी शक्ति होती है। इसको मुख्यतः पित्र्यसूत्रों में देखना चाहिए जिनसे न्यष्टि में रंजितक (क्रोमेटिन) बनता है, जिसमें सम्पूर्ण जीव के प्रारम्भिक एकक मिलते हैं।

इसमें बहुत कम सन्देह जान पड़ता है कि प्रसवन में जो तत्त्व पाये जाते हैं (जैसे कि आकार, रंग, स्वभाव इत्यादि) वे सब पित्र्यसूत्रों से ही मिलते हैं। वे गुण जो कि एक कोश के विभिन्न पित्र्यसूत्रों में मिलते हैं, संकरण के साथ (जैसा कि अगले अध्याय में देखा जायगा, जहाँ पर जाति की बनावट की व्याख्या की गयी है) पृथक हो जाते हैं।

पित्र्यसूत्र-ग्रथन (Chromosomal Linkage)

नर-मादा का संयोग होने पर एक पित्र्यसूत्र द्वारा जब एक अथवा अधिक गुणों का नियंत्रण होता है, तब इनका एक एकक में ग्रथन हो जाता है। इसका उदाहरण उस विवरण में मिलता है जो पहले दिया जा चुका है, जिसमें कि बेटसन तथा पुनेट ने खोज की है कि बैंजनी फूल तथा पराग के लम्बे दानेवाले एक मीठे मटर का जब दूसरी सन्ततियों (स्ट्रेन्स) से संकरण किया जाता है, तब उन गुणों का आपस में ग्रथन हो जाता है। स्पष्ट है कि ये दोनों गुण एक ही पित्र्यसूत्र में होने चाहिए। क्रू[1] ने दिखलाया है कि 'कोई पशु तथा पौधा ऐसा नहीं मिला है जिसमें ग्रथन-समूहों की संख्या, विभाजित न्यष्टि-कोश के पित्र्यसूत्र जोड़ों की संख्या से अधिक हो।' इसमें बहुत कम सन्देह रह जाता है कि इस प्रकार के ग्रथित गुण उन्हीं पित्र्यसूत्रों द्वारा नियन्त्रित होते हैं।

वंशानुगति का पित्र्यसूत्रक सिद्धान्त

पोमेस मक्खी[2] इतनी छोटी होती है कि हाथ का एक लेन्स उसे देखने के लिए आवश्यक है। वह बहुत अण्डे देती है, पर उसे देखना-समझना सरल है और उसका जीवन क्रम भी छोटा होता है। इस पर किये गये प्रोफेसर टी० एच० मार्गन[3] के अन्वेषणों के फलस्वरूप वंशानुगति के तत्त्वों को समझने में बड़ी सहायता मिली है। इन अन्वेषणों से **'वंशानुगति के पित्र्यसूत्रक सिद्धान्त'** का निर्माण हुआ, जिसके अनुसार **'वंशानुगति के मुख्य आधार पित्र्यसूत्र हैं तथा इन पर, प्रत्येक अपने पथ पर विशेष पित्र्यसूत्र पर, पित्र्यक (जीन) रहते हैं जिनकी सक्रियता कुछ विभिन्न गुणों को निश्चित**

१. एफ़० ए० ई० क्रू, (M. D., D. Sc., Ph. D., F. R. S. E.) एनीमल जेनेटिक्स (Animal Genetics), १९२५, पृष्ठ ८३

२. Drosophila melanogaster

३. कोलम्बिया विश्वविद्यालय Columbia University

करती है।' यह सिद्धान्त, जैसा कि आज वह प्रचलित है, अगणित प्रसवन संपरीक्षणों[१] के परिणामों पर आधारित है।

पोमेस मक्खी

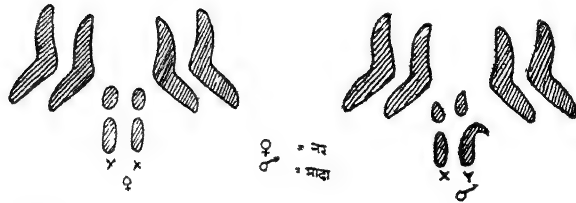
पोमेस मक्खी के उदाहरण में आठ पित्र्यसूत्र हैं। ये मान्य परिपाटी के अनुसार निम्न प्रकार से स्थित हैं। यह देखा जा सकता है कि वे छोटाई-बड़ाई तथा आकार में भिन्न है, उसमें वक्र आकार से बड़े पित्र्यसूत्रों के दो जोड़े हैं, एक जोड़ा अत्यन्त छोटे गोल पित्र्यसूत्रों का है तथा मादा में एक जोड़ा सीधे पित्र्यसूत्र्य का, परन्तु नर में जोड़े के एक पित्र्यसूत्र के अन्त में कटिया जैसा आकार होता है।

चित्र नं० ९२

पोमेस (Pomace) मक्खी के पित्र्यसूत्र (ड्रोसोफीला मेलानोजास्टर— (Drcsophila Melanogaster)

X X } = मादा लिंग पित्र्यसूत्र   X Y } = नर लिंग पित्र्यसूत्र

♀ = मादा
♂ = नर



लिंग पित्र्यसूत्र (Sex Chromosomes)

नर तथा मादा पित्र्यसूत्रों में केवल यही अन्तिम चीज़ भिन्न है, इसलिए यह माना गया है कि यह सीधा जोड़ा लिंग पित्रसूत्र्य है। (X X पित्र्यसूत्र मादा तथा X Y पित्र्यसूत्र नर के हैं)

प्रजनन में यह पित्र्यसूत्र, जैसा कि बतलाया जा चुका है, आधे आधे होकर जन्यु

१. क्रू (Crew), पूर्व कथित, पृष्ठ ८८

(गैमीट्स) का निर्माण करते हैं, जिससे कि मातृक तथा पैत्रिक वंशज में जन्तु का क्रम इस प्रकार होता है, जैसा कि आगे दिये हुए मानचित्र नं० ९३ में दिखलाया गया है।

यदि नर तथा मादा ड्रोसोफीला का संग किया जाय तो यह स्पष्ट है कि पित्र्यसूत्रों का संयोजन इस प्रकार होगा कि मादा नं० १ जन्तु, जैसा कि आगे के नं० ९३ मानचित्र में दिखलाया गया है, नर के ३ अथवा ४ नं० जन्तु से संयुक्त होगा अथवा मादा जन्तु नं० २ नर के ३ अथवा ४ नं० से भी संयुक्त हो सकता है।

इस प्रकार से नं० १ जन्तु अथवा नं० २ ही सही, क्योंकि उनकी आकृति इस उदाहरण में समान ही हैं, यदि अगले चित्र के नं० ३ जन्तु से संयुक्त हो, जो कि नर जन्तु है जिसमें कि X पित्र्यसूत्र मिलते हैं, तब उसका वैसा परिणाम होगा जैसा कि अगले नं० ९४ के मानचित्र में दिखलाया गया है। इसमें यह देखा जायगा कि संयोग के कारण आठ पित्र्यसूत्रों के प्रारम्भिक युग्मक (ज़ाइगोट) का पुनर्निर्माण हुआ है। इसमें चूंकि, × पित्र्यसूत्र ही हैं वे प्रारम्भिक मादा मक्खी के संयोजन की उत्पत्ति करते हैं। यदि संयोग चित्र के नं० ४ से हो तब प्रजनित युग्मक (Zygote) प्रारम्भिक नर के पित्र्यसूत्रों की उत्पत्ति करेंगे।

चित्र नं० ९४ में यह सब स्पष्ट रूप से दिखलाई पड़ता है।

निषेचन में संयोजित होनेवाले जन्तुओं की संभावित संख्या

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रजनन में प्रारम्भिक माता या पिता का युग्मक (जाइगोट)दो भागों में बँट जाता है। इसके पश्चात् एक बार फिर एक माता या पिता के आधे युग्मक का दूसरे के उसी प्रकार के अर्धकोश से संयोग होता है तथाः पुनः पूर्ण युग्मक बन जाता है, जिस प्रकार से कि प्रारम्भ में निर्माण हुआ था। पिछले चित्र में स्पष्टता के लिए प्रत्येक उदाहरण में टूटने की क्रिया में हमने उन्हीं पित्र्यसूत्रों को लिया है। परन्तु विचार करने से यह स्पष्ट हो जायगा कि ऐसा होने के लिए कोई एक ही निश्चित विधि नहीं है। परिणामतः हमारे सम्मुख उन दो जन्तुओं के उत्पन्न होने में, जिनमें कोश विभाजित होते हैं, आठ विभिन्न सम्भावित संयोजन आते हैं।

यह निम्न आठ संयोजनों से स्पष्ट हो जाता है, जिनमें १६ जन्तुओं का बनना दिखलाया गया है। किसी किस्म में, जिसमें दो जोड़े पित्र्यसूत्र हैं, केवल चार सम्भावित संयोजन होंगे तथा दूसरे में तीन के साथ आठ होंगे तथा मनुष्य में उसके ४८ पित्र्यसूत्रों के कारण ९६ सम्भावित संयोजन हो सकते हैं।

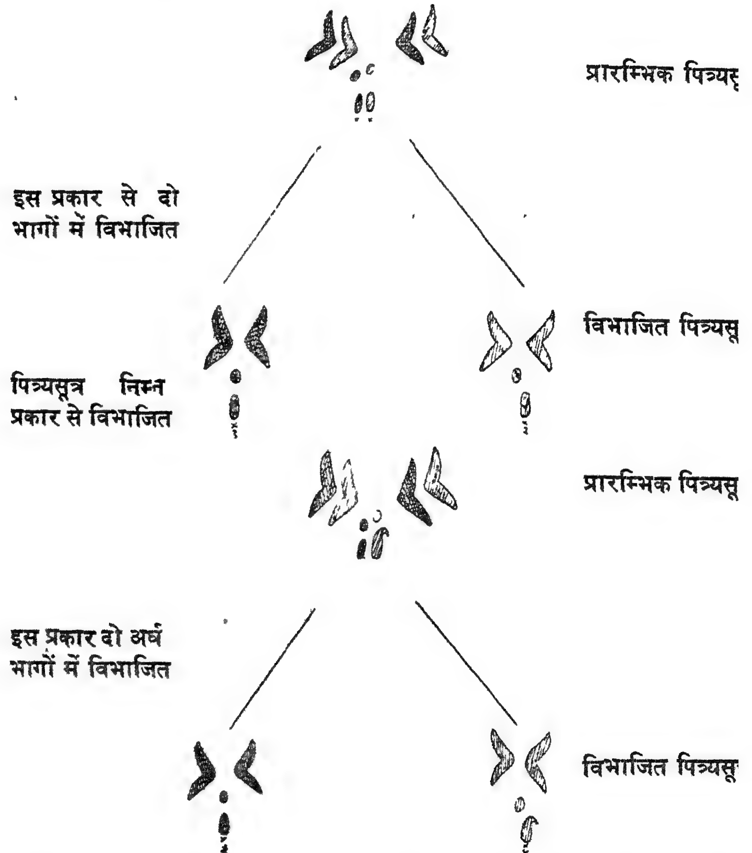
मेण्डल के कारकों की भाँति पित्र्यसूत्रों की क्रिया

मेण्डल के कारकों की भाँति पित्र्यसूत्र बर्ताव करते हैं, हालाँ कि मेण्डल के का पित्र्यसूत्र के समान नहीं हैं। परन्तु यह आगे बतलाया जायगा कि पित्र्यसूत्रों में

चित्र नं० ९३

पित्र्यसूत्र (Chromosome) **विभाजन**

पित्र्यसूत्र निम्न प्रकार विभाजित होता है—



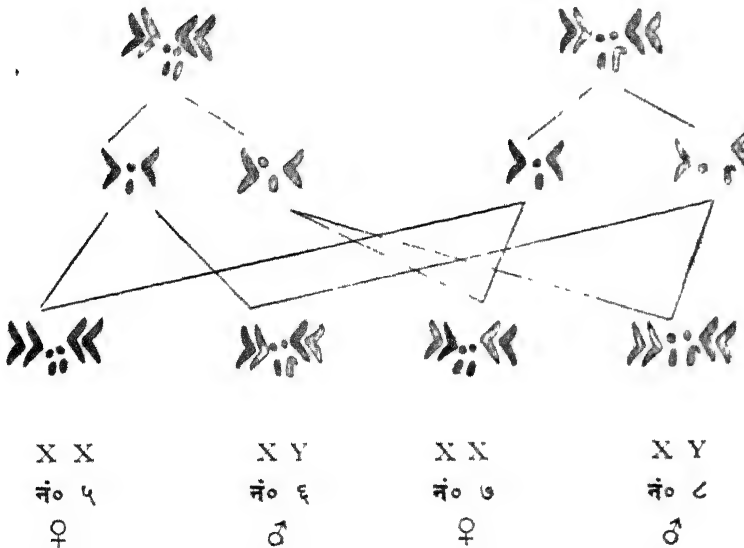
पित्र्यक (जीन्स) मिलते हैं वे कारकों के ही समान हैं। जहाँ तक पित्र्यसूत्र में पित्र्यक मिलते हैं, दोनों का बर्ताव समान है तथा इसलिए पित्र्यसूत्रों का बर्ताव भी मेण्ड

के कारकों के ही समान है। मेण्डल ने यह मान लिया था कि प्रत्येक माता-पिता ने एक कारक का योग दिया जिसमें से एक तो अपसारी (रिसेसिव) तथा दूसरा प्रभावी

चित्र नं० ९४

अर्ध सूत्रण (Meiosis) की क्रिया द्वारा पित्र्यसूत्रों (Chromosomes) का जन्युओं (Gametes) के रूप में पृथक् हो जाना तथा अंतःप्रसवन के पश्चात् पुनःसंयोजन का चित्रण। पोमेस (Pomace) मक्खी के आठ पित्र्यसूत्रों पर उदाहरण आधारित है।

प्रारम्भिक माता-पिता (सबसे ऊपर की पंक्ति)
अर्धसूत्रण अथवा कोशविभाजन द्वारा जन्यु-निर्माण (बीच की पंक्ति)
पूर्ण युग्मकोश में पुनःसंयोजन (अन्तिम या तीसरी पंक्ति)



X X — नं० ५ — ♀
X Y — नं० ६ — ♂
X X — नं० ७ — ♀
X Y — नं० ८ — ♂

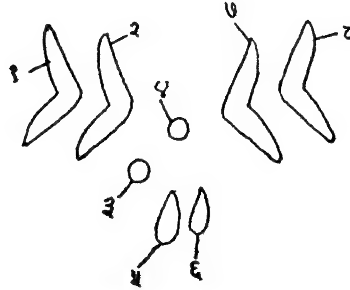
[नोट—नं० ५ से ८ तक प्रत्येक ने कोश के आधे भाग को ही वंशानुगति द्वारा प्राप्त किया जिनमें माता तथा पिता में से प्रत्येक से चार पित्र्यसूत्र मिलते हैं। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति आधा अपने पिता तथा आधा माता से निर्मित होता है।]

(डामिनैण्ट) था और जब इनका विकास हुआ तब ये ऐसे तत्त्वों के रूप में पृथक् हो गये जिनमें से एक अभिव्यक्त तथा दूसरा अपसारित हुआ। इसलिए किसी पराग के कण से किसी निषेकहीन (ओव्यूल) डिम्ब के आकस्मिक निषेचन से १ : २ : १ का

चित्र नं० ९५

[अर्धसूत्रण के समय प्रत्येक जन्यु (गैमीट) में होनेवाले पित्र्यसूत्रों के १६ संयोजन।

मान लीजिए, प्रारम्भिक युग्मक (जाइगोट) के आठों पित्र्यसूत्र, कोश में निम्न प्रकार से अंकित हैं—



तब अर्धसूत्रण (मायोसिस) होते समय जब पहले के युग्मक के पित्र्य-सूत्र का जोड़ा जन्यु के निर्माण के लिए टूट जाता है, तब प्रत्येक जन्यु में पित्र्यसूत्रों के चार निम्न संयोजन हो सकते हैं।—

(१, ३, ५, ७) (१, ३, ५, ८) (१, ३, ६, ७) (१, ३, ६, ८)
(१, ४, ५, ७) (१, ४, ५, ८) (१, ४, ६, ७) (१, ४, ६, ८)
(२, ३, ५, ७) (२, ३, ५, ८) (२, ३, ६, ७) (२, ३, ६, ८)
(२, ४, ५, ७) (२, ४, ५, ८) (२, ४, ६, ७) (२, ४, ६, ८)

आठ विभिन्न संयोजन, जिसमें किसी एक जोड़े के पित्र्यसूत्र शामिल हो सकते हैं, अगले रेखा-चित्र में दिखलाये गये हैं।]

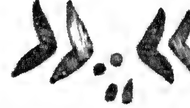
अनुपात प्राप्त होगा, जिसमें कि समपित्र्यक D D प्रभावी, (डामिनेण्ट) तथा अपसारित (रिसेसिव) D R, R R, इसी क्रम में मिलेंगे। यह देखा जायगा कि यही बात पित्र्यसूत्रों में भी होती है। हम एक व्यक्ति से आरम्भ करते हैं जिसमें जोड़े के पित्र्यसूत्र हैं, जोड़े का प्रत्येक पित्र्यसूत्र विभिन्न माता या पिता से आता है

तथा ये कोशों की प्रौढ़ता के साथ टूटते अथवा पृथक हो जाते हैं और पुनःसंयोजन के साथ युग्मक के निर्माण के लिए जोड़े में से प्रत्येक विभिन्न कोशों में चला जाता है।

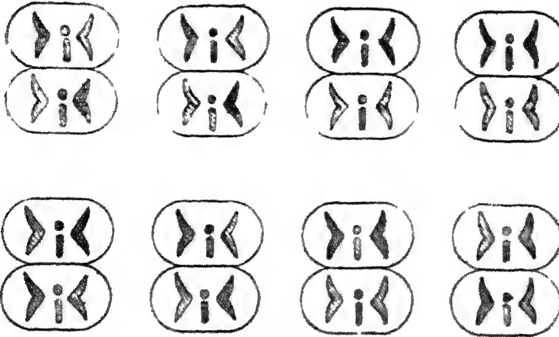
चित्र नं० ९६

अर्धसूत्रण के आठ विभिन्न संयोजनों का रेखा-चित्रण जिसमें ड्रोसोफीला के एक जोड़े का कोई भी पित्र्यसूत्र आ सकता है

पहले कोश के आठ पित्र्यसूत्र (क्रोमोसोम) ♀



अर्धसूत्रण के समय निम्न संयोजनों का निर्माण होता है —



(बैबकाक (Babcock) **तथा क्लाउजेन** (Claussen) **द्वारा)**

इसलिए जहाँ तक कि पित्र्यसूत्रों का एक जोड़ा, कारकों (Factors) के एक सेट से (उदाहरणार्थ पोमेस मक्खी में लम्बे तथा लुप्तप्राय पंख) तथा अन्य जोड़ा दूसरे कारकों से सम्बन्धित है, पित्र्यसूत्रों का संयोजन तथा पृथक्करण, प्रभावी होना तथा अपसारी होना इत्यादि ठीक उसी प्रकार होता है, जैसा कि हमने पिछले अध्याय में देखा है, जहाँ पर हमने मेण्डल के "कारकों" का अथवा वर्तमान शब्द "पित्र्यकों" का प्रयोग किया है। इस प्रकार से एकसंकर (Monohybrid), द्विसंकर

(Dihybrid) तथा पित्र्यसूत्रों के अधिक जटिल संयोग ठीक एक ही प्रकार से होते हैं।

परन्तु पित्र्यसूत्र तथा कारक, जैसा कि कहा जा चुका है एक ही चीज नहीं हैं क्योकि पित्र्यक, पित्र्यसूत्रों (क्रोमोसोम) से उत्पन्न माने गये हैं तथा पित्र्यक (जीन्स) ही मेण्डल के कारण (फैक्टर्स) हैं।

नौवाँ अध्याय

जाति की बनावट का आधार

पिछले अध्यायों में हमने जाति की बनावट की खोज की व्याख्या तथा संक्षेप में इसकी बनावट का कुछ विवरण और वंशानुगति सम्बन्धी मेण्डल के नियमों की, जो कि उसके आधार हैं, व्याख्या की है।

अब हम इस विषय को अधिक ब्यौरे के साथ तथा अधिक विस्तार से देखेंगे जिससे पाठकों को जीवित पदार्थों की सभी किस्मों में जातीय प्रकारों के प्रजनन की विधि का अच्छा ज्ञान हो जाय। जिन खोजों का संक्षिप्त वर्णन हमने किया है उनके वैज्ञानिक परिणाम तथा जिन नयी नयी बातों की ओर उन्होंने हमें प्रेरित किया है, उन्हें देखकर यह कहना सम्भव है कि प्रसवन-ज्ञान के आधार की निश्चित स्थापना हुई है, जिससे पूर्व काल में परिस्थितीय सिद्धान्तवादियों द्वारा असंतोषजनक रीति से बतलाये गये इस ज्ञान की स्पष्ट व्याख्या हो जाती है। अधिक श्रेय केवल उन्ही लोगों को नहीं है जिनके नाम पहले दिये जा चुके हैं परन्तु पित्रागति सिद्धान्त (मेण्डलिज्म) के विशेषज्ञ, कैम्ब्रिज के डब्ल्यू० बेटसन[1] का तथा उनके सहायक आर० सी० पुनेट[2] का और अमेरिका के बी० सी० डेवनपोर्ट[3] का नाम भी उल्लेखनीय है।

बाह्य समरूप (Phenotype) तथा समपित्र्यक (Genotype)

संक्षेप में हमने देखा है जिससे हम कह सकते हैं कि वर्तमान सिद्धान्तो का यह आधार है कि प्रत्येक जीवित पदार्थ दो भागो में विभाजित है। एक को हम देख सकते हैं तथा उसका मूल्यांकन कर सकते हैं। किसी हब्शी की काली त्वचा तथा मटर की हरी चिकनी आकृति बाह्य समरूप (फेनोटाइप) कहलाती है। इसके अतिरिक्त वंशानुगत आन्तरिक संघटन भी है जो निश्चित नियमों द्वारा पारेषित होता है। इसे समपित्र्यक (जीनोटाइप, गण-वैशिष्ट्यज्ञापक) अथवा भिन्नरूप idiotype)

१. W. Bateson २. R. C. Punett ३. B. C. Devenport

कहते हैं। कठिन प्रसृत सन्तति मे बाह्य समरूप तथा समपित्र्यक एक समान हो सकते है पर बहुधा वे भिन्न होते है।[१]



चित्र नं० ९७

(ए० डी० डर्बीशायर की पुस्तक 'ब्रीडिंग एण्ड दि मेण्डेलियन डिस्कवरी'—'प्रसंकरण तथा मेण्डल के नियम की खोज' से)

मनुष्यों में इन पुष्पों ही जैसी वंशानुगति की कार्यविधि मिलती है। इनकी वंशानुगति की समस्या ने प्रथम बार मठाधिकारी मेण्डल का ध्यान आकर्षित किया था जिसके अध्ययन के पश्चात् जाति की बनावट के विषय में हमारा ज्ञान विकसित हुआ।

दो गुलाबी पुष्प गुलाबी जाति के पौधे है। — दो श्वेत पुष्प, श्वेत जाति के पौधे के हैं।

मध्य के दो पुष्प गुलाबी तथा श्वेत पुष्पों के संकरण के परिणाम हैं।

१. एफ़० ए० क्रू (F A Crew) के अनुसार 'बाह्य समरूप उन व्यक्तियों का एक समूह है जो एक ही तरह दिखते हैं, भले ही उनके कारकों का संघटन जुदा जुदा हो। यह पारिभाषिक शब्द किसी व्यक्ति के समस्त गुणों के योग को सूचित करने के लिए भी

बाह्य समरूप (फेनोटाइप)

यह बाह्य समरूप ही है जिस पर परिस्थिति का प्रभाव पड़ता है, जैसे कि उदाहरणार्थ एक गौर वर्ण का अंग्रेज़ जो बाह्य समरूप तथा समपित्र्यक के रूप में गौरवर्ण का है पर जो उष्ण प्रदेश में रहता है। उसकी समरूपता अपने को परिस्थिति के अनुकूल बना लेती है जिससे अस्थायी रूप से उसका रंग साँवला पड़ जाता है। परन्तु उसके समपित्र्यकत्व में परिवर्तन नहीं होता जिससे उसके बच्चे गौरवर्ण ही पैदा होते हैं।[1]

समपित्र्यक (जीनोटाइप)

यही सम-पित्र्यक है जो हमें परिस्थितियों से अप्रभावित पूर्वज-परम्परा से मिलता है। किन्तु यह वंशानुगत गुण एक एकक (यूनिट) नहीं है, अन्यथा मानव-शास्त्रीय अनु-संधान सरल हो जाता। यह बहुत से एककों के संयोजनों से बनता है जिनको मेण्डल ने कारक (फैक्टर्स) कहा है तथा जिन्हें हम पित्र्यक (जीन्स, जनकबीज) कहते हैं। प्रत्येक पित्र्यक अन्य से भिन्न है तथा, जैसा कि बतलाया जा चुका है, पित्र्यसूत्र नामक सचेतन वस्तु में स्थित रहता है। इन पित्र्यकों में स्वयं जीवित बने रहने तथा स्वयं बढ़ने की शक्ति होती है। इस प्रकार जब कोशविभाजन होता है, पित्र्यक बँटकर दो हो जाते हैं तथा प्रत्येक नये कोश में एक पित्र्यक मिलता है।

जातिगत गुणों का पित्र्यकों द्वारा नियन्त्रण

ये पित्र्यक कुछ विशेष गुणों पर नियन्त्रण रखते हैं। इस प्रकार केशों का रंग, केशों का आकार, त्वचा का रंग तथा आँखों का रंग, इनमें से प्रत्येक विभिन्न पित्र्यकों के

प्रयुक्त किया जाता है। जब कि समपित्र्यक शब्द व्यक्तियों के उस एक समूह के लिए भी प्रयुक्त होता है जिनमें कारकों का संघटन समान हो।'

एफ़० ए० क्रू (F. A. Crew), एम० डी०, डी० एस० सी०, पी एच० डी०, एफ़० आर० एस० ई०, एनीमल जेनेटिक्स Animal Genetics, १९२५, पृष्ठ २८

१. यह भी अक्सर देखा जाता है कि उत्तरी अफ्रीका के बहुत से वन्य जाति के बच्चे जिनकी बन्धुता या रिश्ता उत्तरी भागों से है, कभी कभी साफ़ रंग के होते हैं जिससे मालूम होता है कि भिन्न रूप या समपित्र्यक में हल्के रंग की वंशानुगति के बीज भी निहित होते हैं।

सेट द्वारा नियन्त्रित है । व्यावहारिक दृष्टि से हम सोचने और कहने लगते हैं कि धवलांगता (ऐलबीनिज्म), आँखों के रंग इत्यादि के लिए एक अथवा अनेक पित्र्यक उत्तरदायी हैं, हालाँ कि वास्तव में यह समस्या कहीं अधिक जटिल हो सकती है। सभी उच्च जीवों में, जिनमें मनुष्य भी है, पित्र्यक दो दो की संख्या में मिलते हैं। प्रत्येक जोड़े में से एक माता तथा एक पिता से आता है। माता-पिता के पित्र्यक एक समान अथवा बिलकुल भिन्न हो सकते हैं।

प्रभावी तथा अपसारी पित्र्यक

इसके सिवा, जब इनमें से कुछ पित्र्यक एक साथ आते हैं तब उनमें से एक आकार पर अपना अधिक प्रभाव डालने में असमर्थ हो सकता है (बाह्य समरूप) जैसा कि अभी हम देख चुके हैं तथा वह अधिक प्रभावी पित्र्यकों के सम्मुख पीछे हट जाता है। परिणामतः हमें अपसारी तथा प्रभावी पित्र्यक मिलते हैं। उदाहरणार्थ धवलांगता का पित्र्यक अपसारी है, इसलिए कई स्थानों पर मौजूद रह सकता है जहाँ उसका कोई सन्देह नहीं हो सकता। यह उन सभी घटनाओं में सत्य है जहाँ कि एक पित्र्यक अपसारी तथा दूसरा प्रभावी है। किसी अपसारी पित्र्यकवाला कोई मनुष्य यदि (इस उदाहरण में धवलांगता के पित्र्यकवाला) उसी गुणोंवाली स्त्री से विवाह करता है, तब जो बच्चे उत्पन्न होंगे उनमें उन्हीं अपसारी गुणों के पाये जाने की सम्भावना होगी। दूसरे शब्दों में इस पुरुष तथा स्त्री में, उनके बाह्य समरूप अथवा बाहरी आकार से उन परिणामित अपसारी गुणों का कोई चिह्न नहीं मिलता जो कि अपने समपित्र्यक में उनके पास थे तथा जिनके विषय में वे सम्भवतः स्वयं अज्ञान थे।

अपूर्ण प्रभाव

कभी कभी हम ऐसा नहीं देखते कि पित्र्यकों का एक सेट स्पष्ट रूप से अपसारी पित्र्यकों पर प्रभावी है। अक्सर ऐसे संकरण का परिणामतः आकार माता-पिता के गुणों से नहीं मिलता। यह अपूर्ण प्रभाव का एक उदाहरण है, फिर भी यह प्रभाव तो है ही।

नीले एंडालूसियन का उदाहरण

इसका उत्तम उदाहरण नीले एंडालूसियन का है। फेन्सियर्स[१] ने (पचास वर्षों तक) यह खोजकर बतलाया है कि उनसे वे कभी भी एक शुद्ध नीली सन्तति का प्रस-

१. Fanciers

वन नहीं करा सके तथा जितना ही उन्होंने प्रयत्न किया उतनी ही सन्तति काली और चित्तीदार सफेद तथा साथ में नीली होती रही। इसका समाधान यही है कि नीले एण्डालूसियन देखने में शृद्ध काले तथा शुद्ध सफेद चित्तीदार के मध्य में हैं तथा जननिक रूप से माता-पिता के काले तथा सफेद दोनों गुण उनमें होते हैं। यह प्रसंकर है तथा इससे शुद्ध सन्तति न होगी। पशुओं में लाल रोन भी नीली एंडालूसियन के समान उदाहरण है तथा श्वेत शार्टहार्न (Shorthorn) और काली गैलोवे (Gallc-way) के संकरण से उत्पन्न नीली रोन भी। उसी प्रकार से भूरे बैल का किसी अन्य रंग की गाय से संकरण होने पर चित्तीदार प्रसंकर की उत्पत्ति होती है जब कि श्वेत तथा मटमैले रंग की श्वेत रंग से उत्पन्न सन्तति कभी कभी मध्य के रंगों की होती है।[1]

एबर्डीन-एंगस तथा हेयरफ़ोर्ड के संकरण में अपूर्ण प्रभाव

यह अपूर्ण प्रभाव साथ में दिये हुए चित्र में भली-भाँति दिखाई पड़ता है जिसमें एबर्डीन-एंगस तथा हेयरफोर्ड के संयोग से उत्पन्न संकरों (जहाँ कि काला रंग एक साधारण प्रभावी रंग की भांति काम करता है) तथा लाल एवं काले शार्टहार्न के संकरों की तुलना की गयी है। रुपहली लोमड़ी तथा लाल लोमड़ी के संकरण से पहली पीढ़ी (F१) में धब्बेदार रंग मिलता है जब कि आगे की पीढ़ियों (F२) में एक लाल, दो धब्बेदार तथा एक रुपहले रंग की उत्पत्ति होती है।[2]

इस स्थान पर विलम्बित प्रभाव भी ध्यान देने योग्य है, जिससे मनुष्य के केशों के रंग के विषय में कुछ बातों का पता चलता है। उत्तरी यूरोप के बच्चों में यह देखा जाता है कि जैसे-जैसे वे बढ़ते जाते हैं उनके स्वर्ण केश भूरे होते जाते हैं। यह वैसी ही चीज है जैसी कुछ पक्षियों में होती है। यह देखा गया है कि यदि एक श्वेत लेगहार्न का पूर्ण काले लेगहार्न के साथ संकरण किया जाय तो प्रथम पीढ़ी (F१) उन पक्षियों की होगी जो कि काले धब्बोंवाले श्वेत रंग के हैं। प्रारम्भ में यह अपूर्ण प्रभाव के समान मालूम पड़ता है परन्तु बात ऐसी नहीं है, क्योंकि प्रथम पंख गिरने पर यह देखा जाता है कि पक्षी पूर्ण रूप से श्वेत हो जाता है।[3]

१. जेम्स विल्सन (James Wilson), पूर्व कथित, पृष्ठ ४०–४१

२. जे० डब्लू० मैकआर्थर (J. W MacArthur,) जेनेटिक्स इन फर फार्मिग, ओ० ए० सी० रेव० (Genetics in Fur Farming O. A. C. Rev.) १९२३, ३५, २६७

३. क्रू (Crew) पूर्व कथित, पृष्ठ ५१—५२

वे सन्ततियाँ जिनमें पित्र्यकों के समान जोड़े मिलते है (अथवा भिन्नयुग्म या बहुयुग्म—'Allelomorph'—जिन्हें अब कभी कभी 'एलिलीज'—

चित्र नं० ९८

नीले एंडालूसियन में अपूर्ण प्रभाव का उदाहरण

माता-पिता की पीढ़ी P१

काली एंडालूसियन　　　　श्वेत एंडालूसियन

बाद की प्रथम पीढ़ी F१

नीली एंडालूसियन　　　　नीली एंडालूसियन

द्वितीय पीढ़ी F२

काली एंडालूसियन	नीली एंडालूसियन	श्वेत एंडालूसियन
↑	↑	↑
अंतःप्रसवन से काली एंडालूसियन का शुद्ध प्रसव।	अंतःप्रसवन से उसी अनुपात में तदगुणी मिलते हैं जैसे कि १ काली, २ नीली तथा १ श्वेत जैसा कि F२ में।	अंतःप्रसवन से श्वेत एंडालूसियन का शुद्ध प्रसव।

(F२ पीढ़ी में हमने सब मुर्गे ही दिखलाये हैं परन्तु ये अनुपात मुर्गियों के लिए भी मुर्गों की भाँति लागू होते हैं।)

'Alleles' भी कहते है) और इसलिए जो नस्ल के अनुरूप शुद्ध प्रसव करती हैं, युग्मैकगुण[१] (समयुग्मिक) कही जाती है, जब कि उनको, जिनके विभिन्न जोड़ों में

१. Homozygous

चित्र नं० ९९

पशुओं में अपूर्ण प्रभाव का उदाहरण

माता पिता की पीढ़ी (P_1)	काले एबर्डीन (Aberdeen) = लाल हेयरफोर्ड (Hareford)	श्वेत शार्टहार्न (Shorthorn) = लाल शार्टहार्न (Shorthorn)
प्रथम पीढ़ी (F_1)	काले एबर्डीन - हेयरफोर्ड = काले एबर्डीन - हेयरफोर्ड	रोन श्वेत × लाल शार्टहार्न = रोन श्वेत × लाल शार्टहार्न
द्वितीय पीढ़ी (F_2)	शुद्ध काले; काले एबर्डीन × हेयरफोर्ड = काले एबर्डीन हेयरफोर्ड; शुद्ध लाल	शुद्धश्वेत; रोन श्वेत × लाल शार्टहार्न = रोन श्वेत लाल शार्टहार्न; शुद्ध लाल
तृतीय पीढ़ी (F_3)	शुद्ध काले; प्रसंकर काले एबर्डीन –हेयरफोर्ड; शुद्ध लाल	शुद्ध श्वेत; प्रसंकर रोन, श्वेत-लाल शार्टहार्न; शुद्ध लाल
	शुद्ध प्रसव (ब्रीड); उसी अनुपात में तद्गुणी जैसा कि F_2 पीढ़ी में; शुद्ध प्रसव (ब्रीड)	शुद्ध प्रसव (ब्रीड); उसी अनुपात में तद्गुणी जैसा कि F_2 पीढ़ी में; शुद्ध प्रसव (ब्रीड)

विभिन्न गुण मिलते हैं, युग्मानेकगुण[1] (विषमयुग्मीय) कहते हैं। इस प्रकार नीली एंडालूसियन में माता-पिता की काली तथा श्वेत सन्ततियाँ युग्मैकगुण हैं। प्रत्येक जोड़े में रंग का निर्णय करनेवाले पित्र्यक एक से है, जैसे कि आकार या बाह्य समरूप में मिलते हैं। परन्तु परिणामित एंडालूसियन प्रसंकर युग्मानेकगुण है क्योंकि पित्र्यक अब मिश्रित हो गये है जिनमें काले तथा श्वेत तत्त्व मिलते हैं। उसी प्रकार से धवलांग युग्मैकगुण वाला होता है जिसमें धवलांग के लिए ही पित्र्यक (जनकबीज, जीन्स) मिलते है। पर यदि किसी मनुष्य का यह वाह्य समरूप (फेनोटाइप) रंगा हुआ हो परन्तु जिसके भिन्नरूप में धवलांग है, जिसमें रंगे हुए पित्र्यकों का प्रभाव हो, वह युग्मानेकगुण होता है।

जब हमने नीले एंडालूसियन के समान प्रसंकर की उत्पत्ति पक्की कर दी हो तो पारस्परिक स्वतन्त्र संयोग से होनेवाली सन्तति न केवल नीले युग्मानेकगुण की ही उत्पत्ति करती है परन्तु काले तथा श्वेत युग्मैकगुण की भी करती है। इसका अर्थ है कि ये सन्ततियाँ अब केवल शुद्ध श्वेत तथा काले बच्चे उत्पन्न करेंगी, मानो वे संकरण से उत्पन्न ही न हुई हों।

इस प्रकार से पित्र्यकों (जीन्स) के दो समूहों में छँट जाने को पृथक्करण कहते हैं। जहाँ पर इनकी संख्या बड़ी होती है, यह पृथक्करण बेतरतीब नहीं बरन् गणितीय आधार पर होता है। इसका प्रदर्शन चित्ररूप में निम्न प्रकार से तथा चित्र नं० १०० द्वारा भी किया जा सकता है जिसमें इसका जननिक गठन सरल तरीके से दिखलाया गया है।

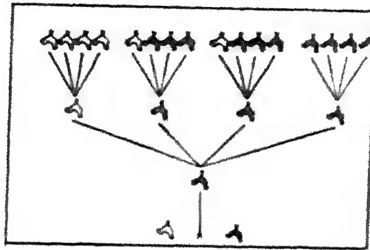
बचे हुए नीले एंडालूसियन दूसरी पीढ़ी में इसी क्रिया को दुहरायेंगे—प्रत्येक पीढ़ी में आधे से अधिक नीले रंगवालों की उत्पत्ति न होगी।

जब कि इस उदाहरण को हम नीले तथा कालों में संकरण करके कम सरल बना देते हैं, तब भी वही पृथक्करण की क्रिया चलती रहती है और एक समान सन्तति के निर्माण का प्रयत्न असफल बना देती है। पर इस बार हमें काले तथा नीले समान अनुपात में मिलते हैं तथा केवल काले ही शुद्ध प्रसव कर सकते हैं। इसके विपरीत यदि हम धब्बेदार श्वेतों का नीलों से संकरण करें तो हमें नीले तथा श्वेत धब्बेवाले बराबर संख्या में मिलते हैं। पूर्ण प्रसंकर पीढ़ी शुद्ध माता-पिता में संकरण करने से ही प्राप्त हो सकती है। प्रसंकरों के आपस में संकरण से या शुद्ध सन्ततियों से संकरण

१. Heterozygous

होने से अवश्य ही एक अथवा अधिक पूर्वज के प्रकारों की (जैसा संकरण हुआ हो, उसी के आधार पर) सन्तति होती है।'

हमारे प्रसंकर के समस्त अनुभव के अनुसार यही पृथक्करण की विधि सदैव कार्य करती है।



चित्र नं० १००
नीला ऐंडालूसियन कुक्कुट

(ए० डी० डर्बीशायर A. D. Derbyshire **से उद्धृत ब्रीडिंग ऐण्ड मेण्डेलियन एक्सपेरीमेण्ट** 'Breeding and Mendelian Experiment')

[श्वेत तथा काले ऐंडालूसियन के संकरण से नीलों की उत्पत्ति होती है परन्तु इनसे शुद्ध नीली संतति की उत्पत्ति नहीं होती।

नीले ऐण्डालूसियन अपूर्ण प्रभावी का अच्छा उदाहरण है। इसका कारण अनेक भिन्नयुग्मों (Allelomarph) **की क्रिया बतलाया गया है।**

समस्त नीले पक्षी फिर उसी अनुपात में काले तथा श्वेत पक्षियों को जन्म देते हैं।]

इस प्रकार जब दो रंगीन खरगोशों में संकरण होता है, जिनमें दोनों ही युग्मानेकगुणी हैं, तब, यतः दोनों ही शुद्ध सन्तति के नहीं हैं तथा अपने में धवलांगता के अपसारी पित्र्यक ले जाते हैं, अतः परिणाम होता है एक युग्मैकगुणी धवलांग तथा तीन रंगीन होते हैं। परन्तु ये अन्तिम तीन युग्मैकगुणी नहीं हैं। वास्तव में केवल एक ऐसा है तथा उसी में ठीक रंग के प्रसवन की क्षमता है, जब कि अन्य युग्मानेकगुणी (विषमयुग्मीय) हैं तथा समय समय पर धवलांग की उत्पत्ति करेंगे। इसलिए इनके साथ धवलांगता अपसारी है क्योंकि तीन में से दो ऐसे देखे जाते है, जैसे वे नहीं हैं, अर्थात् युग्मैकगुणी (समयुग्मिक) या शुद्ध प्रसव तथा धब्बेदार खरगोश।

चित्र नं० १०१

(B + B) = नीले ऐंडालूसियन के प्रारम्भिक काले माता-पिता

(b + b) = नीले ऐडालूसियन के प्रारम्भिक श्वेत माता-पिता

यदि (B+B) तथा (b+b) का संकरण होता है तब प्रथम पीढ़ी में (B+b) मिलता है। यह नीली ऐंडालूसियन हैं जिसमें कि न तो काले न श्वेत प्रभावी गुण मिलते हैं तथा केवल तटस्थ (neutral) नीला रंग दिखलाई पड़ता है। यदि (B+b) बनावट के पक्षी (नीले ऐंडालूसियन) का अन्तः प्रसवन होता है तब निम्नलिखित पित्र्यक संयोजन मिलते हैं।

B पित्र्यक नर से + b पित्र्यक मादा से	b पित्र्यक नर से + B पित्र्यक मादा से	B पित्र्यक नर से + B पित्र्यक मादा से	b पित्र्यक नर से + b पित्र्यक मादा से	माता-पिता के पित्र्यक
B+b	b+B	B+B	b+b	संयोग से यह जननिक बनावट मिलती है।
२५%	२५%	२५% यानें २५%	२५% यानें २५%	समस्त सन्तति का प्रतिशत
५०% नीले ऐंडालूसियन		काले ऐडालूसियन	श्वेत ऐंडालूसियन	

एक दशा जो कि प्रसवन में समान है (जैसा कि देखा जा चुका होगा) यह है कि संकरण के प्रथम जनन में पूर्ण अथवा अपूर्ण रूप से प्रभावी गुण का प्राधान्य होता है। यह नीले ऐण्डालूसियन में देखा जा चुका है जहाँ अपसारी धब्बेदार श्वेत पक्षी प्रथम जनन में पूर्ण रूप से गायब हो जाता है। परन्तु एक सम-रंग की अपेक्षा शुद्ध प्रभावी के लिए उसी जनन में अपसारी गुणों को नष्ट करना अधिक सरल है जैसा कि एबर्डीन ऐंगस तथा हेयरफोर्ड के संकरण में। तिस पर भी वे जब अपनी बारी में अंतःप्रसवन करते हैं तब हम मेण्डल के नियम को ३ काले तथा १ लाल पशु के रूप में कार्यान्वित होते पाते हैं। परन्तु इन तीन काले पशुओं में केवल एक की उत्पत्ति शुद्ध है तथा अन्य दो प्रसंकर हैं[1]।

खरगोशों में यह देखा गया है कि छोटे बालोंवाले बेल्जियन खरगोश तथा लम्बे बालों वाले ऐंगोरा खरगोश के संकरण से सब छोटे बालों के खरगोशों की उत्पत्ति होती है। तिस पर भी जब इन छोटे बालोंवाले प्रसंकरों का ऐंगोरा जाति से संग कराया जाता है तब लम्बे तथा छोटे बालोंवाले ऐंगोरा की उत्पत्ति ठीक मेण्डल के नियमानुरूप अनुपात में होती है।[2] इसके आगे दूसरी पीढ़ी में प्रसंकर ऐंगोरा का जब शुद्ध ऐंगोरा से संग कराया जाता है तो शुद्ध उत्पत्ति होती है[3]। यह परिणाम जातियों सम्बन्धी हमारे अध्ययन के लिए कुछ महत्त्व का है। कारण यह है कि हम चाहे खरगोश अथवा मनुष्यों[4] का अध्ययन करें दोनों में प्रक्रिया समान है, हालाँ कि मनुष्य के अध्ययन में वह अधिक जटिल हो जाती है। यदि हम श्वेतता के बदले स्वर्ण केश (blondness) और लम्बे कपाल होने के गुण को लें तथा उन्हें अपसारी गुण मानें, जैसा कि अनेक

१. जेम्स विल्सन (James Wilson), दि ब्रीडिंग एण्ड फीडिंग आफ़ फार्म स्टाक (The Breeding and Feeding of Farm Stock), लन्दन, १९२१, पृष्ठ ३६

२. मेण्डल के अनुसार प्रत्येक की अपेक्षित संख्या १९ है।

३. सी० सी० हर्स्ट (C. C. Hurst), एक्सपेरीमेन्ट्स इन जेनेटिक्स (Experiments in Genetics), कैम्ब्रिज, १९२५, पृष्ठ १६९–१७१

४. युजेन फिशर Eugen Fisher, ने अपने Die Rehobother Bastards und das Bastardierungs problem beim Menschen' में १९१३ के लगभग दिखलाया है कि मेण्डल के सिद्धान्तों को होटेनटाट (Hottentot) तथा यूरोप निवासियों के संकरण से देखा जा सकता है।

दशाओं मे वे है, फिर दो प्रकार की जनसंख्या, एक तो श्वेत वर्ण तथा लम्बे कपाल वाली तथा दूसरी भूरे रंग तथा छोटे कपाल वाली, का संकरण करें तो इसका भी ठीक उसी प्रकार का परिणाम होगा। हालाँ कि मनुष्य की जननिक बनावट पशुओ की अपेक्षा अधिक जटिल होती है और ये गुण निःसन्देह ही पित्र्यको के एक जोड़े से अधिक द्वारा प्रभावित होते है। इससे अधिक विभिन्नता होगी[२] तथा परिणामतः प्रत्येक का अनुपात भी प्रभावित होगा।[१]

वंशानुगति को प्रभावित करनेवाले कारक इतने सरल भी नही है जितने कि प्रभावी तथा अपसारी के विचार से प्रतीत होते है। और न यही निश्चित है कि जहाँ पर हमने अपसारी शब्द का प्रयोग किया है, वहाँ अनुपस्थिति के बदले कोई अन्य कारक सम्बद्ध है।

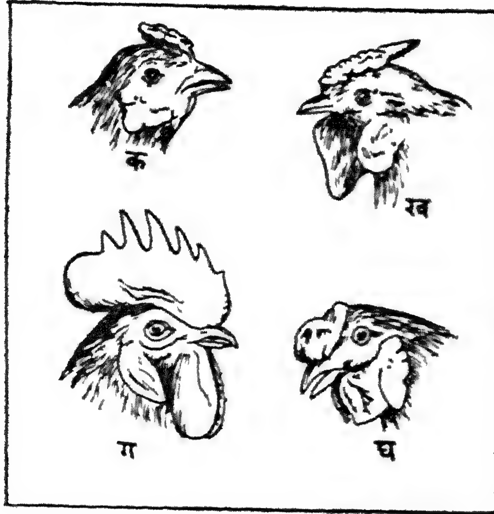
यदि हम शुद्ध प्रसव के रोज़ कोम (जैसे कि एक ब्लैक हैम्बर्ग, व्हाइट डार्किंग अथवा व्यानडोट (Wyandotte) का शुद्ध प्रसव सिंगिल कोम (लेगहार्न, माइनार्का अथवा कोचीन), से संकरण करें, तब सम्पूर्ण सन्तति रोज कोम की होगी। इसमें रोज प्रभावी रूप में मिलता है। अगली पीढ़ी में यदि हम इनमें अन्तःप्रसवन करें तो शुद्ध रोज़, अशुद्ध रोज तथा शुद्ध सिंगल का यह अनुपात मिलेगा—१,२,१। यह वही है जैसी कि हमें आशा करनी चाहिए।

उसी प्रकार यदि हम शुद्ध प्रसव के 'पी' कोम पक्षी (इंडियन गेम तथा ब्रह्मा) का सिगिल कोम से संकरण करें, तब भी ठीक वही क्रिया होती है। इसलिए रोज़ तथा पी-कोम दोनों सिगिल कोम की तुलना में प्रभावी है। परन्तु रोज़ तथा पी-कोम का संकरण होने से क्या होता है? यह संपरीक्षण १९०५ तथा १९०६[२] में बेटसन तथा पुनेट ने किया, जिसके आश्चर्यजनक परिणाम निकले। इस संकरण से वालनट (Walnut) कोम की उत्पत्ति हुई जैसे कि मलाया तथा ओरलोफ़ में मिलते है। इन सब के अन्तःप्रसवन से यह देखा गया कि अगली पीढ़ी में ९:३:३:१ के अनुपात में वालनट, रोज़, पीज़ तथा सिगिल मिलते है। ये अनुपात मेण्डल के सिद्धान्तों पर भली भाँति

१. हम मनुष्य के जननिक से सम्बन्धित वास्तविक गुणों का वर्णन आगे कुछ विस्तार से करेंगे।

२. डब्लू० बेटसन (W. Bateson) तथा आर० सी० पुनेट (R. C. Punnett) "ए सजेशन एज टु दि नेचर आफ़ वालनटकोम इन फाउल्स" Proc. Comb Phil soc, १३, १६५ पृष्ठ

समझे जा सकते हैं परन्तु सिंगिल कोम का मिलना अनपेक्षित था जो कि माता-पिता के वर्ग में नहीं मिलता। इस स्थिति को समझने के लिए अनुपस्थिति के सिद्धान्त की कल्पना हुई। सभी कोम (चोटी या शिखा) मौलिक रूप से सिंगिल हैं, रोज़ चोटी एक सिंगिल है जो कि रोज़ के कारक की क्रिया के द्वारा रोज़ में परिवर्तित हो गयी।



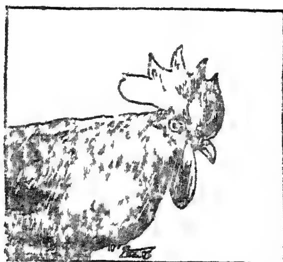
चित्र नं० १०२

(आर० सी० पुनेट R. C. Punett के मेण्डलिज्म से उद्धृत पक्षियों की चोटी के प्रकारों की चित्रित रूपरेखा)

- क **पी चोटी** (Pea Comb)
- ख **रोज़ चोटी** (Rose Comb)
- ग **सिंगिल चोटी** (Single Comb)
- घ **वालनट चोटी** (Walnut Comb)

कहने का तात्पर्य यह है कि रोज़ कोम का कारक किसी पक्षी की बनावट में मिले अथवा न मिले, यदि यह उपस्थित है तो पक्षी में रोज़ चोटी के गुण प्रदर्शित होते हैं। यदि यह नहीं है तब सिंगिल कोम के गुण देख पड़ते हैं। उसी प्रकार से मटर की (पी) चोटी में भी होता है। जब किसी पक्षी की बनावट के कारकों में R (Rose comb) तथा P (Pea Comb) एक साथ उपस्थित रहते हैं तब उस पक्षी में वालनट के समान गुण

मिलते है तथा जब इनमें से कोई भी उपस्थित न हो तो शिखा (कोम) सिंगिल होती है। इस उपस्थिति तथा अनुपस्थिति के विचार के अनुसार (जैसा कि सबसे पहले कोरेंस ने बतलाया और बेटसन तथा अन्य लोगों ने बाद में विस्तार से निश्चित किया) विभिन्न गुणो के एक जोडे के दोनों हिस्से दो स्पष्ट कारकों पर आधारित नही बल्कि एक ही कारक की दो सम्भावित दशाओं पर आधारित है—यह है समपित्र्यक[1] में उसकी उपस्थिति तथा अनुपस्थिति।





चित्र नं० १०३

कुक्कुटों की चोटी के प्रकार

(टी० डब्लू० स्टर्जेस T. W. Sturgess) द्वारा ए० डी० डर्बीशायर के ब्रीडिंग ऐण्ड मेण्डेलियन डिस्कवरी से उद्धृत)

[१. ब्लैक लेगहार्न (Black Leghorn) कुक्कुट के सिंगल कोम।
२. पेट्रिज व्यानडोट (Patridge Wyandotte) के रोज कोम]

जननिक सूत्र में इसे व्यक्त करने का तात्पर्य यह है कि युग्मैकगुण रोज तथा पी के संकरण के पश्चात् उसका प्रदर्शन RRPP × rrPP से होता है। जिस पीढी की उत्पत्ति होती है (F_1) वह Rr PP होगी। बड़े अक्षर **उपस्थित** कारक तथा छोटे अक्षर **अनुपस्थित** कारक को प्रदर्शित करते है, जैसा कि प्रभावी तथा अपसारी गुणों के उदाहरण मे होता है।

१. एफ़० ए० क्रू (F. A. Crew), M. D., D. Sc., F. R. S. E., **एनीमल जेनेटिक्स १९२५, पृष्ठ ४५–४६**

इस पीढ़ी के अन्तःप्रसवन से F_2 पीढ़ी निम्नलिखित प्रकार से उत्पन्न होती है।

नर

		Rp	Rp	rp	rp
मादा	RP	RRPP	RRPp	RrPP	RrPp
	Rp	RRPp	RRpp	RrPp	Rrpp
	rP	RrPP	RrPp	rrPP	rrPp
	rp	RrPp	Rrpp	rrPp	rrpp

इनको संक्षिप्त करने से हम निम्नलिखित परिणाम पाते हैं—

बाह्य समरूप में हमारे पास वालनट (Walnut) के ९ रूप हैं (R P) जो कि निम्न प्रकार से हैं—

समपित्र्यक (Genotype) R R P P—संख्या में १
समपित्र्यक R R P p —संख्या में २
समपित्र्यक R r P P —संख्या में २
समपित्र्यक R r P p —संख्या में ४, **योग** ९

बाह्य समरूप में हमारे पास रोज (Rose) के ३ रूप (R p) हैं जो कि निम्न प्रकार से हैं—

समपित्र्यक R R p p —संख्या में १
समपित्र्यक R r p p —संख्या में २, **योग** ३

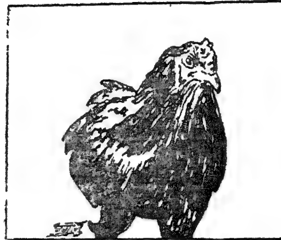
बाह्य समरूप में हमारे पास पी (Pea) के ३ रूप हैं (r P) जो कि निम्न प्रकार से हैं—

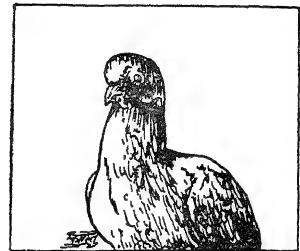
समपित्र्यक r r P P —संख्या में १
समपित्र्यक r r P p —संख्या में २, **योग** ३

बाह्य समरूप में हमारे पास सिंगिल (Single) रूप (r p) का एक समपित्र्यक rrpp है।

बेटसन तथा पुनेट ने सन् १९०८ में श्वेत डार्किंग (Dorking) तथा श्वेत सिल्कीज (Silkies) में संकरण किया। इसका परिणाम यह हुआ कि प्रथम पीढ़ी में समस्त पक्षी रंगीन हुए। जब परिणामित प्रकारों से बच्चे प्रसूत कराये गये तो ९ रंगीन पक्षी तथा ७ श्वेत हुए। इसमें भी ठीक वही घटना घटी जैसी कि कोम (चोटी)

के अध्ययन में हुई, जहाँ कि उपस्थिति तथा अनुपस्थिति गुण कार्य कर रहे थे, सिवाय इसके कि समस्त श्वेत प्रकार एक से है तथा उनमें ३:३:१ का अनुपात न होकर कुल ७ ही निकले। ऐसा कहा जाता है कि इनमें रंग रंग के कारकों में पारस्परिक क्रिया का परिणाम है जो कि यदि साथ ही प्रकट होते तो रंगीन प्रकार होते, नहीं तो वे सफ़ेद ही रहते।





चित्र नं० १०४

कुक्कुटों की चोटी के प्रकार

(टी० डब्लू० स्टर्जेस (T. W. Sturgess) द्वारा ए० डी० डर्बीशायर के ब्रीडिंग एण्ड मेण्डेलियन डिस्कवरी से उद्धृत)

१. सुमात्रा गेम के पी कोम।

२. मलाया पक्षी के वालनट कोम।

इसलिए यह स्पष्ट है कि श्वेत डार्किंग तथा श्वेत सिल्कीज़ का श्वेत रंग, रंग का अपसारी है तथा यह इसलिए है कि उनमें रंग के उत्पादनवाला कारक अनुपस्थित है। जब कि श्वेत लेगहार्न तथा श्वेत डार्किंग के बीच संपरीक्षण किये गये, यह देखा गया कि बिलकुल वही क्रिया नहीं हुई जैसा कि श्वेत सिल्कीज़ के होने से होती। यह स्पष्ट हो गया कि कोई निरोधक कारक भी सम्मिलित था।

मान लिया जाय कि C रंग के कारक का प्रदर्शक तथा I रंग के निरोधक का प्रदर्शक है, तब CCII बनावट का एक पक्षी पूर्ण श्वेत परन्तु प्रभावी होगा, जब कि कोई दूसरा cc ii बनावट का भी बिलकुल श्वेत परन्तु अपसारी होगा। CC ii सूत्र निःसन्देह रंगीन होगा तथा CC Ii भी कुछ सीमा तक श्वेत होगा।

इसलिए श्वेत लेगहार्न तथा श्वेत डार्किंग के संकरण से प्रथम पीढ़ी (F^1) Cc-Ii की है जो कि कुछ अंश तक रंगीन है (वास्तव में समस्त श्वेत पंखों में कुछ रंगीन

धब्बे हैं)। इस पीढ़ी का अन्तः प्रसवन CI, Ci, cI, ci चार पित्र्यकों के आधार पर निम्न प्रकार से होगा—

नर

		CI	Ci	cI	ci
मादा	CI	CCII	CCIi	CcII	CcIi
	Ci	CCIi	CCii	CcIi	Ccii
	cI	CcII	CcIi	ccII	ccIi
	ci	CcIi	Ccii	ccIi	ccii

किसी युग्म (जाइगोट) (याने पित्र्यकों के संयोजन) में यदि आधिकारिक या मुख्य कारक हो तो वह एक श्वेत पक्षी के रूप में उत्पन्न होता है। यदि दोनों पित्र्यकों में यह मिलता है तो पक्षी बिलकुल श्वेत होता है चाहे CC रंगकारक भी उपस्थित हों। परन्तु एक I से एक श्वेत पक्षी की उत्पत्ति होती है जिसमें रंग के धब्बे होते हैं तथा उन सब संयोजनों से जिनमें C हो पर I नहीं, रंगीन पक्षियों की उत्पत्ति होती है।

इससे स्पष्ट है कि अपसारी श्वेत पक्षी जिसकी बनावट cc ii (अर्थात् जिसमें रंग तथा रंग-निरोधक कारक की कमी है) बिलकुल श्वेत पक्षी है, जब कि CC II कारकोंवाला बिलकुल श्वेत दिखाई देनेवाला तथा प्रभावी पक्षी वास्तव में रंगीन है, जिसमें रंग के प्रदर्शन को रोकनेवाला निरोधक कारक है।

इस संपरीक्षण मे यह स्थापित होता है कि कोई गुण एक जाति में प्रभावी तथा अन्य में अपसारी होता है। परिणामतः जब जाति की बनावट के इन मूल सिद्धान्तों को हम मनुष्य पर लागू करते हैं तब इन सब बातों को ध्यान में रखना चाहिए। ऐसा विश्वास करने के लिए उचित कारण है कि मेडिटेरेनियन तथा ऐटलाण्टिक जातियों

के काले केश नार्डिक के स्वर्णकेशों पर प्रभावी है परन्तु हमें अभी तक पता नहीं कि उनकी स्थिति में पारस्परिक क्या सम्बन्ध है। साथ ही इन जातियों के काले केश और मंगोलायड तथा मेलेनायड के केशों के लिए भी यह उतना ही सत्य है। फिर जैसा कि हम आगे देखेंगे, जब कि पूर्वी यूरोप में चौड़े कपालवाले लम्बे कपालवालों की अपेक्षा प्रभावी हैं, उत्तर-पूर्वी यूरोप के लैप्स में मिलनेवाले कुछ चौड़े आकार के कपालों की अपेक्षा लम्बे कपाल प्रभावी है। वास्तव में क्या यह ठीक उसी प्रकार के तत्त्वों के कारण है जिनका वर्णन हमने अभी किया है, यह देखना शेष है। फिर भी तथ्य यही है कि पशुओं की इस प्रकार की व्याख्या (चाहे हमारे ज्ञान की वृद्धि के साथ बाद में उसमें भी सुधार करना पड़े) मानव जातियों में वंशानुगत जातीय गुणों के साधारण सिद्धान्तों के समझने में सहायक है।

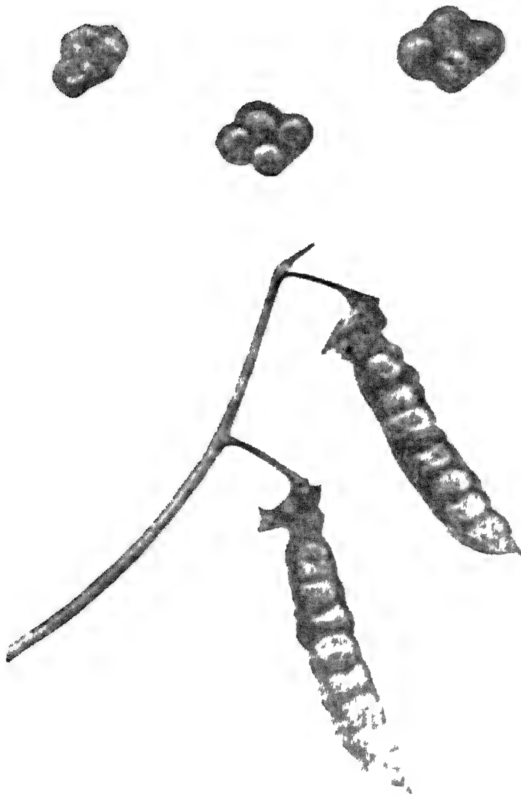
हम यह देख चुके हैं कि संकरण होने पर नियमित रूप से एक सन्तति के समस्त गुण दूसरे के सम्बन्ध में एक एकक की भाँति कार्य नहीं करते। दूसरे शब्दों में प्रत्येक गुण को नियन्त्रित करनेवाले पित्र्यक अन्य गुणों को नियन्त्रित करनेवाले पित्र्यकों से भिन्न कार्य करते है। वे सब मेण्डल के उन्हीं नियमों का पालन करते हैं।

मेण्डल को द्विसंकर[1] में इस क्रिया का पता चला जब उसने बाग के पीले गोल आकार के एक मटर का एक हरे सिकुड़े मटर से संकरण किया। जो मटर उत्पन्न हुए वे पीले गोल थे क्योंकि पीला हरे पर तथा गोल सिकुड़े पर प्रभावी था। परन्तु दूसरी पीढ़ी में इन द्विसंकर आकारवालों में अन्तःप्रसवन करने से वे सामूहिक रूप से अपने पूर्वजों के आकार में नहीं बदल जाते। संयोजन (गोल-पीले तथा हरे-सिकुड़े) टूटे जाते है तथा गुणों का प्रत्येक समूह (पीला, गोल, हरा तथा सिकुड़ा) स्वतन्त्र हो जाता है, कारण यह कि प्रत्येक विभिन्न पित्र्यक की बनावट द्वारा निर्मित है।

फिर भी बनावट में वंशानुगत तत्त्वों का स्वतन्त्र रूप से व्यवहार करना प्रत्येक उदाहरण में पूर्ण रूप से सत्य नहीं है। बेटसन तथा पुनेट ने जन्यु या जननकोश के जोड़ अथवा ग्रथन की खोज की, जिसका वर्णन अगले अध्याय में किया जायगा

१. एकसंकर (Monohybrid) वह संकरण है जिसमें केवल एक ही गुण से सम्बन्ध है जैसे कि नीले एंडालूसियन में काला तथा श्वेत गुण। द्विसंकर (Dihybrid) वह है जहाँ दो गुण (इस उदाहरण में जैसे कि रंग तथा आकार) से सम्बन्ध रहता है तथा त्रिसंकर (Trihybrid) वह है जहाँ तीन गुणों का सम्बन्ध है, जैसा कि गिनी सुअर में, जहाँ कि छोटे कोट, चिकने कोट तथा रंग से सम्बन्ध है।

तथा यह दिखलाया जायगा कि ग्रथित गुण एक ही पित्र्यसूत्र में नियन्त्रित रहते हैं। जब कि बैंगनी फूल तथा पराग के लम्बे कणों के तत्त्ववाले मीठे मटर का लाल



चित्र नं० १०५

(ए० डी० डर्बीशायर (A. D. Derbyshire) के ब्रीडिंग एण्ड मेण्डेलियन एक्सपेरीमेण्ट्स से उद्धृत)

गोल तथा सिकुड़े मटर

[फलियों में इनके विभिन्न अनुपातों को देखकर मेण्डल ने उनके साथ सम्परीक्षण किया तथा उससे उनको जननिक विज्ञान के उस नियम की स्थापना में सहायता मिली जिसको पित्रागति सिद्धान्त (Mendelian law) कहते हैं, जिसने जीव-विज्ञान सम्बन्धी ज्ञान में क्रान्ति उत्पन्न कर दी तथा वंशानुगति के प्रभाव की सत्यता प्रमाणित कर दी।]

फूल तथा गोल कणवाले मटर से संकरण किया जाय तब दोनों कारक द्विसंकर में ग्रथित रहते हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि गुण, समूहों के रूप में पारेषित किये जा सकते हैं, क्योंकि समूह का प्रत्येक सदस्य अन्य से ग्रथित है।



चित्र नं० १०६

(ए० डी० डर्बीशायर (A. D. Derbyshire) के ब्रीडिंग एण्ड मेण्डेलियन एक्सपेरीमेण्ट्स से उद्धृत)

सिकुड़े पीले तथा हरे गोल मटरों के संकरण का परिणाम

[पैत्रिक सन्तति—ऊपर बाईं ओर—पीले सिकुड़े माता-पिता
ऊपर दाहिनी ओर—हरे गोल माता-पिता

F_1 पीढ़ी —मध्य के पाँच मटर प्रथम प्रसंकर पीढ़ी के हैं

F_2 पीढ़ी —फली के अन्दर के मटर दूसरी प्रसंकर पीढ़ी के हैं जो कि सिकुड़े-पीले, पीले-गोल, हरे-गोल तथा हरे-सिकुड़े मटर हैं।]

फिर यही ऐसा प्रभाव है, जो किन्हीं परिस्थितियों में कार्यान्वित होने पर जातिगत विभिन्न गुणों को एक दूसरे से पृथक् रखता है।[1]

१. इसका और वर्णन आगे किया जायगा

अब फिर द्विसंकर की ओर ध्यान दें तो इसकी क्रिया मेण्डल के मटरसम्बन्धी सम्परीक्षण में, जिसका वर्णन अभी किया गया है, वंशानुगति के निम्नलिखित विस्तृत चित्रण में भली-भाँति देखी जा सकती है। हम मान लें कि YY= पीले के पित्र्यक तथा GG= हरे के पित्र्यक हैं और RR= गोल के पित्र्यक तथा WW= सिकुड़े के पित्र्यक हैं। पीले गोल (=YY RR) तथा हरे सिकुड़े (=GG WW) प्रारम्भ के माता-पिता हैं।

इनमें संकरण करने पर प्रथम पीढ़ी में सब बाह्य समरूप (Phenotype) पीले गोल मटर निकलते हैं, जिससे यदि हमें ठीक पता नहीं होता तो हम परिणाम निकालते कि इसकी YY RR बनावट है। पर वास्तव में उनका समपित्र्यक (जीनोटाइप) अथवा भिन्नरूप (आइडिओटाइप), जैसा कि हम जानते हैं, YG RW हैं क्योंकि उनकी क्रिया से स्पष्ट है कि पीले तथा गोल प्रभावी तथा हरे सिकुड़े अपसारी हैं।

दूसरी पीढ़ी में अनेक प्रकारों की उत्पत्ति होगी। इनमें से एक पीले तथा गोल समरूप होंगे तथा चार समपित्र्यक होंगे—जो ये हैं, YY RR, YY WR, YG RR तथा YG RW। परन्तु पीले तथा गोल के प्रभावी होने के कारण ये गुण बाह्य समरूप के साथ भी दीखते हैं। उसी पीढ़ी में एक दूसरे बाह्य समरूप की उत्पत्ति होगी जो पीले तथा सिकुड़े होंगे। समपित्र्यक में यह YY WW तथा YG WW से प्रदर्शित होंगे। यह देखा जायगा कि सिकुड़ेपन की दृष्टि से मटर का यह प्रकार युग्मैक-गुणी (होमोज़ाइगस, समयुग्मिक) है, परन्तु रंग की दृष्टि से केवल एक भाग ऐसा है, क्योंकि हरे रंग के लिए आधे में अपसारी पित्र्यक मिलते हैं। इसी पीढ़ी के तीसरे प्रकार में हरे तथा गोल समरूप होते हैं, परन्तु फिर वास्तव में वे GG RR तथा GG RW समपित्र्यक में मिलते हैं। यहाँ पर रंग का पित्र्यक युग्मैक-गुणी है तथा आधे में गोलपन युग्मानेकगुण (विषमयुग्मीय) है। अन्त में चौथे प्रकार की उत्पत्ति में वह गोल और सिकुड़े होंगे तथा समपित्र्यक में वह भी GG WW याने युग्मैकगुणी होगा। यह हरे तथा सिकुड़े हुए अपसारी पित्र्यकों से बनता है, अतः जब तक वह अपने समान का ठीक प्रसव न कर सके इसकी उत्पत्ति नहीं हो सकती।

इन प्रकारों की उत्पत्ति का वास्तविक अनुपात इस प्रकार होगा—

बाह्य समरूप में ९/१६ **पीले, गोल** होंगे (परन्तु १/१६ ही युग्मैकगुणी होंगे), ३/१६ **पीले** तथा **सिकुड़े** होंगे (परन्तु केवल १/१६ युग्मैकगुणी होंगे), दूसरे ३/१६ बाह्य समरूप में गोल तथा हरे होंगे (परन्तु केवल १/१६ फिर एक बार युग्मैकगुणी होंगे) तथा अन्त में १/१६ बाह्य समरूप तथा सम पित्र्यक में हरे तथा सिकुड़े होंगे।

यही नियम प्रत्येक प्रसवन के लिए सत्य है तथा केवल पौधों तक ही सीमित नहीं है। इसलिए यदि एबर्डीन-ऐंगस (Aberdeen Angus) का जो कि काले तथा बिना सींग के होते हैं, हेयरफोर्ड (Hareford) से संकरण किया जाय जो कि लाल तथा सींगवाले हैं, तब उनकी सन्तति काली तथा बिना सींग के होगी। परन्तु बाद वाली पीढ़ी में अपसारी लाल रंग तथा सींग पुनः प्रकट हो जाते हैं, तब हमें निम्न अनुपात मिलता है—

काले तथा सींग-रहित ९;
काले तथा सींग वाले ३;
लाल तथा सींग-रहित ३;
लाल तथा सींग वाले १.

इनमें से काले तथा सींग-रहित के ९ में से १ शुद्ध प्रसव करता है, काले तथा सींग वाले ३ में १, लाल तथा सींग-रहित के ३ में १ तथा अपसारी लाल तथा सींगवाले १ में १ शुद्ध प्रसव करता है।[1]

यदि हम एक काले हैम्बर्ग का (जिसके रोज़ चोटी है) श्वेत लेगहार्न (ज़िसके सिंगिल चोटी है) से संकरण करें तब परिणाम होगा[2]——९ श्वेत रोज़ चोटी (कोम), ३ श्वेत सिंगिल चोटी (कोम), ३ काले रोज़ चोटी तथा १ काला सिंगिल चोटी (कोम)।

वेलमैन[3] (Wellman) ने भी जब एक बेसेट हाउण्ड कुत्ते का फाक्स टेरियर कुतिया से संकरण किया, तब उन्हीं सिद्धान्तों को क्रियान्वित होते पाया। प्रथम जनन में ५ काले तथा धब्बेदार (छाती तथा टाँगों में श्वेत चित्तियाँ) तथा ढाँचे में लगभग बेसेट के समान मिले। इसलिए बेसेट का काला तथा धब्बेदार ढाँचा फाक्स टेरियर

१. **जेम्स विल्सन** (James Wilson) **पूर्व कथित, पृष्ठ ३७-३८**

२. **एफ़० ए० ई० क्रू** (F. A. E. Crew, M. D., D. Sc., F. R. S. E., **एनिमल जेनेटिक्स** (Animal Genetics) **१९२५, पृष्ठ ३०**

३. **ओ० वेलमैन** (O. Wellman) **के 'एक्सपेरिमेन्ट्स विद डाग्ज़ इन कनेक्शन विद दि मेन्डेलियन लाज़ आफ़ हेरिडिटी', नेशनल साइन्स बुलेटिन, १९१६, ४८, पृष्ठ ३१५**

के गुण की अपेक्षा प्रभावी है। इनके प्रसवन से दूसरे जनन में ३२ बच्चे उत्पन्न हुए जिनमें से २१ जीवित रहे, बचनेवालों में—

१८ काले तथा धब्बेदार बेसेट से मिलते जुलते,
४ चित्तीदार बेसेट के आकार के,
३ काले तथा धब्बेदार, टेरियर गठन के,
२ धब्बेदार टेरियर रंग के, टेरियर शरीर के थे।

यह मेण्डल के नियम के अनुपात ९:३:३:१ से काफ़ी मिलना जुलना है जो कि निःसन्देह ही अधिक संख्या होने पर ठीक देखा जाता।

यह उदाहरण जातियों-सम्बन्धी अध्ययन की दृष्टि से काफी लाभदायक है। यहाँ पर मिश्रित मटरों की संख्या है जो कि मनुष्यसमूह की विभिन्नताओं से मिलती जुलती है। इस जनसंख्या में एक छोर में ९/१६ वाँ भाग मिलता है जो शुद्ध जातीय प्रकार से सम्बन्धित मालूम पड़ता है, हालाँ कि वास्तव में उस संख्या का १/४ भाग ही शुद्ध सन्तति उत्पन्न करता है। दूसरी ओर केवल १/१६ वाँ भाग है। वास्तव में इसका प्रसव शुद्ध तथा शुद्ध सन्तति का होना है। इनके बीच में एक या अन्य से मिलते जुलते कई विभिन्न गुण-वाले मिलते हैं। यदि जाति की प्रक्रिया के विषय में हमें कुछ नहीं मालूम होता तब हम इस परिणाम पर पहुँचते कि प्रारम्भिक जातीय तत्त्व, जिनसे मिश्रित जनसंख्या का निर्माण हुआ है, ९:१ के अनुपात में रहे होंगे। यह हमारी भूल होती, क्योंकि जनसंख्या का प्रसव दोनों सन्ततियों की बराबर संख्या से हुआ है। यह होता इस प्रकार है कि एक सन्तति के गुण अन्य की अपेक्षा अपसारी होते है तथा बाह्य समरूप से एकांगी स्थिति का ही पता चलता है।

जैसा कि हमने पहले बतलाया है, जहाँ पर तीन गुणों का सम्बन्ध है उसे त्रिसंकर-कहते हैं। इस उदाहरण में प्रथम जनन में (F¹) प्रत्येक व्यक्ति के तीन प्रभावी गुण होंगे, जब कि उनके समपित्र्यक में ६ कारक सम्बद्ध होंगे। दूसरे जनन में F², २७: ९: ९: ९: ३: ३: ३: १ का अनुपात होगा।

केसेल के गिनी पिग के संपरीक्षण[1] द्वारा साथ में दी गयी तालिका नं० २ में त्रिसंकर को चित्रित किया गया है। इन पितृवंशों में से एक के कोट में तीन गुण है—छोटा,

१. डब्लू० ई० केसेल (W. E. Castle), साइज इन गिनी पिग क्रासेज (Size in Guinea Pig crosses), प्रोसीडिंग आफ़ नेचुरल, ऐकेडेमी आफ़ साइन्सेज १९१६, २, पृष्ठ २५२

चिकना तथा रंगीन। दूसरे में ये तीन हैं—लम्बा, पाटलक तथा श्वेत। प्रथम

तालिका नं० २

छोटे, चिकने तथा रंगीन गिनी पिग (Guinea Pigs) **और लम्बे, पाटलक तथा श्वेत के संकरण से उत्पन्न बाह्य समरूप तथा समपित्र्यक के संयोजन को प्रदर्शित करनेवाली तालिका—**

S S छोटे कोट (Coat) तथा s s अपसारी लम्बे कोट

C C रंगीन तथा c c अपसारी श्वेत (Albino)

R R पाटलक (Rosetted), गुलाबी रंगरंजित तथा r r अपसारी चिकने कोट

बाह्य समरूप	समपित्र्य	संख्या		
S C R	१. S S C C R R	१		*शुद्धप्रसवन
छोटे कोट वाला	२. S S C C R r	२		युग्मानेकगुणी
रंगीन	३. S S C c R R	२		,,
पाटलक	४. S S C c R r	४		,,
	५. S s C C R R	२		,,
	६. S s CC Rr	४		,,
	७. Ss Cc RR	४		,,
	८. Ss Cc Rr	८	२७	,,
S C r	९. SS CC rr	१		*शुद्धप्रसवन
छोटे कोटवाला	१०. SS Cc rr	२		युग्मानेकगुणी
रंगीन	११. Ss CC rr	२		,,
चिकना	१२. Ss Cc rr	४	९	,,
S c R	१३. SSccRR	१		*शुद्धप्रसवन
छोटे कोटवाला	१४. SSccRr	२		युग्मानेकगुणी
श्वेत (Albino)	१५. SsccRR	२		,,
पाटलक (Rosetted)	१६. SsccRr	४	९	,,

जनन में (F^1) छोटी, पाटलक तथा रंगीन उत्पत्ति हुई। जब इनका अन्तःप्रसवन हुआ तब दूसरे जनन (F^2) में आठ बाह्य समरूप मिले। ये निम्न प्रकार से थे।

१. छोटे, रंगीन, पाटलक (गुलाब-रंग-रंजित)
२. छोटे रंगीन, चिकने।
३. छोटे, श्वेत, पालटक।
४. लम्बे, रंगीन, पालटक।
५. छोटे, श्वेत, चिकने।
६. लम्बे, रंगीन, चिकने।
७. लम्बे, श्वेत, पालटक।
८. लम्बे, श्वेत, चिकने।

(तालिका नं० २ का शेषांक)

s C R				
लम्बे कोटवाला	१७. ssCCRR	१		*शुद्धप्रसवन
रंगीन	१८. ssCcRr	२		युग्मानेक गुणी
पाटलक	१९. ssCcRR	२		
	२०. ssCcRr	४	९	,,
Scr				
छोटे कोटवाला	२१. SSccrr	१		*शुद्धप्रसवन
श्वेत	२२. Ssccrr	२	३	युग्मानेक गुणी
चिकना				
ScR				
लम्बे कोटवाला	२३. ssCCrr	१		*शुद्धप्रसवन
रंगीन	२४. ssCcrr	२	३	युग्मानेक गुणी
चिकना				
scR				
लम्बे कोटवाला	२५. ssccRR	१		*शुद्धप्रसवन
धवलांग	२६. ssccRr	२	३	युग्मानेक गुणी
पाटलक				
scr				
लम्बे कोटवाला	२७. ssccrr	१	१	*शुद्धप्रसवन
धवलांग				
चिकना				

योग ६४

इन आठ बाह्य समरूपो (फेनोटाइप) में २७ समपित्र्यक (जेनोटाइप) थे। यह साथ दी हुई तालिका से स्पष्ट हो जाता है। यह देखा जायगा कि प्रत्येक के केवल ८ प्रकार है (ये सितारे के चिह्न से चिह्नित है) जो कि अन्तःप्रसवन से उसी समरूप का प्रसवन करेंगे जिनसे वे सम्बन्धित है। शेष इसके विपरीत युग्मानेकगुणी है जो कि परिवर्त्तित होकर प्रारम्भिक गुणों के विभिन्न संयोजन व्यक्त करते है।[1]

ऐसे उदाहरणो का सम्बन्ध केवल एक, दो अथवा तीन पित्र्यकों के सेट से रहता है। परन्तु मनुष्य तथा पशुओ में हमें कही अधिक मिलते है। इसलिए प्रारम्भिक दो सन्ततियो (प्रवर्गो, स्टेन्स) से अगणित भेदो का निर्माण होता है; हालाँकि उनमें शुद्ध प्रसव करनेवालो का अनुपात कम होता है। हक्सले तथा हेडन[2] बतलाते है कि यदि पुनः सयोजन में एक पित्र्यक सम्मिलित है तब जो प्रकार उत्पन्न होगे उनकी संख्या १ घात २($१^२$) अर्थात् दो होगी, यदि दो सम्मिलित हों तो परिणामित प्रकार ($२^२$ याने) चार होंगे। जबकि यदि दोनो प्रकार १० पित्र्यकों के सम्बन्ध से भिन्न होते है, तब पुन.संयोजन में २ घात १० ($२^{१०}$) याने १०२४ नये संयोजन सम्भव होते है। इनमे से केवल दो माता-पिता के आकार है। इस प्रकार १०२२ नये प्रकार मिलते है। यदि परिणामित सकरण में एक मध्य प्रकार भी निर्मित हो तो पुनः संयोजन

१. त्रिसंकर का दूसरा उदाहरण एबर्डीन-ऐंगस को हेयरफोर्ड के साथ मिलाने से होता है। यह न केवल बतलाये गये दो गुणों में ही (रंग तथा सींग) भिन्नता बतलाते है बल्कि इसमे भी हेयरफोर्ड का चेहरा श्वेत होता है जो कि एबर्डीन-ऐंगस के काले चेहरे पर प्रभावी है। इसका परिणाम है कि हमारे पास ८ बाह्य समरूप निम्न प्रकार के मिलते हैं।

२७ श्वेत चेहरा, काला, सींग रहित, एक शुद्ध प्रसवन के साथ
९ श्वेत चेहरा, काला, सींग वाला, ,,
९ श्वेत चेहरा, लाल, सींग रहित, ,,
९ साफ़ चेहरा, काला, सींग रहित, ,,
३ श्वेत चेहरा, लाल, सींग वाला, ,,
३ साफ़ चेहरा, काला, सींग वाला, ,,
३ साफ़ चेहरा, लाल, सींग रहित, ,,
१ साफ़ चेहरा, लाल, सींग वाला, ,,

२. पूर्व-कथित, पृष्ठ ७९

२ के स्थान पर ३ की शक्ति (घात) से बढ़ता है। परिणाम यह होता है कि जब हम मनुष्य पर आते हैं, जिसमें सहस्त्रों पित्र्यक हैं जो कि मनुष्य के अनेक गुणों को नियन्त्रित करते हैं, तब पुनःसंयोजन अगणित होते हैं। यही कारण है कि वंशानुगति के नियम मनुष्य में छिपे हुए या अप्रकट से रहते हैं परन्तु इस पर भी वे अपना काम बराबर करते रहते हैं।

व्यावहारिक रूप में इतनी अधिक विभिन्नता पर कुछ बन्धन भी हैं। कई गुण परस्पर ग्रथित होते हैं, अतः वंशानुगति से एक पूरी इकाई के रूप में हस्तान्तरित होते हैं।

त्रिसंकर की अपेक्षा अनेक संख्या के गुणोंवाले प्रकारों में जिनमें ग्रथन नहीं होता, संकरण के अनुपात जानने का प्रयत्न किया जा चुका है परन्तु चतुःसंकर से अधिक का संपरीक्षण कभी नहीं किया गया क्योंकि उनमें संख्या बहुत बढ़ जाती है। इस प्रकार से चतुःसंकर की दूसरी पीढ़ी में त्रिसंकर के ६४ अथवा $(३\times१)^{३}$ की अपेक्षा २५६ अथवा $(३\times१)^{४}$ प्रकारों की सम्भावना मिलती है। क्रू ने बतलाया है कि उन माता-पिता में जो कि १० एकक गुणों में भिन्न हैं १०,४८,५७६ प्रकारों की सम्भावना होगी। जैसा कि उसने बतलाया है व्यावहारिक संपरीक्षण तथा अभिजनन के लिए दो गुण अथवा एक समय में एक गुण के एकक को लेना ही ठीक होगा, जब तक कि वह युग्मैकगुण दशा में न मिल जाये। ऐसा करने के पश्चात् अन्य गुणों की दृष्टि से भी गणना की जा सकती है।

दसवाँ अध्याय

जाति की बनावट सम्बन्धी बहुत से कारक, जननिक परिवर्तन तथा अन्य बातें

इस समय यह बतला देना आवश्यक है कि वंशानुगति का समस्त चित्रण प्रभावी, अपसारी, निरोधन, अनुपस्थिति तथा उपस्थिति, ग्रथन (लिंकेज) इत्यादि से भले ही जटिल हो गया हो परन्तु उलझनों के अन्त तक हम अब भी नहीं पहुँचे है, क्योंकि जटिलता बढ़ाने के लिए बहुसंख्य कारकों (मल्टिपिल फैक्टर्स) का एक अन्य सिद्धान्त है जो कि कुछ संकरणों में प्रकट होता है ।

इस समय तक दूसरी पीढ़ी (F_2) कुछ अंशों में अथवा सम्पूर्ण रूप से अपने माता-पिता के आकार से मिलती जुलती थी। परन्तु अब तक जो कुछ हमने अनुभव किया है उसके स्थान पर यह सम्भव है कि इस पीढ़ी में एक माता-पिता के आकार से दूसरे तक अस्पष्ट किन्तु पूर्ण परिवर्तन-क्रम मिले। कासेल द्वारा खरगोशों के कानों पर किये गये संपरीक्षण में हम ऐसा पाते है। उन्होंने बेलजियम के एक हेयर डो का जिसके कान ११८ मिलीमीटर लम्बे थे, एक २१० मि० मीटर के लटकते कानोंवाले खरगोश से संकरण किया। इन दोनों का औसत १६४ मि० मी० था। प्रथम जनन (F_1) के पाँच सदस्यों में यही औसत लम्बाई मिलती थी। इनमें से दो, १७० मि० मी० तथा १६६ मि० मी० कान की लम्बाई वालों का संग किया गया। इनकी सन्तति (F_2) के कानों की लम्बाई १६० मि० मी० से १७६ मि० मी० थी। इसमें प्रारम्भिक आकार को पुनः ग्रहण कर लेने की प्रवृत्ति नहीं मिलती जैसा कि अभी तक बतलाये गये उदाहरणों में नियम देखा गया है।

क्रू[1] ने बतलाया है कि वंशानुगति सम्बन्धी मेण्डल के नियम के प्रति इसमें कोई विरोधाभास नहीं प्रकट होता तथा जैसा कि प्रथम दृष्टि से मालूम पड़ता है ऐसा कोई सुझाव ग्राह्य नहीं माना जा सकता कि वंशानुगति सन्ततियों का एक दूसरी में मिल जाना

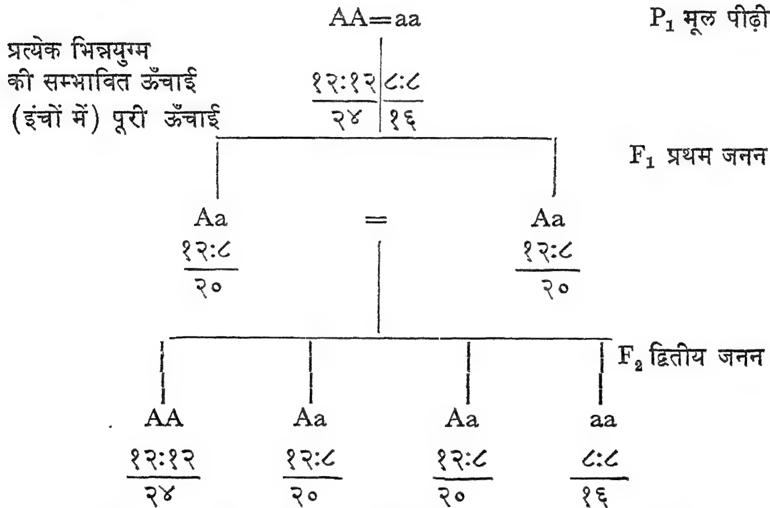
१. **क्रू** (Crew), **पूर्वलिखित, पृष्ठ ५४–५५**

साबित किया जा सकता है। गेहूँ के दाने में रंग की वंशानुगति के प्रति अनुसन्धान करके निलसन एहले[1] ने जहाँ पर कि उन्होंने एक छोर से दूसरे छोर तक यही क्रमिक परिबर्तन पाया, इसकी निम्नलिखित व्याख्या की है।

चित्र नं० १०७

कारकों की संख्या अनेक होने पर स्थिति की साधारण व्याख्या

मान लिया जाय कि AA, २४ इंच वाले तथा aa १६ इंच के हैं। यह भी मान लें कि पैत्रिक पीढ़ी (P_1), AA तथा aa जनों द्वारा प्रदर्शित की गयी है, तब —



[यह देखा जायगा कि वास्तविक कद १६ से २४ इंचों तक मिलता है और जननिक बनावट पर आधारित है।]

रंग के उत्पादन में तीन कारक सम्बद्ध हैं। इन तीनों की उपस्थिति से गेहूँ का रंग लाल होता है। परन्तु जब इसमें अपसारी जन्यु (गैमीट) उपस्थित रहते हैं तब गेहूँ सफ़ेद रंग का होता है। जब केवल एक प्रभावी रंग का जन्यु रहता है तो गेहूँ में

१. **एच० निलसन एहले,** Krevzungsuntersuchungen an Hafer und Weizen, १९०९, पृष्ठ १

कुछ लालपन होता है, जब दो रहते है तब अधिक लाल और जब तीन होते है तब उससे भी अधिक लाल मिलता है। रंग की गहराई, रंग जन्युओं (गैमीट) के एकत्रित प्रभाव पर आधारित है। इसका अर्थ है कि जब ६ जन्यु होते है तो दूसरे जनन (F_2) मे एक छोर से दूसरे छोर तक ६ गहराई के रंग मिलते है।

कानों की विभिन्न लम्बाई वाले खरगोशों के संकरण में ठीक यही बात होती है, जैसा कि अभी बतलाया गया है। क्रू ने जहाँ माप से सम्बन्ध है इन प्रश्नों से सम्बद्ध सूत्र बतलाया है[1] कि यदि एक सदस्य २४ इंच लम्बा तथा दूसरा १६ इंच लम्बा है, उनका संकरण होता है तथा केवल एक ही ऊँचाई का कारक सम्बन्धित है तब जो वास्तविक ऊँचाई प्राप्त होती है वह १६ से २४ इंच तक के बीच की होती है। किन्तु यदि दो आकार के कारक सम्बन्धित है तब सूत्र कुछ अधिक जटिल हो जाता है, जैसा कि साथ में दिये हुए चित्र नं० १०८ से स्पष्ट है।

यह स्पष्ट है कि यह सारा ज्ञान जो हमारे लिए उपलब्ध है, अनेक गुणों के विश्लेषण में अधिक सहायक होता जायगा, मुख्यतः उनके विश्लेषण में जिनका सम्बन्ध माप से है, जैसे मनुष्य का क़द, जिसमें निस्सन्देह एक से अधिक कारक सम्बद्ध है। आगे जब हम मनुष्य के क़द का विवेचन करेंगे, तब फिर इसकी चर्चा करेंगे। त्वचा का रंग अनेक पित्र्यकों के परिणाम का एक और उदाहरण है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि काले तथा सफेद के संकरण से मध्यम रंग क्यों मिलता है तथा इन अर्धसंकरों (हाफ़ ब्रीड्ज) के विवाह से बीच के रंग के और भी प्रकार क्यों कर उत्पन्न होते है।[2] हो सकता है कि यही चीज बालों के रंग के सम्बन्ध में तथा अस्थियो के कितने ही लक्षणों के सम्बन्ध में भी लागू होती हो।

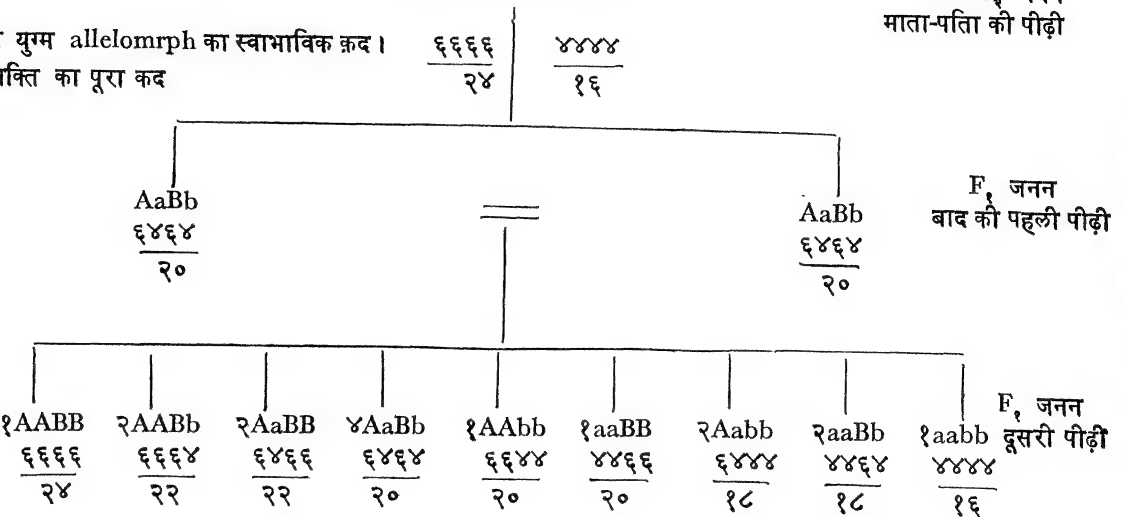
यह बात समझ में आती है कि अधिक संख्या में विभिन्नता होने से समस्या और भी अधिक जटिल हो जाती है जैसा कि हम मनुष्य में पाते हैं। परिणामतः मनुष्य में वंशानुगति का अध्ययन इतना जटिल है कि यदि हम ठीक-ठीक इन सिद्धान्तों को, इसी से मिलते-जुलते किन्तु साधारण सचेतनों (जीवों) में, पहले तो पौधों में, फिर पशुओं में न देख लेते, तो हम उन नियमों को अपना काम करते हुए कभी नही समझ सकते थे और मानव जातियों के जटिल आधारक की व्याख्या, भौगोलिक, सामाजिक

१. **क्रू, पूर्व लिखित, पृष्ठ,** ५९–६०

२. **कोकेन, ई. ए.** (Coekayne, E. A.) **इनहेरिटेड ऐबनार्मेलिटीज आफ स्किन एण्ड इट्स अपेन्डेजेज, आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस लन्दन, १९३३, पृष्ठ** ४४

चित्र नं० १०८

दो आकार के कारकों से सम्बन्धित सूत्र की व्याख्या। मान लीजिये एक माता-पिता की सन्तति का कद २४ इंच है तथा दूसरे का १६ इंच और माता-पिता की (P१) पीढ़ी क्रमशः AABB तथा aabb द्वारा बतलायी गयी है तब —



[यह देखा जायगा कि १६, १८, २०, २२ से २४ इंचों तक की जो क्रमिक विभिन्नता मिलती है वह दो जोड़े कारकों के आधार पर समझी जा सकती है।]

परिस्थिति तथा शिक्षा द्वारा करके परिस्थितिवादी अब भी अपनी अगणित उपधारणाओं को, किसी के द्वारा खण्डन न किये जाने के कारण, हमारे सम्मुख रखते रहते।

वंशानुगति का जो चित्र हम प्राप्त कर सके है वह एक जटिल पच्चीकारी के काम के समान है परन्तु इसमें एक नियम तथा तरीका है जो कि मेण्डल के खोजे हुए नियमों पर आधारित है जिनसे मनुष्यो, पशुओ तथा खेत के पौधों तक का नियन्त्रण होता है।

जननिक परिवर्तन (Genetic Drift)

पशु-प्रसवन का अध्ययन हमें मेण्डल के नियम के एक अन्य आवश्यक सिद्धान्त के समझने में सहायक होता है जो कि मनुष्यों की नस्लों तथा जातियो की उत्पत्ति में महत्त्वपूर्ण है। ऐंगस-एबर्डीन जाति के पशु की चर्चा अभी की जा चुकी है। यह नस्ल प्रथम बार गाय की नार्स तथा केल्टिक जातियों के संकरण से उत्पन्न हुई। नारवे-निवासी अपने पशुओं को स्काटलैण्ड लाये जो कि हलके रंग, बिना सींग वाले, छोटी टाँगों तथा बड़े पेट के थे। केल्टिक पशु काले, सींगदार, लम्बी टाँगों तथा लम्बे शरीर के कारण इनसे भिन्न थे। जब इन दोनों अभिजातियों (ब्रीड्ज) का संग हुआ तथा अंतः प्रसवन हुआ, तो काफ़ी समय बाद अन्य सन्ततियों के योग से, एबर्डीन-ऐंगस की उत्पत्ति हुई। वास्तव में हुआ यह कि नार्स (नारवे के) पशु का मौलिक प्रकार बचा रहा तथा साथ में, जिससे संकरण हुआ, उसका रंग मिल गया। परिणामतः चुनाव के प्रसवन से दोनों प्रारम्भिक प्रकार, जिनसे उसकी उत्पत्ति हुई थी, पूर्णतया समाप्त हो गये।

एबर्डीन-ऐंगस तथा हेयरफोर्ड के संकरण की व्याख्या करते हुए हम बतला चुके है कि काले तथा सींग-रहित ९, काले तथा सीगवाले ३, तथा लाल और सींग-रहित ३, लाल और सींगवाले १ के अनुपात में मिलते थे। इनमें से प्रत्येक प्रकार केवल एक शुद्ध सन्तति उत्पन्न करता है।

अगले पृष्ठ के चित्र में प्रत्येक उदाहरण में पित्र्यकों का संयोजन बतलाया है। BB=काले, PP=सींग रहित, bb=लाल तथा pp सींगवाले है। इस सम्बन्ध में मानी हुई रीति के अनुसार बड़े अक्षर प्रभावी गुणों को तथा छोटे अपसारी को प्रदर्शित करते है।

इस चित्र में यह देखा जा सकता है कि इसमें चार सम-पित्र्यक हैं जो कि सत्य (शुद्ध) प्रसवन करते हैं। इसलिए, हालाँकि प्रारम्भिक प्रकार BB+PP (काले, सींग रहित) तथा bb+pp (लाल, सींगवाले) है, फिर भी दो नये प्रकारों bb+pp (लाल सीगवाले) तथा BB+pp (काले, सीगवाले) की उत्पत्ति होती है। इनमें से प्रथम

चित्र नं० १०९

एबर्डीन-ऐंगस तथा हेयरफोर्ड के संकरण से उत्पन्न बाह्य समरूपों (Phenotype) **तथा समपित्र्यकों** (genotype) **की विभिन्नता।**

काले, सींगरहित पशु एबर्डीन-ऐंगस हैं। अन्य संकरित पशु हैं।
लाल, सींगवाले पशु हेयरफोर्ड हैं। (शेषांश पृ० १९८ पर)

BB PP	काले पशु बिना सींग के ←——	लाल पशु बिना सींग के ——→	bb pp
इस भाग में केवल एक, एबर्डीन-ऐंगस, सम पित्र्यक में शुद्ध है परन्तु बाह्य समरूप में सभी शुद्ध हैं।	BB Bb bB PP PP PP BB Bb bB Pp Pp Pp BB Bb bB pP pP pP	bb PP bb Pp bb pP	इस भाग के सब नये प्रकार हैं।
इस भाग में सब प्रकार नये हैं।	BB Bb bB PP PP PP	bb pp	इस भाग में सब समपित्र्यक तथा बाह्य समरूप में शुद्ध हेयरफोर्ड प्रसवन हैं।
BB PP	काले पशु सींग वाले ←——	लाल पशु सींगवाले ——→	bb pp

उदाहरण में (bb+pp) हेयरफोर्ड का लाल रंग तथा एबर्डीन-ऐंगस का सींग-रहित होना पूर्ण रूप से पित्रागत है। दूसरे (BB+pp) में बाद के (अवरोक्त) का काला रंग तथा पहले (पूर्वोक्त) का सींग पित्रागत है।

यह सिद्धान्त जिसमें कि एक प्रसंकर (Hybrid) किसी जाति से लिये गये एक गुण के लिए युग्मैकगुणी हो जाता है तथा दूसरे में दूसरा हो जाता है, जननिक परिवर्तन कहलाता है। इसमें गुण अपने प्रारम्भिक आधारों या आश्रयस्थानों से भिन्न हो जाता है। प्रसवन में यह एक महत्त्वपूर्ण कारक है जिसका कारण मनमाना चुनाव अथवा पित्र्यकों के पृथक्करण के अन्य कारण हो सकते हैं।

इन तथ्यों से हम निश्चित नियमों की स्थापना कर सकते है जो मनुष्यों के नये प्रकारों तथा पशुओं में नयी नस्लों की उत्पत्ति में समान रूप से कार्य करते हैं ।

उदाहरणार्थ हम कह सकते है कि यदि दो जातियाँ होतीं जिनमें केवल एक ही गुण की विभिन्नता होती तब कोई नये प्रकार की उत्पत्ति नहीं हो सकती थी। उदाहरण के लिए यदि हम मान लें कि ऐटलाण्टिक तथा नार्डिक चेहरे में मुख्य विभिन्नता केवल प्रथम के काले केश तथा बाद वाले के स्वर्ण-केशों की है, तब हम कह सकते हैं कि काले केशोंवाले ऐटलाण्टिक तथा हलके रंग के केशोंवाले नार्डिक में संकरण होने पर एक नये प्रकार की उत्पत्ति असम्भव होगी। परन्तु यदि हम ध्यान रखें कि उनमें वास्तविक दो जोड़े मुख्य गुणों के है जिनमें विभिन्नता मिलती है, जैसे कि केशों का रंग तथा चेहरे की लम्बाई, तो यह स्पष्ट है कि यदि प्रसवन को नियन्त्रित रखा जाय तो इन दो जातियों से दो की नयी उत्पत्ति हो सकती है, जिनमें से एक के तो काले केश तथा लम्बे चेहरे होंगे और दूसरे के स्वर्ण-केश तथा माध्यमिक लम्बाई के चेहरे होंगे।

इस परिणाम को सरल बनाने के लिए तथा केवल शुद्ध सैद्धान्तिक प्रदर्शन के लिए चित्र नं० ११० उन दो मानव जातियों के संकरण के मुख्य परिणामों को चित्रित करता है जिनमें केवल केश तथा चेहरे के आकार की विभिन्नता पायी जाती है। सत्यता यह है कि अपने जननिक रूप में दशा वस्तुतः इससे कहीं अधिक जटिल है। इसे प्रदर्शित

(पृ० १९७ का शेषांश)

इस चित्र में समपित्र्यकों में जितने तारका-चिन्हित है वे नये प्रकार हैं जो शुद्ध प्रसवन करेंगे।

समकोण चतुर्भुजों के अन्दर बन्द सम पित्र्यक शुद्ध पैत्रिक पीढ़ियाँ है जो कि शुद्ध प्रसवन करती रहेंगी।

करने के लिए दिये हुए मानचित्र से कहीं अधिक जटिल चित्र की आवश्यकता पड़ेगी क्योंकि यह स्पष्ट है कि केशों का रंग, साथ ही सम्भवतः चेहरे की लम्बाई भी, एक जोड़ा पित्र्यकों की अपेक्षा अधिक पर आधारित है। तिस पर भी चाहे जो हो इन सबका जो परिणाम निकलेगा, वह सिद्धान्ततः जैसा कि इस चित्र से पता चलता है, उससे भिन्न न होगा, यद्यपि यह उससे कहीं अधिक जटिल होगा—इतना जटिल कि वास्तव में इस स्थान में इसका प्रदर्शन नहीं किया जा सकता।[1]

हम यह सुझाव नहीं दे रहे हैं कि ये दोनों जातियाँ केवल इन्हीं दोनों गुणों में एक दूसरे से भिन्न हैं। उनमें विभिन्नता अनेक गुणों में पायी जाती है, जैसे कि ऐटलाण्टिक जातिवालों का अधिक लम्बा कद तथा गठा हुआ शरीर, अधिक चौकोर जबड़ा, गाल की ऊँची हड्डियाँ तथा अधिक मात्रा में बालों का लालपन। फिर भी मुख्यतः ब्रिटिश द्वीप, जर्मनी तथा स्वीडेन में होनेवाले सम-पित्र्यकों के संयोजन के प्रकारों को सरल रीति से समझने के लिए यह चित्र पर्याप्त होगा, बशर्ते कि वहाँ पर ऐटलाण्टिक तथा नार्डिक जातियों में होनेवाले प्रसंकरण में इन दो गुणों का ही ध्यान रखा जाय और सम्बन्धित अन्य अनेक कारकों की सम्भावना की अवहेलना कर दी जाय।

यदि दो जातियाँ तीन गुणों में भिन्न होती हैं तब दो नये प्रकारों की अपेक्षा छः की उत्पत्ति होती है तथा यदि उनमें चार गुणों की विभिन्नता हो तब १४ नयी सन्ततियाँ (ब्रीड्ज) मिलती हैं तथा इसी प्रकार से आगे समझना चाहिए।

यह सिद्धान्त, जिससे ज्ञात होता है कि एक तथा दूसरी जाति के संकरण से नये प्रकार की उत्पत्ति हो सकती है, चाहे वह पशु हो अथवा मनुष्य, वर्तमान मानव समाज के जाति-विज्ञान की व्याख्या के लिए महत्त्वपूर्ण कुंजी है, जैसा कि हम आगे इन समस्याओं पर अधिक विस्तार से विचार करते समय देखेंगे।

इस अवस्था में इस तथ्य की ओर ध्यान दिलाना आवश्यक है कि जहाँ संकरण किये जानेवाले समाज के व्यक्तियों की संख्या बहुत थोड़ी है तथा जहाँ आकस्मिक पृथक्करण द्वारा वे पृथक् समूहों में बिखरे हैं, वहाँ यह कहा जा सकता है कि जो संततियाँ बच रहती हैं, वे बिलकुल ही पैत्रिक सन्ततियाँ न हों वरन् वे नये स्थायी प्रकार हैं। प्रारम्भिक मनुष्य ऐसे ही छोटे समुदायों से सम्बन्धित था जो अक्सर बड़े क्षेत्रों द्वारा एक दूसरे

१. सम्बद्ध पित्र्यकों की संख्या के अनुसार समपित्र्यकों की संख्या तथा अनुपात उससे भिन्न होगा, जैसा कि हमने इस सीधे साधारण उदाहरण में दिखाया है।

से पृथक् थे, इसलिए आकस्मिक संकरण में पित्र्यकों के नये संयोजन से बचे हुओं का पारेषण होता था, और उन पीढ़ियों में जाति की पुरानी सन्ततियाँ नष्ट होती गयी। इस क्रिया को जननिक परिवर्तन (जेनेटिक ड्रिफ्ट) कहते हैं, क्योकि एक जाति के पित्र्यक इस तरह दूसरी में चले जाते है।

चौड़े कपालवाले काकेसायड तथा जननिक परिवर्तन

हमारे मत से, जैसा कि आगे हम विस्तार से व्याख्या करेंगे, काकेसायड जातियो में अल्पाइन, डाइनारिक, आर्मीनायड तथा पूर्वी बाल्टिक जातियाँ इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुई है, जिनमें चौड़े कपाल, रक्त समूह, तथा कुछ अन्य गुण मंगोलायड से काकेसायड लोगों में स्थानान्तरित हो जाने से ये नयी जातियाँ बन गयी हैं जिन्हें हम जाति की नयी नस्लें कहकर मूल जातियों से भिन्न दिखलाना ठीक समझते है।

फिर भी, जननिक परिवर्तन ही केवल एक कारक नही, जो इसके पीछे काम करता रहता है। संकरण के पश्चात् जननिक परिवर्तन उन समुदायों में से, जिनमें परस्पर संकरण होता है, विभिन्न नये प्रकारो को जन्म देता है। इन अनेक नये प्रकारों में से अन्त मे यदि केवल एक बच रहता है, तो इसका कारण अन्य प्राकृतिक नियमों का प्रभाव ही है। इनमें सबसे अधिक शक्तिशाली है प्राकृतिक चुनाव का नियम। बहुधा इसमें निश्चित रूप से यथानुरूप मिलन भी सहायक होता है।

जब कि इस प्रकार नये प्रकारों की उत्पत्ति होगी ही, जहाँ भौगोलिक तथा सामाजिक दशाएँ उपयुक्त हों तथा काफी लम्बा समय भी सापेक्षिक पृथक्करण के लिए हो, जिससे कि नयी सन्ततियों की स्थापना की जा सके। वे दशाएँ जो कि प्रागैतिहासिक काल से नही मिली, यह आवश्यक नही कि वे मूल पैत्रिक पीढ़ियों को दबा दें जिनसे उनकी उत्पत्ति हुई है। हाँ, यदि जलवायु की स्थिति नये प्रकारों के लिए अधिक उपयुक्त हो तथा अन्य कारक प्राकृतिक चुनाव के लिए अधिक अनुकूल हों तो बात दूसरी हैं। जैसा कि हमने अन्य किसी स्थान पर बतलाया है, समान की समान से संग करने की प्रवृत्ति मिलती है। इसका अभिप्राय यह है कि एक प्राकृतिक प्रेरणा के कारण, उदाहरण के लिए अभी बतलाये गये सूत्र में वर्णित सन्ततियों में, एक साफ रंग, लम्बे चेहरेवाले व्यक्ति में उसी प्रकार के व्यक्ति से विवाह करने की प्रवृत्ति मिलेगी और चूँकि ये अपसारी गुण है, ये पूर्ण शुद्धता मे मिलते जाते है। जब कि ऐटलाण्टिक प्रकार के उदाहरण मे (काले केश तथा माध्यमिक लम्बा चेहरा) ये गुण प्रभावी है, उन लोगो की अधिक संख्या के मध्य में शुद्ध रूप में तथा संकरण के रूप में भी, सन्तति को बनाये रखने मे कोई कठिनाई नही पड़ती। दबाने की जान-बूझ कर की गयी चेष्टा

चित्र नं० ११०

ऐटलाण्टिक तथा नार्डिक के संकरण से सम्बद्ध समरूपों तथा समपित्र्यकों की विभिन्नता का एक सरल सैद्धान्तिक उदाहरण, जिसमें यह मान लिया गया है कि प्रत्येक बाह्य समरूपी गुण बहुत से पित्र्यकों के बजाय केवल एक जोड़े के कारण हैं।

ऐटलाण्टिक जाति $\frac{BB}{MM}$ से प्रदर्शित है।

जहाँ पर B B काले केशो के लिए प्रभावी है, तथा M M माना हुआ प्रभावी है जिससे केवल मध्यम लम्बाई के चेहरे से अभिप्राय है।

नार्डिक जाति $\frac{bb}{mm}$ से प्रदर्शित है, जिसमें b b अपसारी स्वर्ण-केश तथा M M माना हुआ अपसारी लम्बा चेहरा है।

	काले केश, माध्यमिक चेहरा	स्वर्ण केश, माध्यमिक चेहरा	
ऐटलाण्टिक जातीय प्रकार; केवल एक चतुर्भुज के अन्दर घिरा, शुद्ध प्रसवन	B B Bb bB M M MM MM BB Bb bB Mm Mm Mm BB Bb bB mM mM mM	bb* MM bb MM bb mM	नये प्रकार, केवल एक, *चिन्ह द्वारा सूचित, शुद्ध प्रसवन।
नये प्रकार, केवल एक, *चिन्ह द्वारा सूचित शुद्ध प्रसवन	BB Bb bB mm mm mm	b b m m	नार्डिक जातीय प्रकार, समस्त प्रसवन शुद्ध।
BB mm	काले केश, लम्बा चेहरा	स्वर्ण-केश, लम्बा चेहरा	bb mm

अथवा केवल बीमारी तथा परिस्थिति की प्रतिकूल दशाओं आदि से ही दोनों प्रारम्भिक जातियाँ पूर्ण रूप से मिटायी जा सकती थी।

गुणों में अधिक विभिन्नता होने से न केवल नये प्रकारों की संख्या बढ़ती है परन्तु इसकी भी सम्भावना कम होती जाती है कि मिश्रित आधारक में से शुद्ध नस्ल का कोई व्यक्ति मिले। यदि ऐसी दो जातियों या नस्लों से संकरण बने है जो केवल एक गुण में ही विभिन्न है, तब चौथाई वर्ग के अतिरिक्त, जो कि अपने अपसारी माता-पिता की भाँति शुद्ध प्रसवन करेगा, शेष में से (जो प्रभावी माता-पिता से मिलते जुलते हों) तीन में केवल एक ऐसा होगा जो शुद्ध प्रसवन करेगा। परन्तु जहाँ पर संकरण के व्यक्तियों में दो प्रभावी गुण हों वहाँ समूह के ९ में से केवल १, जो कि अपने प्रभावी माता-पिता की भाँति है, शुद्ध प्रसवन होगा। यदि ३ गुण हों तब २७ में १ तथा यदि ४ गुण हों तब ८१ में १ शुद्ध होगा; इसी प्रकार आगे भी समझना चाहिए।

हम नीले एंडालूसियन के उदाहरण में देख चुके है कि प्रथम जनन में काले के स्थान पर नीला प्रभावी था। इसी कारण चूँकि इसने पूर्ण रूप से अपने को प्रकट नही किया, इस उदाहरण में हम काले पित्र्यक को अपूर्ण प्रभावी कहते है। इसी प्रकार की क्रिया हम कुछ पशुओं में भी देख चुके है। इस तरह जब काले तथा लाल पशुओं का संग होता है, तब संकरज काले होते है। परन्तु यदि यह मेल लाल तथा श्वेत पशुओं में होता तो सन्तति लाल होती, जब कि यदि माता-पिता काले तथा श्वेत होते तब परिणाम स्वरूप नीला पशु होता।

यहाँ पर हमारे समक्ष ठीक उसी प्रकार की क्रिया उन अपूर्ण प्रभावी गुणों में काम करती है जो श्वेत तथा काले वर्गों के मनुष्यों के संकरण में पाये जाते है। जहाँ तक कि श्वेतों तथा नीग्रो लोगों के प्रसंकर का सम्बन्ध है, प्रथम पीढ़ी (मुलैटो) काली नही होती (हालाँ कि यह रंग प्रभावी है) परन्तु इन दोनों के बीच का रंग मिलता है। हम इसलिए चुने हुए अभिजनन द्वारा काले तथा श्वेत रंगों का प्रसवन करा सकेंगे तथा यही अनेक उदाहरणो में होता है। बाद में हम मनुष्य की इस वंशानुगति से प्राप्त रंग के प्रश्न की तथा सम्बन्धित अनेक कारकों की पूर्ण रूप से व्याख्या करेंगे, इसलिए इस स्थान पर अधिक लिखने की आवश्यकता नही।

जातियों के अंतःप्रसवन के सम्बन्ध में यह याद रखना चाहिए कि किसी व्यक्ति में एक जोड़ा भिन्नयुग्म-पित्र्यकों से अधिक की पित्रागति नही हो सकती, उसके पूर्वज चाहे जितने मिश्रित क्यों न हों। इसलिए एक धूसर (Grey) घोड़े की उत्पत्ति ऐसे पूर्वजो से भले ही हुई हो जिनमें चेस्टनट (गहरा लाल), काला, बे (लाल सा भूरा), डन (मटमैला सा) तथा धूसर आदि रंगों का मेल रहा हो, परन्तु यदि यह शुद्ध धूसर

न होकर प्रसंकर है तो इसमें केवल धूसर तथा एक और किसी रंग के ही पित्र्यक हो सकते हैं[१]।

अब यह समझा जा सकता है कि यदि कोई मनुष्य चाहे जितने भिन्न-जात या मिश्रित पूर्वजों, उदाहरण के लिए नीग्रो, श्वेत, पीले तथा एमेरिंड पूर्वजों, से उत्पन्न हुआ हो, तो उसे इन सभी जातियों के पित्र्यक वंशानुगति से प्राप्त नहीं हो सकते बल्कि केवल दो ही प्राप्त होंगे। प्रकृति का ध्येय समस्त प्रसवन जगत में से छाँटना तथा ऐसा करके उस जटिलता को कम करना मालूम होता है जिसे मनुष्य, प्रकृति के नियमों के अज्ञान वश, बढ़ाता रहा है।

जातियों के बनने के प्रक्रिया-सम्बन्धी अन्य विचार

वंशानुगति की प्रक्रिया, न केवल ऐसे स्पष्ट गुणों का, जैसे कि त्वचा, आँखों, केशों के रंग, कपाल, कद तथा चेहरे के आकार आदि का, ही नियंत्रण करती है बल्कि अन्य

१. जेम्स विल्सन (James Wilson) पूर्वकथित, पृष्ठ ४० में इसको प्रदर्शित करते हुए कहते हैं कि "एक चेस्टनट रंग के घोड़े का यदि पूर्ण काले से, जिसमें काला प्रभावी है, संग किया जाय तो सन्तति काली होती है, हालाँ कि उसके माता-पिता म काला तथा चेस्टनट दोनों ही रंग हैं। इस काले प्रसंकर का यदि शुद्ध बे (Bay) रंग वाले से संग किया जाता है जिसमें भूरा केवल गहरी छाया के रूप में है तथा बे रंग, काले तथा भूरे दोनों में प्रभावी है, तब सन्तति बे रंग की होती है, हालाँ कि बे माता-पिता के कारण बे रंग तथा काले माता-पिता से काला या चेस्टनट होने की सम्भावना है। यदि यह प्रसंकर बे शुद्ध डन (Dun) से मिलाया जाता है तथा डन भी बे, काले तथा चेस्टनट की अपेक्षा प्रभावी है, तब सन्तति डन होगी, यद्यपि डन माता-पिता के कारण डन अथवा काले या चेस्टनट, जो भी बे को अपने काले माता-पिता से मिला, दोनों होने की सम्भावना थी। अन्त में यदि डन प्रसंकर को शुद्ध धूसर से मिलाया जाता है तथा धूसर अन्य चार रंगों से प्रभावी है तब सन्तति धूसर होगी, जिसमें, धूसर माता पिता के कारण, धूसर रंग तथा डन अथवा अन्य रंगों में से जो भी रंग उसे बे माता-पिता से मिला था, वह रंग मिश्रित हो गया हो। घोड़ा इन पाँचों रंगों में से किसी रंग का हो सकता है परन्तु उसमें एक समय में दो रंग के प्रभाव से अधिक नहीं मिल सकते।" घोड़ों में बालों के रंग के अध्ययन के लिए सी० सी० हर्स्ट (C. C. Hurst), एक्सपेरीमेन्ट्स इन जेनेटिक्स, कैम्ब्रिज, पृष्ठ २३९ देखिए

बहुत से ऐसे गुणों का भी जो कि अभी तक परिस्थिति के परिणाम समझे जाते थे। हम दिखला चुके है कि कद वंशानुगति पर आधारित है, परन्तु यह उन गुणों में से एक है जो कि परिस्थिति द्वारा प्रभावित होते है, कारण यह है कि इसमें केवल वृद्धि का प्रश्न है इसलिए इसका नियन्त्रण ठीक उस तरह से नहीं किया जा सकता, जिस तरह से अन्य गुणों का। तात्पर्य यह कि कोई मनुष्य यदि लम्बे कदवाली नस्ल का हो, तो भी उसके पूर्ण विकास को हम अ-पौष्टिक खुराक द्वारा रुद्ध कर सकते है। दूसरी ओर जाति चूँकि नियन्त्रित करनेवाली मुख्य वस्तु है, इसलिए किसी प्रकार की भी अच्छी परिस्थितीय दशाएँ छोटे कद की जाति के मनुष्य को लम्बे कदवाली जाति के सबसे ऊँचे मनुष्य का मुकाबला करने योग्य नही बना सकती। अतः अपेक्षा की जा सकती है कि इस प्रकार के गुण पित्रागति नियम (मेण्डेलियन ला) द्वारा नियन्त्रित होते हैं। आगे हम काफ़ी स्थान, परिस्थिति तथा जाति के समस्त प्रश्न को देगे। इसलिए यह आवश्यक नही कि उस विषय को यहाँ विस्तार से बताया जाय। यहाँ पर साधारण सिद्धान्तों को प्रदर्शित करने के लिए इसी से मिलते-जुलते ब्रिटिश गायों के उदाहरण की ओर ध्यान आकर्षित करना पर्याप्त होगा।

ब्रिटिश गायें तीन[1] श्रेणियों में मिलती है जिनको कि सबसे अधिक दूध देनेवाली, माध्यमिक तथा सबसे कम दूध देनेवाली गायों की श्रेणी कह सकते हैं। यह देखा गया है कि सबसे अधिक तथा सबसे कम दूधवाली श्रेणी विभिन्न पित्र्यकों के कारण तथा माध्यमिक श्रेणी प्रसकर के कारण है। इसलिए एक सी दशाओं में रहते हुए, तथा जहाँ अच्छे पशुओ पर प्रतिकूल परिस्थिति का बुरा प्रभाव नहीं पड़ने पाता, निम्नलिखित[2] पित्रागति सिद्धान्त का प्रदर्शन मिलता है।

यह भी देखा गया है कि प्रतिशत मक्खन के कम अथवा अधिक होने के गुणों का पारेषण होना वंशानुगति पर आधारित है। माता-पिता दोनों ही उन गुणों को पारेषित करते है जो कि अनेक कारकों[2] द्वारा नियन्त्रित है।

यह सब हमारे समक्ष होते हुए हमें यह समझ लेना चाहिए कि मनुष्य तथा पशुओं का प्रत्येक गुण पित्रागति सिद्धान्त (मेण्डेलियन सिद्धान्त) पर आधारित है। इसलिए

१. **जेम्स विल्सन** (James Wilson) **पूर्व कथित, पृष्ठ ४५**

२. **जे० डब्लू० गोवेन** (J.W. Gowen) **इनहेरिटेन्स आफ़ मिल्क यील्ड एण्ड बटर फैट परसेन्टेज इन कासेज आफ़ डेरी एण्ड बीफ़ बीड्स आफ़ कैटल, जर्नल आफ़ हेरेडिटी, II, पृष्ठ ३०० तथा ३६५**

उनके ऐसा होने में आश्चर्य न होना चाहिए जैसा हम बाद में अधिक विस्तार से देखेंगे, यहाँ तक कि हम देखेंगे कि न केवल प्राकृतिक गुण ही वरन् मानसिक गुण भी निःसन्देह और शायद मुख्य रूप से वंशानुगति पर आधारित है। वास्तव में जननिक विद्या के आधार पर हम उन चीजों को समझना आरम्भ कर सकते है जिन्हें अन्य प्रकार से समझना कठिन है।

चित्र नं० १११

दूध देनेवाली ब्रिटिश गायों में दूध उत्पादन का वंशानुगत आधार

गायों (या बैलों) की श्रेणी	उन गायों या बैलों की श्रेणी जिनसे उन का संग कराया जाय	सन्तति की उत्पत्ति		
		सबसे अधिक दूधवाली श्रेणी	माध्यमिक श्रेणी	सबसे कम दूध वाली श्रेणी
सबसे अधिक	सबसे अधिक	१०० %	० %	० %
सबसे अधिक	माध्यमिक	५० %	५० %	० %
सबसे अधिक	सबसे कम	० %	१०० %	० %
माध्यमिक	माध्यमिक	२५ %	५० %	२५ %
माध्यमिक	सबसे कम	० %	५० %	५० %
सबसे कम	सबसे कम	० %	० %	१०० %

[स्पष्ट है कि ऊपर की तालिका में मेण्डल के अनुपात मिलते हैं। सबसे अधिक तथा सबसे कम उत्पादन भिन्न पित्र्यकों के कारण है तथा मध्य का उत्पादन प्रसंकर के कारण है।]

इसलिए मेण्डल के सिद्धान्त के आधार पर, उदाहरणार्थ, हम यह भी समझ सकते हैं कि क्यों ऐसे माता-पिता जो कि देखने में पूरी तरह से ठीक और अन्य लोगों की तरह हैं, कभी कभी क्षीणमस्तिष्क, गूंगी-बहरी, धवलांग (एलविनोज) तथा अन्य असाधारण गुणोंवाली सन्तान उत्पन्न करते हैं। इसकी व्याख्या यही है कि हालाँ कि माता-पिता प्रत्यक्ष रूप में साधारण हैं परन्तु वे युग्मैकगुणी (होमोजाइगस) न होकर युग्मानेक-गुणी (हेटरोजाइगस) हैं और वे अपसारी रूप में इनमें से किसी कमी को अपने साथ लिये रहते है। परिणामतः उसी अपसारी कमीवाले दो जनों में अन्तर्विवाह होने पर उनके ऐसे बच्चों की उत्पत्ति होती है जो बाह्य समरूप तथा समपित्र्यक दोनों में अपसारी गुणवाले होते हैं और यह गुण, हो सकता है कि, पीढ़ियों से परिवार में न दिखलाई पड़ा हो। यही कारण है कि समीप के रिश्तेदारों में विवाह, जिनके वर्ग या मूल वंश (स्टाक) किसी भी रूप से दोषी हैं, दुर्भाग्यजनक होते हैं क्योंकि इससे ऐसे अवांछनीय संयोजनों की सम्भावना बढ़ जाती है। अन्तःप्रसवन से पैदायशी विद्वान होने की सम्भावना बढ़ जाती है तथा इससे लुकी-छिपी अज्ञता की उत्पत्ति की भी सम्भावना दुगुनी हो जाती है।

इनकी, तथा प्रकृति में वंशानुगति की प्रक्रिया के हमारे ज्ञान से उत्पन्न अन्य विचारों की, व्याख्या समय आने पर की जायगी। परन्तु इन नियमों का अर्थ तो बिलकुल स्पष्ट है जिनका प्रयोग मेण्डल ने प्रथम बार पौधों में करके देखा तथा बाद के कार्यकर्ताओं ने मक्खियों, चूहों, गिनी सुअरों और फिर कुक्कुटादि में, मवेशियों में तथा घोड़ों में प्रयुक्त कर विकसित किया और इसका सम्बन्ध मनुष्य के साथ, एक व्यक्ति की भाँति तथा जाति के सदृश सचेतन इकाई के सदस्य होने की भाँति भी देखा। इसीलिए जाति-विज्ञान को सबसे प्रथम तथा हमेशा के लिए जननिक विद्या पर आधारित करना चाहिए जिसका पूर्ण ज्ञान तब तक नहीं प्राप्त किया जा सकता जब तक कि हम मनुष्य के तथा जातियों के जननिक शास्त्र का अध्ययन करने के पूर्व पौधों तथा पशुओं के जननिक विज्ञान का अध्ययन न कर लें।

ग्यारहवाँ अध्याय

ग्रथन का विषय

पिछले किसी अध्याय में जो कुछ कहा गया है, जिसमें ग्रथन (लिंकेज) का भी उल्लेख किया गया था, उससे स्पष्ट है कि यदि एक ही पित्र्यसूत्र में बहुत से कारक (पित्र्यक—जीन्स) हों तथा पित्र्यसूत्र का बर्ताव एक पूर्ण एकक के समान हो, तो यह परिणाम निकलता है कि उस पित्र्यसूत्र से सम्बद्ध सभी कारक अथवा पित्र्यक उस से जुड़े हुए हैं और इस प्रकार वे एक दूसरे से ग्रथित हैं।

परिणामतः, जैसा कि हम देख चुके हैं, कुछ कारक (फैक्टर्स) ऐसे होते हैं जो आपस में जुड़े रहते हैं। जो भी परिस्थिति हो, ऐसा होना चाहिए, यह स्पष्ट है। उदाहरण के लिए ड्रोसोफीला मेलानोजास्टर[१] में केवल आठ पित्र्यसूत्र होते हैं परन्तु उसमें सैकड़ों मेण्डल के कारक आ जाते हैं। परिणामस्वरूप उन पित्र्यकों को, जो इन कारकों के आधार हैं, आठ पित्र्यसूत्रों के साथ सामूहिक रूप से सम्बद्ध होना चाहिए। लैंन्सफील्ड (Lancefield)[२] ने बतलाया है कि ड्रोसोफीला आब्सक्योरा[३] में जिसके पाँच जोड़े पित्र्यसूत्र हैं, पाँच ग्रथित समूह हैं। मेज[४] ने भी देखा है कि ड्रोसोफीला विलिस्टोनी (Drosophila Willistoni) के तीन जोड़े पित्र्यसूत्रों के समकक्ष ग्रथित गुणों के भी तीन समूह पाये जाते हैं।

१. Drosophila Melanogaster

२. **डी० ई० लैंन्सफील्ड** (D. E. Lancefield), **"लिंकेज रिलेशन्स आफ़ दि सेक्स-लिंक्ड कैरेक्टर्स इन ड्रोसोफीला आब्स्क्योरा" जेनेटिक्स ७, १९२२, पृष्ठ ५३५**

३. Drosophila Obscura

४. **सी० डब्लू० मेज** (C. W. Metz), **"क्रोमोसोम स्टडीज इन दि डिप्टेरा, आइ० ए० प्रिलिमिनरी सर्वे आफ़ फाइव डिफरेन्ट टाइप्स आफ़ क्रोमोसोम ग्रुप्स इन दि जीनस ड्रोसोफीला" जर्नल, एक्स, जूलोजी १७, पृष्ठ ४५**

लिंग-ग्रथन (सेक्स लिंकेज)

ग्रथित पित्रागति का प्रश्न मुर्गियों के प्रसवन के सम्बन्ध में न केवल ठीक प्रकार से देखा गया, परन्तु यह वाणिज्य के लिए काफ़ी महत्त्व का है, जहाँ पर कि दूसरे गुण के साथ लिंगसम्बन्ध मिलता है। इस सम्बन्ध को हम लिंग-ग्रथन कहते हैं।

हमने मादापन का कारक X X से तथा नर का ` से प्रकट किया है। इस प्रकार एक नर की कारकीय बनावट X Y है। ये गुण वास्तव में केवल पित्र्यक के ही नहीं होते बल्कि स्वयं पित्र्यसूत्रों के होते हैं। मान लिया जाय कि हम एक लाल आँखवाली मादा पोमेस मक्खी का श्वेत आँखवाले नर से संकरण करते है। यह देखा जायगा कि संकरण के उपरान्त लाल आँखवाली मक्खी की उत्पत्ति होती है तथा आगे के अन्तः-प्रसवन में दूसरी पीढ़ी में लाल तथा श्वेत मक्खियों की उत्पत्ति होती है किन्तु प्रत्येक श्वेत आँखवाला नर होगा। श्वेत आँखवाले बाबा ने श्वेतपन को केवल पोतों की ओर ही बढ़ाया है, पोतियों की ओर बिलकुल नहीं। इस घटना के होने के कारण की व्याख्या यह है कि श्वेत आँखों के अपसारी पित्र्यक, अपसारी रूप से X पित्र्यसूत्र में होते हैं। यह (wX) द्वारा प्रदर्शित किया गया है। लाल आँखों के पित्र्यक भी एक X पित्र्यसूत्र के होते है जो कि WX है इसलिए, लाल आँखोंवाली मादा की बनावट (WX) (WX) है। (लाल पित्र्यक, X पित्र्यसूत्र में स्थित हैं) तथा श्वेत आँख के नर की बनावट (wX) (Y) है—श्वेत आँखों का अपसारी गुण X पित्र्यसूत्र तथा नर के लिए Y पित्र्यसूत्र जिसमें कि आँखों के रंग के लिए कोई पित्र्यक नहीं है।

वे पैत्रिक जनन (P_1) हैं। संकरण करने पर दूसरे जनन में लाल आँखवाले मादा तथा नर क्रमशः (WX) (wX) तथा (WX) (Y) बनावट के होंगे। जब इनका अंतःप्रसवन होता है तब अगले जनन (F_2) में

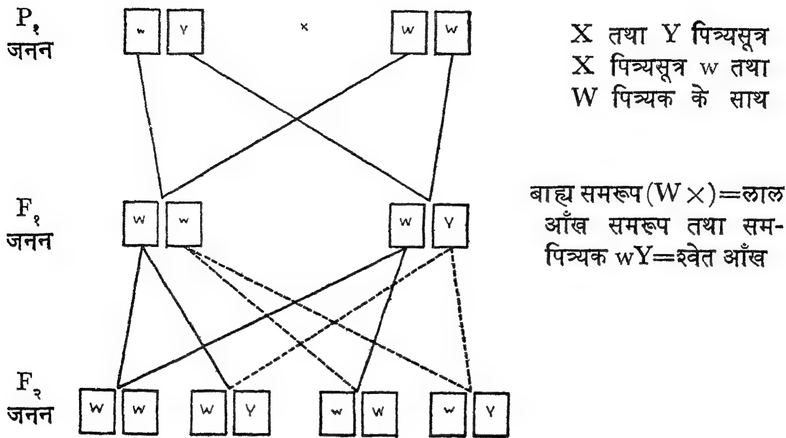
१ लाल आँख वाली मादा (WX) (WX)
१ लाल आँख वाली मादा (wX) (WX)
१ लाल आँख वाला नर (WX) (Y)
१ श्वेत आँख वाला नर (wX) (Y) मिलता है।

इसका चित्रण चित्र नं० ११२ में किया गया है।

पित्रागति की इस विधि की खोज प्रथम बार बिल्ली तथा मनुष्यों में हुई थी परन्तु जब तक ड्रोसोफीला के सम्बन्ध में इसकी जाँच भली-भाँति नहीं कर ली गयी, तब तक इसका मतलब पूर्ण रूप से समझ में नहीं आ सका था।

चित्र नं० ११२

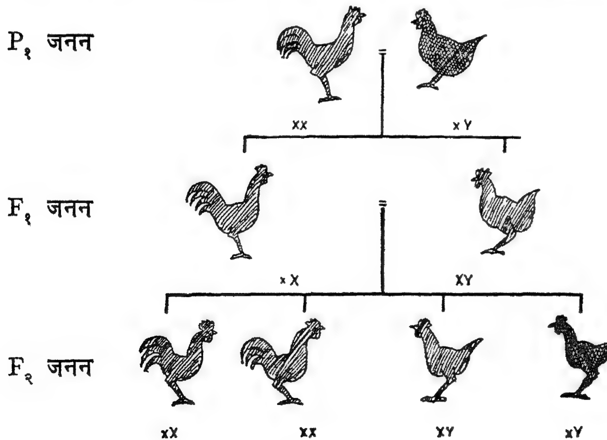
श्वेत आँखोंवाले नर का संकरण लाल आँखोंवाली मादा से



W=लाल आँखोंवाले प्रभावी पित्र्यक जो X-पित्र्यसूत्र में मिलते हैं।
w=श्वेत आँखोंवाले अपसारी पित्र्यक जो X-पित्र्यसूत्र में मिलते हैं।

चित्र नं० ११३

बार्ड राक (Barred rock) मुर्गा तथा ब्लैक आरपिंगटन मुर्गी का संकरण



लिंग के लिए नर में XX की तथा मादा में XY की बनावट होती है।
बार्स (Bars) के लिए X प्रभावी है। काले के लिए x अपसारी है।

एक दूसरे प्रकार का लिंग-ग्रथन होता है जिसमें मादा की बनावट XY पित्र्यसूत्रों की तथा नर की XX की होती है। ऐसा मुर्गे-मुर्गियों आदि में होता है, जैसा कि चित्र नं० ११३ में बार्ड राक मुर्गा तथा ब्लैक आरपिंगटन मुर्गी के संकरण में दिखलाया गया है।

लिंग-ग्रथित Y-पित्र्यसूत्र पित्रागति

न केवल यही दिखला दिया गया है कि लिग-ग्रथन मे गुण X-पित्र्यसूत्र में स्थित होते हैं परन्तु हाल में ही यह खोज की गयी है कि एक दूसरा तरीका भी है जिसमें Y पित्र्यसूत्र भी गुण का परिवहन करते हैं। इसे **लिंग-ग्रथित Y-पित्र्यसूत्र पित्रागति** कहते हैं। इसलिए अब यह नहीं माना जा सकता कि Y-पित्र्यसूत्र में पित्र्यक नहीं मिलते। वास्तव में पशुओं तथा पौधों में यह दिखलाया जा चुका है कि Y-पित्र्यसूत्रों में पित्र्यक मिलते हैं।[1]

Y-पित्र्यसूत्र में एक प्रभावी पित्र्यक केवल नरों को प्रभावित करेगा। ऐसे नर असामान्य गुण अपने वंश के नरों को देते जायँगे। मादा में Y-पित्र्यसूत्र न होने के कारण वह ऐसे गुण पारेषित नही कर सकती।

ऐसा प्रतीत होता है कि जुड़े हुए अँगूठे पित्रागति की इस विधि के कारण होते हैं जैसा कि पृ० २१२ के वंशक्रम[2] से ज्ञात होता है।

लिंग-ग्रथन की व्याख्या समाप्त करने के पूर्व हम लिंग-सीमित पित्रागति का कुछ वर्णन करेंगे जिसकी कुछ बातें लिंग-ग्रथन से सम्बन्धित हैं। स्टर्न[3] ने यह सुझाव दिया है कि Y-पित्र्यसूत्र में प्रभावी गुण का एक निरोधक पित्र्यक होता है। कुछ उदाहरणों में एक लिंग के व्यक्ति में ही किसी गुण के प्रकट होने का यही कारण होगा।

कोकेन ने बतलाया है[4] कि नर में लिंग-सीमित गुण प्रभावी हो सकता है परन्तु मादा में यह अपसारी होगा। इस प्रकार नर की DD बनावट में, जो कि प्रभावी तथा युग्मैक-

१. **ई० ए० कोकेन** (E. A. Cockayne), **'इनहेरिटेड एबनार्मेल्टीज आफ़ दि स्किन एण्ड इट्स एपेन्डेजेज', आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन, १९३३, पृष्ठ १६**

२. **आर० शोफील्ड** (R. Schofield), **जर्नल आफ़ हेरेडिटी, १९२२,** XII, ४००

३. **स्टर्न कर्ट** (Stern Curt), Biol. Zentralbl, १९२६, XLVI, ३४४

४. **कोकेन ई० ए०, पूर्वलिखित, पृष्ठ १८**

गुणी होगी, गुण की अभिव्यक्ति होगी तथा इसी प्रकार DR बनावटवाला, युग्मानेक-गुणी नर भी गुण को प्रकट करता है। जब कि युग्मानेकगुणी मादा (DR) तथा युग्मैकगुणी मादा अपसारी (RR) गुणों के कारण दोनों बिना किसी गुण के होंगी।

भेड़ों में सींगों की पित्रागति इसी प्रकार की मालूम होती है। कोकेन ने बतलाया है कि इन उदाहरणों में Y-पित्र्यसूत्र में कोई निरोधक पित्र्यक नहीं होता परन्तु एक पित्र्यक होता है जो दूसरे पित्र्यसूत्र के प्रभावी पित्र्यक को क्रियाशील कर देता है। उसने लड़कों के तारुण्य के समय माथे पर श्वेत बालों का गुच्छा दिखलाई देने को पित्रागति[1] की इस विधि का फल बतलाया है।

मनुष्यों में पित्र्यसूत्र इस प्रकार से मिलते हैं कि माता के XX तथा पिता के XY होते हैं। लड़कियों में परिणामतः अपनी माता की जैसी बनावट XX मिलती है, जिसमें एक पित्र्यसूत्र X अपनी माता का तथा दूसरा पिता का एकमात्र पित्र्यसूत्र X आ जाता है, जब कि लड़कों में XY मिलता है, इनका X पित्र्यसूत्र माता से आता है।

इसलिए एक बात ध्यान में रखनी चाहिए जो कि लिंग-ग्रथन से स्पष्ट हुई। लड़का अपने X-पित्र्यसूत्र के पित्र्यकों को अपनी माता के X-पित्र्यसूत्र से लेता है, जब कि लड़की अपने X-पित्र्यसूत्रों में से एक से सम्बन्धित सभी गुण अपने पिता के एक पित्र्यसूत्र से लेती है।

इसलिए जैसा कि कोकेन ने बतलाया[2] है, "इस साधारण कथन का कि लड़का अपनी माता को पड़ता है तथा लड़की अपने पिता को, वास्तव में कुछ आधार भी है।"

यह स्पष्ट है कि लिंग-ग्रथन मनुष्यों में इतना बार बार नहीं होता जितना कि ड्रोसोफीला में, क्योंकि मनुष्यों में केवल १० लिंग-ग्रथित गुण होते हैं जब कि ड्रोसोफीला में १५० गुण तथा मनुष्यों में जो गुण लिंग-ग्रथित नहीं हैं उनकी [जिन्हें स्वयं शरीर-सम्बन्धी (Autosomal) कहते हैं] तुलना में गुणों का परस्पर अनुपात यह है—

१. इस गुण का होना क्रियाशील पित्र्यक के कारण नहीं है जैसा कि कोकेन ने बतलाया है परन्तु यह एक असाधारणता के कारण है जो कि मादा में अपसारी तथा नर में प्रभावी है।

२. कोकेन ई० ए० (Cockayne E. A.), पूर्वलिखित, पृष्ठ २७

१ लिग-ग्रथित गुण . १७ अ-लिगग्रथित गुण है, जब कि ड्रोसोफीला मे यह अनुपात १ : १'७ है।[१]

क्रू[२] ने बतलाया है कि ड्रोसोफीला मे जितने गुण बतलाये गये है उनसे कही अधिक गुण पित्र्यक तथा पित्र्यसूत्र के लिग-ग्रथनहीन प्रबन्ध द्वारा पित्रागति से मिलते हैं।

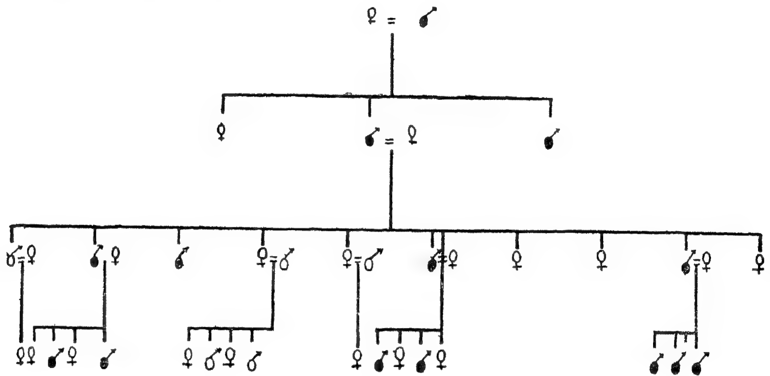
चित्र नं० ११४

Y–**पित्र्यसूत्र** (Y-Chromosome) **द्वारा लिंग-ग्रथित जुड़े हुए अँगूठे की पित्रागति**

♂=नर जुड़े हुए अँगूठेवाला (संकेत को भरा हुआ काला मानिए)

♂= नर साधारण अँगूठेवाला

♀= मादा साधारण अँगूठेवाली



इस वंशसूची में किसी मादा में असाधारणता नहीं है जो कि नर पित्र्यसूत्रों में होती है तथा नरों में ही पारेषित हो सकती है।

स्वभावतः जब कि पित्र्यसूत्र, लिंग का हो तब उसके ग्रथनसमूह को पहचानना अधिक सरल होता है, क्योकि तब लिंगग्रथन तुरन्त होता है। परन्तु अक्सर एक दूसरा पित्र्य-

१. **मारगन स्टर्टेवेन्ट एण्ड ब्रिजेज** (Morgan, Sturtevant and Bridges) **सेक्स लिक्ड इनहेरिटेन्स इन ड्रोसोफीला, कारनेगी इन्स्टीट्युट, वाशिंगटन, १९१६, प्रकाशन नं० २३७, तथा जेनेटिक्स आफ़ ड्रोसोफीला, बिबलियोग्राफिका जेनेटिका, १९२५,** ii, **कोकेन ई० ए०, पूर्वलिखित, पृष्ठ ४२–४३**

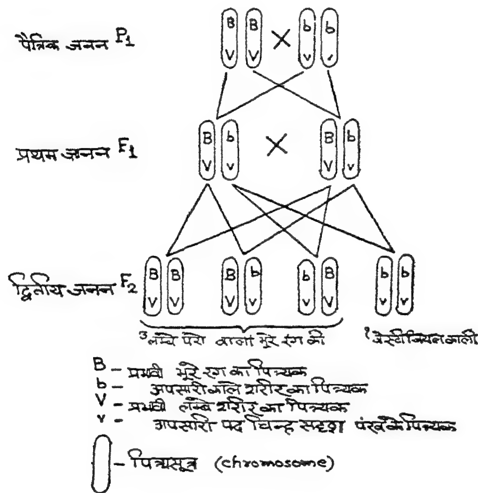
२. **क्रू, पूर्वलिखित पृष्ठ, १०१**

सूत्र समूह होता है जिसमें ग्रथित गुणों की संख्या अधिक हो सकती है। यह ड्रोसोफोल के काले शरीर के रंग से ग्रथित गुणों से स्पष्ट होता है।

पोमेस[1] मक्खी के काले-भूरे शरीररंग तथा लम्बे लुप्तप्राय पंख (वेस्टीजियल विंग) में, जहाँ दो कारक अथवा पित्र्यक एक ही पित्र्यसूत्र में होते हैं, क्या होता है, यह निम्न चित्र में दिखलाई पड़ता है।

चित्र नं० ११५

पोमेस (Pomace) मक्खी मे ग्रथन का उदाहरण



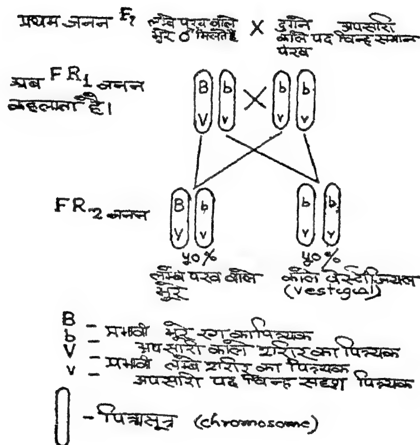
ग्रथन की परीक्षा के लिए तत्-संकरण (Back crossing)

ग्रथन की परीक्षा के लिए साधारण नियम है कि F_1 जनन का, अन्य अपसारी गुणों को दिखलानेवालों से (बैक क्रासिग) तत्संकरण किया जाता है। समझने के लिए अन्तिम उदाहरण को लिया जाय। एक लम्बे पंख के भूरे नर का [(VB) (vb)

१. क्रू, पूर्वलिखित, पृष्ठ १०२

बनावट वाला], ऐसी मादा से जिसके दोनों ही पित्र्यक गुण अपसारी हो, जैसे कि (vb) (vb) तथा जिसके काला शरीर तथा लुप्तप्राय पंख हों, संकरण किया जाता है। यदि संकरण से ५० प्रतिशत लम्बे पंखवाले भूरे तथा ५० प्रतिशत काले लुप्तप्राय पंख (वेस्टीजियल) प्रकार की उत्पत्ति होती है, तब यह स्पष्ट है कि यह गुण ग्रथित है। यह चित्र नं० ११६ में सरलता से देखा जा सकता है।

चित्र नं० ११६



यदि ग्रथन न होता तो २५%लम्बे पंखवाले भूरे, २५% लम्बे पखवाले काले, २५% लुप्तप्राय पंख भूरे तथा २५% लुप्तप्राय पंख काले FR_2 जनन मे मिलते, जैसा कि वास्तव मे लुप्तप्राय पंख भूरे तथा लम्बे पंखवाले काले का संकरण करने से होता है, जहाँ पर कोई ग्रथन नही मिलता। इसके परिणाम चित्र नं० ११७ मे दिखलाये गये है।

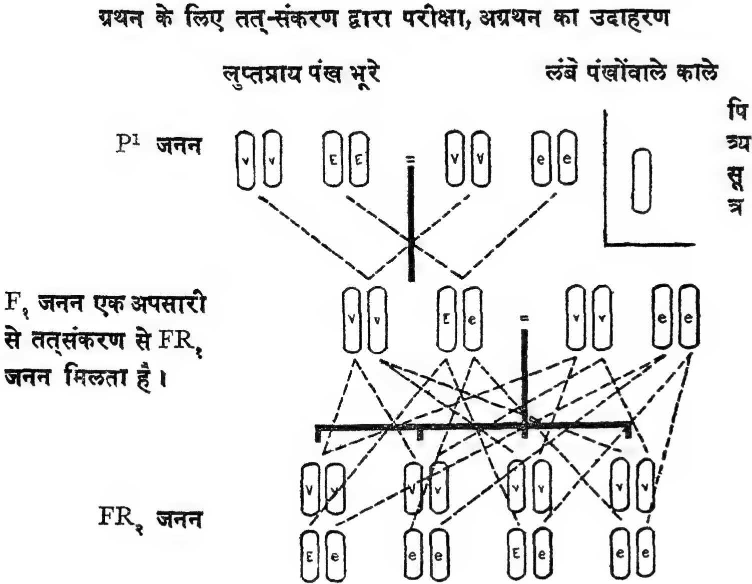
मनुष्य तथा जाति-विज्ञान के लिए इस सबकी आवश्यकता स्वयं-सिद्ध है तथा जैसे जैसे हम आगे बढ़ेगे यह अधिक स्पष्ट होती जायगी। परन्तु इस स्थान पर भी

यह बतलाया जा सकता है कि कोकेन[१] (Cockayne) के कथनानुसार मनुष्यों में निम्न ग्रथन देखे जा सकते हैं—

१. मोनीलेथ्रिक्स (Monilethrix) तथा काले बाल।

चित्र नं० ११७

ग्रथन के लिए तत्-संकरण द्वारा परीक्षा, अग्रथन का उदाहरण



२५% लम्बे पंखवाले भूरे २५% लम्बे पंखवाले काले २५% लुप्तप्राय पंख भूरे २५% लुप्तप्राय पंख काले

EE=प्रभावी धूसर रंग
ee =अपसारी काला रंग
VV=प्रभावी लम्बे पंखवाला
vv =अपसारी लुप्तप्राय पंख

१. कोकेन ई० ए० (Cockayne, E. A.), पूर्वलिखित, पृष्ठ २६

बारहवाँ अध्याय

व्यत्यसन (Croossing over) की कार्य-प्रणाली

वंशानुगति की क्रियाएँ काफ़ी जटिल होती जाती हैं परन्तु अभी तक वे सदैव बिलकुल ठीक तथा स्पष्टता के साथ कार्य करती पायी गयी हैं। जो हो, इस अवस्था में पित्र्य-सूत्रों (Chromosomes) का अध्ययन एक दूसरी समस्या उत्पन्न करता है, जो इनकी अपेक्षा कम नियमित है।

कोश (cell) में पित्र्यसूत्र, दो भागों में बँटकर दो कोश बनाने के पूर्व, एक साथ मिलते (या कांजूगेट, संयुक्त होते) हैं तथा फिर अलग अलग हो जाते हैं। इस क्रिया के होने में पित्र्यसूत्र गुथ जाते है तथा कभी कभी टूट जाते है, जैसा कि आगे दिये हुए चित्र में दिखलाई पड़ता है।

चूँकि अब हम यह जानते है कि यह विश्वास करने के सभी कारण है कि पित्र्यक प्रत्येक पित्र्यसूत्र में बिलकुल निश्चित स्थानों पर स्थित हैं, प्रसवन में मिलनेवाले अनुपातों पर उसका बड़ा बाधक प्रभाव पड़ने की सम्भावना है। चित्र में यह स्पष्ट है कि जब दो पित्र्यसूत्र परस्पर मिलते या संयुक्त हो जाते हैं (तथा कभी कभी टूट भी जाते है) तो सभी कुछ उनके टूटने के स्थानों पर निर्भर रहता है। संयोग के सम्भावित आकारों के प्रथम तथा दूसरे उदाहरण में पित्र्यसूत्रों के टूटने से परिणाम पर कोई भिन्न प्रभाव नही पड़ेगा। परन्तु अन्तिम सम्भावित उदाहरण में यह देख पड़ेगा कि टूटने की क्रिया सम्बन्धित पित्र्यकों के दो सेट (Vv तथा Bb) के बीच में होती है तथा वास्तविक व्यत्यसन हो जाता है। परिणाम यह होता है कि पित्र्यसूत्र Vb तथा vb पित्र्यकों सहित विभाजित होने के बजाय vB तथा Vb पित्र्यकों में विभाजित होते हैं।

इस स्थान पर यह कहा जा सकता है कि ड्रोसोफीला में यह व्यत्यसन केवल डिम्ब (ओवम) में ही देखा गया है तथा नरों को प्रभावित नहीं करता। वास्तव में व्यत्यसन की क्रिया होती है या ऊँचे प्रकार के जीवों से सचमुच उसका कोई सम्बन्ध होता है, इस विषय में अब भी प्रचुर अन्वेषण की आवश्यकता है।

ऊपर बतलाया हुआ उदाहरण लुप्तप्राय पंख (वेस्टीजियल) पोमेस मक्खी तथा धूसर लम्बी पंखोवाली के संयोग से उत्पन्न, व्यत्यसन से सम्बन्ध रखता है।

F_1 मादा की बनावट (BV) (bv) थी। इसका संग एक ऐसे नर से किया गया जिसमें दुगुने अपसारी गुण (bv) (bv) थे, तब बच्चे चार श्रेणियों में हुए। दो का कारण चमकीले रंग के पदार्थ (क्रोमाटिन) तथा पित्र्यसूत्र के उस भाग के एक जोड़ा पित्र्यक को मिलाकर आपस में बदल जाना हो सकता है। इस प्रकार के

चित्र नं० ११८

व्यत्यसन (CROSSING OVER) की कार्य प्रणाली

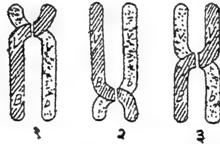
A प्रारंभिक पित्र्यसूत्र पिता से मिले हुए



B प्रारंभिक पित्र्यसूत्र माता से मिले हुए



सम्बद्धता -------------- टूट जाता है।



१ तथा २ – पित्र्यसूत्र का टूटना जिसमें कि ग्रथन V तथा B और v तथा b उसी स्थान पर जाते हैं।
३ – पित्र्यसूत्र का टूटना जिसमें कि एक V+B तथा v+b के स्थान में निर्माण होता है।

V+B प्रभावी पित्र्यक A पित्र्यसूत्र पर स्थापित
v+b अपसारी पित्र्यक B पित्र्यसूत्र पर स्थापित

[अनुबद्धता में नर तथा मादा पित्र्यसूत्र गुथ जाते हैं, फिर अलग अलग हो जाते हैं। कभी कभी एक दूसरे से चिपक जाते हैं, फिर अलग अलग नहीं हो पाते इसलिए टूट जाते हैं।

यह चित्र तीन प्रकार का टूटना दिखलाता है तथा एक पित्र्यसूत्र के एक टुकड़े से दूसरे में पित्र्यकों के बदलने की क्रिया दीखती है, इसी प्रकार पित्र्यकों का ग्रथन टूट जाता है।]

उदाहरणों की प्रतिशत संख्या १७ थी जिससे विदित होता है कि ६ में एक की सम्भावना मिलती है जिसमें कि पित्र्यसूत्रों के टूटने से पित्र्यकों का ग्रथन भंग हो जाता है। (क्रू, पूर्वलिखित, पृष्ठ ११३)

यह देखा गया है कि व्यत्यसन के अनुपात को बहुत ऊँचे या बहुत नीचे तापक्रम[1] से सम्बन्धित किया जा सकता है। यह हो सकता है कि प्रसवन की कृत्रिम रीति से सम्बन्धित दशाओं के कारण इन मक्खियों की प्रकृति में अनियमित विकास की वह प्रवृत्ति मिलती है जो साधारणतः कम पायी जाती है। इसलिए पशु तथा मानव-जनन में व्यत्यसन मिलने की पूरी सम्भावना होते हुए भी यह परिणाम निकलता है कि यह इस सीमा तक नही होता —या उच्च प्रकार के जीवों में ऐसा नही होता जो एक ही पित्र्यसूत्र में स्थित पित्र्यक गुणों के ग्रथन को भंग कर दे।[2]

मनुष्य में व्यत्यसन

यदि कोई पौधे तथा नीचे प्रकार के जीवों में व्यत्यसन के प्रश्न को भली-भाँति चित्रित करे, जैसा कि साधारण पाठ्य पुस्तकों में मिलता है, तो यह परिणाम न निकालना चाहिए कि मनुष्यों में ऐसा नहीं होता।

इसके विपरीत इसके अनेक उदाहरण है। पाठकों का ध्यान प्रोफेसर आर० रेगेल गेट्स के ह्यूमन जेनेटिक्स के दो जिल्दोंवाले ग्रन्थ[3] की ओर आकर्षित किया जाता है, जिसमें मानव वंशों में पित्रागति की असाधारणता के अनेक उदाहरण दिये गये है तथा जिनमें सचमुच व्यत्यसन हुआ है या इसकी शंका की जाती है।

हरे रंग का अंधापन तथा अधिरक्तस्राव (Haemaphila) से सम्बन्धित व्यत्यसन के सम्बन्ध में बेल तथा हल्डेन[4] ने जो अध्ययन किया है उससे यह प्रकट है कि इन दशाओं के पित्र्यकों का काफ़ी घनिष्ठ ग्रथन था जिसमे व्यत्यसन का भी तत्त्व सम्बद्ध था। यह ५ प्रतिशत के लगभग आँका गया था।

१. सी०बी०ब्रिजेज (C. B. Bridges), ए लिंकेज वेरियेशन इन ड्रोसोफीला, जर्नल आफ़ एक्सपेरिमेंटल जूलोजी, १९, पृष्ठ १, १९१५

२. संभावित उत्परिवर्तन (Mutation) तथा मनुष्य में भी होने की सम्भावना का कारण पारमाणविक विकिरण (Atomic radiation) बतलाया जाता है। इसकी व्याख्या आगे अधिक विस्तार से करेंगे। यदि वास्तव में ऐसा है तब यह व्यत्यसन मे टूटने के रूप में पित्र्यसूत्रों को काफ़ी प्रभावित कर सकता है।

३. मैकमिलन कम्पनी, न्युयार्क (New York), १९४६

४. जुलिया, बेल तथा जे० बी० एस० हल्डेन (Julia, Bell and J. B. S. Haldane), 'दि लिंकेज बिटवीन दि जीन्स फार कलर ब्लाइंडनेस एण्ड हेमोफीला इन मैन, प्रोसीडिंग्ज आफ़ द रायल सोसायटी, १९३७, १२३३, पृष्ठ ११९

पश्चिमी स्काटलैण्ड में रिडेल[1] (Riddel) के अधिरक्तस्राव तथा रंग के अन्धेपन के अनुसन्धान पर हल्डेन ने ४·५ प्रतिशत व्यत्यसन आँका है।

इन तथ्यों से स्पष्ट है कि मनुष्य में भी व्यत्यसन के ऊपर विचार करना चाहिए। यह हो सकता है कि जब असाधारण तथा जातिसम्बन्धी बेमेल गुण दिखाई दें तो यही तत्त्व उनका कारण हो। इस प्रकार से भूरे तथा काले केश, काली आँखों के साथ मिलते हैं तथा स्वर्ण-केश हलकी आँखवालों के साथ, हालाँकि काले केशों के प्रभावी होने पर वे हलकी आँखों के साथ उन क्षेत्रों में भी मिलते हैं जहाँ कि ऐटलाण्टिक जाति का प्रभाव नहीं है जिसमें यह असाधारण संयोजन मिलता है। इसलिए भूरी आँखों तथा स्वर्ण-केशों का होना व्यत्यसन का एक उदाहरण होगा, यदि केश तथा आँखों के रंग वास्तव में ग्रथित हैं।

ज्ञान की इस अवस्था में हम यह नहीं कह सकते कि यह ग्रथन वास्तव में होता है। परन्तु इससे सम्भावना होती है कि किसी समय भी मनुष्य में असमान प्रकारों की उत्पत्ति की व्याख्या व्यत्यसन द्वारा हो सकती है।

१. डब्लू० जे० बी० रिडेल (W. J. B. Riddel), हेमोफीला एण्ड कलर ब्लाइन्डनेस आर्कोरिंग इन दि सेम फेमिली, ब्रिटिश जर्नल आफ़ आपथैल्मिया १९३७, २१, पृष्ठ ११३, तथा ए हेमोफीलिक एण्ड कलर ब्लाइण्ड पेडिग्री, जर्नल आफ़ जेनेटिक्स, १९३८, ३६, पृष्ठ ४५

तेरहवाँ अध्याय

संकुचित तथा विस्तृत पित्र्यकों-सम्बन्धी अनेक कारकों पर अधिक विचार तथा बहुल भिन्न-युग्मों का विषय

अभी तक हमने कारकों अथवा पित्र्यकों के बारे में बतलाया है तथा हमने देखा है कि वे पित्र्यसूत्रों में मिलते हैं, जैसा कि पित्र्यकों के ग्रथन द्वारा प्रदर्शित किया गया है। परन्तु फिर भी हम वास्तव में स्वयं पित्र्यकों के विषय में कुछ नहीं जानते तथा साधारणतया उनके कार्यों के परिणामों भर को पहचान सकते हैं।

एक महत्त्वपूर्ण खोज यह है कि न केवल एक पित्र्यसूत्र में मिलनेवाले सम्बन्धित पित्र्यकों के कारण ग्रथन होता है बल्कि एक दूसरे प्रकार का ग्रथन होता है जिसमें एक पित्र्यक कई कारकों को नियन्त्रित करता है। इसलिए बहुत से उदाहरणों में बहुत से परिणामों का कारण एक पित्र्यक में पाया जा सकता है। क्रू[1] (Crew) का कथन है कि

"यदि प्रभाव के आधार पर देखा जाय तो एक पित्र्यक बहुधा शरीर के काफ़ी विभिन्न ढाँचों को प्रभावित करता है। उदाहरण के लिए अल्पविकसित पंखों के पित्र्यक पंखों के गुण के ऊपर पड़नेवाले प्रभाव के कारण पहचाने जाते हैं, परन्तु इस वर्ग को अधिक देखने से विदित होगा कि उससे अन्य स्थायी प्रभाव भी पड़ते हैं; पीछे के पैर जंगली प्रकार की मक्खी के पैरों से छोटे होते हैं, मादा पूर्ण रूप से वन्ध्या तथा इस वर्ग की जीवित रहने की शक्ति अपेक्षाकृत कम होती है......संतान की उत्पत्ति तथा पंखों के नमूने, दोनों उसी तथा एक ही पित्र्यक की क्रिया से प्रभावित रहते हैं।"

किसी अन्य स्थान में यह बतलाया गया है कि एकक गुण या इस तरह की कोई वस्तु नही होती जिसमें समस्त गुण एक साथ जुड़े होते हों तथा एक ही जैसा बर्ताव

१. क्रू (Crew), **पूर्वलिखित, पृष्ठ १३२**

करते हों। परन्तु एक ही पित्र्यक का जो अनेकविध प्रभाव होता है जिससे अनेक गुण परस्पर ग्रथित हो जाते हैं, वह छोटे पैमाने पर यही काम करता है। परिणामतः पित्र्यक के अनेक प्रभाव, साथ साथ उचित ग्रथन भी सदैव होते हैं (जिसका कारण कई पित्र्यकों का एक ही पित्र्यसूत्र में होना है)। इस ग्रथन से प्रसवन में विभिन्न गुण एक साथ बने रहते हैं।

एक पित्र्यक कई गुणों को नियन्त्रित करे, इसके विपरीत भी दशा मिलती है, जहाँ पर एक से अधिक पित्र्यक उन गुणों को नियन्त्रित करते हैं जो कि अनुभवहीन को एक ही समान लगते हैं। इस प्रकार से ड्रोसोफीला में हमें हलका काला, काला तथा आवनूस के समान काला; शरीर के ये रंग मिलते हैं जो समपित्र्यकों से नियन्त्रित रहते हैं। यह बिलकुल स्पष्ट है कि जब हम मनुष्यों के गुणों का अध्ययन करते हैं तब गुणों की उससे कहीं अधिक सुनिश्चित व्याख्या करना, जितनी कि अभी तक करते रहे हैं, बहुत आवश्यक है। इसका यह अभिप्राय नहीं कि सारे काले केश (उदाहरणार्थ) एक ही पित्र्यक से नियन्त्रित होते हैं, हालाँकि हम ऐसी ही धारणा बना लेंगे जब तक कि प्रमाण उसे गलत सिद्ध न कर दे।

अपूर्ण प्रभावी

अभी तक यह माना गया है कि जब एक प्रभावी का अपसारी से संकरण होता है, साधारण नियम के अनुसार एक संकरज के गुण सामान्य दशा में (जैसे कि यदि प्रभावी DD है तथा अपसारी RR, तब उसकी बनावट DR होगी) समरूपी अथवा DD आकार के होंगे। हमने देखा है कि ऐसा सदैव नहीं होता, इसी से नीले एंडालूसियन के मामले में प्रसंकर काले प्रभावी पित्र्यकों द्वारा अपूर्ण रूप से ही प्रभावित होता है।

यह विश्वास करने के कारण हैं कि एक साधारण प्रभावी पित्र्यक के कारण बाह्य समरूप में जो पूर्ण प्रभाव माना जाता है वह केवल देखने में ऐसा है, वास्तव में नहीं। दूसरे शब्दों में, ठीक से देखने पर बहुधा पता चलेगा कि प्रभाव अपूर्ण है, उतना ही जितना कि नीले एंडालूसियन में, भले ही यह उतना स्पष्ट न हो। इसलिए गुण के प्रकटीकरण में अन्तर होता है, चाहे यह समझना इस दृष्टि से कितना ही कठिन हो कि प्रभावी पित्र्यक साधारण अथवा दोहरी (डूप्लेक्स) दशा में है। यह दिखलाया जा चुका है[1]

१. एफ़० ई० लुज (F. E. Lutz), एक्सपेरीमेन्ट्स कन्सर्निंग दि सेक्सुअल डिफ-रेन्सेज इन दि विंग लेंग्थ आफ ड्रोसोफीला एम्पीलोफीला, जर्नल एक्स, जूलोजी, १४, पृष्ठ २६७, १९१३

कि यदि लम्बे पंखोंवाली ड्रोसोफीला में ठीक माप लिया जाता जो कि छोटे पंखों की अपेक्षा प्रभावी है, तब युग्मानेकगुणी से युग्मैकगुणी का अन्तर दिखाना सम्भव होता।

नीले एंडालूसियन में अनेक कारक

जैसा कि नीले एंडालूसियन में हम पहले देख चुके हैं वह प्रभावी और अपसारी तथा युग्मानेकगुणी दशाओं से उत्पन्न प्रसंकर का साधारण उदाहरण बतलाया गया था परन्तु यह सम्भवतः कहीं अधिक जटिल है। नीले एंडालूसियन का मामला उससे सम्बन्धित काफी विस्तृत संपरीक्षण किये जाने के पश्चात्, इतना सीधा-सादा सा प्रतीत होता था तथा वह अवश्य ही अपनी बनावट[1] की इस सरल परिभाषा के अनुसार ही कार्य करती है, जिससे यही समझा जा सकता था कि इसके आगे कुछ और कहने की आवश्यकता नही, परन्तु अब ऐसा विश्वास है कि उसके साथ ही एक अन्य युग्मकोश (जाइगोट) है[2] और हम एक दोहरे प्रसंकर की चर्चा कर रहे हैं।

विस्तृत तथा संकुचित कारक—उनका जाति-विज्ञान से सम्बन्ध

जो सिद्धान्त अब उत्पन्न होता है वह जाति-विज्ञान के लिए कुछ महत्त्व का है क्योंकि इससे हरी तथा हलकी भूरी आँखों में अधिकांश भूरा रंग पाये जाने की व्याख्या भली भाँति हो जाती है। उससे यह भी अनुमान होता है कि रंग के कारक के साथ ही एक दूसरा सेट है जो सारे शरीर में रंग के विस्तार से सम्बन्धित है तथा एक वह है जो उसके विकास को सीमित करने में प्रभाव डालता है। इसके अलावा यह भी प्रकट होता है कि अन्तिम दोनों साथ ही जुड़े (ग्रथित) हैं। ये सम्भवतः एक ही पित्र्यसूत्र में मिलते हैं और जो भी हो, यह सूचित करने के लिए कि पित्र्यसूत्र एक ही प्रकार के हैं, कोष्ठचिन्हों का प्रयोग करना सुविधाजनक होगा, क्योंकि उनका व्यवहार वही

१. **डब्लू० बेटसन तथा ई० आर० साण्डर्स** (W. Bateson and E. R. Saunders), **रिपोर्ट टु दि इवोल्यूशन कमेटी आफ़ दि रायल सोसाइटी, रिपोर्ट** I, **रायल सोसाइटी** (Royal Society), **पृष्ठ,** I.

२. **डब्लू० ए० लिपिन्कोट** (W. A. Lippincott), **दि केस आफ़ दि ब्लूड एंडालूसियन,** (Amec Nat.), **१९१८, ५२, पृष्ठ ९५, फर्दर डेटा आन दि इनहेरिटेन्स आफ़ ब्लूड इन पोल्ट्री,** (Amer Nat). **१९२१, ५४, पृष्ठ २८९, जीन्स फार दि एक्सटेन्शन आफ़ ब्लैक पिगमेन्ट इन दि चिकेन** (Amer Nat). **१९२३, ५७, पृष्ठ २८४**

है जैसा कि ऐसा होने पर होता। परिणामतः काले कुक्कुट की बनावट में (PP) रंग तथा एक पित्र्यसूत्र में r (रंग की रोक का अपसारी) और E (सम्पूर्ण शरीर में रंग के विस्तार का कारक) होता है। दूसरे पित्र्यसूत्र में वही बनावट मिलती है—इसलिए चिह्नरूप में काला पक्षी PP (rE) (rE) हुआ।

श्वेत (चित्तीदार) पक्षी में भी जो कि नीले एंडालूसियन के माता-पिता में से दूसरा है, रंग का कारक P है परन्तु विस्तार (E) का नहीं तथा उसका अपसारी e है। रंग को संकुचित करने के लिए कारक (R) मिलता है। इससे बनावट हुई, PP (Re) (Re)।

इसलिए प्रसंकर, नीला एंडालूसियन, PP (Re) (rE) होगा।[१]

श्वेत लेगहार्न तथा श्वेत डार्किंग के संकरण की व्याख्या करते समय हमने रंग के निरोधक कारक की क्रिया पर भी विचार किया है। संकुचित तथा विस्तृत पित्र्यकों के साथ भी यह कारक रह सकता है। इस प्रकार श्वेत लेगहार्न पक्षी वास्तव में रंग-वाला है परन्तु इसमें उसके विकास को रोकनेवाला कारक है। साथ ही स्पष्ट रूप से उसमें रंग के विस्तार का भी कारक होता है जो कि रोकनेवाले कारक का पूर्ण रूप से अपसारी है, इसलिए उसकी बनावट है 11 PP (rE) (rE)।

मनुष्यों के साफ़ रंग में सदैव इस तरह के रंग के निरोधक कारक (I) के होने की सम्भावना है जो कि प्रभावी है तथा उसका अपसारी (i) पित्र्यक है जो कि रंग के विकास में सहायक है।

१. निम्नलिखित नस्लों की बनावट निम्न प्रकार की समझी जाती है—

श्वेत व्यानडोट (Wyandotte)	PP (rE) (rE)
श्वेत प्लाईमाउथ रॉक (Plymouth Rock)	PP (rE) (rE)
काली एंडालूसियन (Andalusian)	PP (rE) (rE)
नीली एंडालूसियन	PP (Re) (rE)
नीली धब्बेदार एंडालूसियन	PP (Re) (Re)
काली लैंगशौन (Langshan)	PP (rE) (rE)
नीली ऑरपिंगटन (Orpington)	PP (Re) (rE)
श्वेत लेगहार्न (Leghorn)	PP (rE) (rE)
नीली लेगहार्न	PP (Re) (rE)

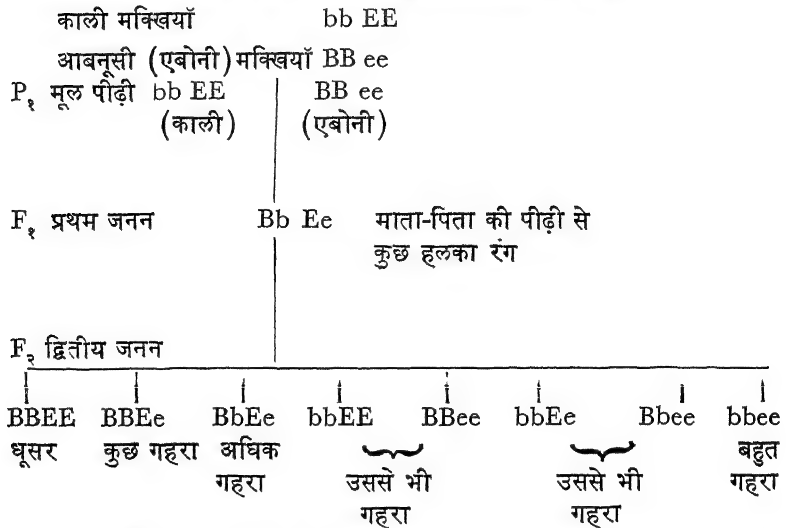
निरोधक कारक तथा मनुष्य के केशों के रंग से उनका सम्बन्ध

साधारण रूप से ऐसा माना जाता है कि स्वर्णकेश तथा भूरे केशों के विभिन्न प्रकार एक ही हैं। हाल के ही वर्षों में यूरोपीय देशो के अन्वेषकों ने पूर्वी बाल्टिक

चित्र नं० ११९

ड्रोसोफीला (Drosophila) मे रंग की पित्रागति

निम्न प्रकार की दो काली मक्खियों का साथ किया गया है।



[**टिप्पणी—F_1 जनन में सम्भावित नियम से विभिन्नता मिलती है क्योंकि माता-पिता के रंग से कुछ हलका रंग है।**

एक से अधिक कारक काम करते हैं, यह इस बात का प्रमाण है।]

जाति तथा नार्डिक जाति के स्वर्ण-केशों में निश्चित विभिन्नता दिखलायी है, जो ठीक ही है। इन्हें इस रचना में हम क्रमशः प्लेटिनम तथा स्वर्ण-केश (Blond) कहते हैं। इस विभिन्नता का कारण यह बताया जा सकता है कि प्रथम उदाहरण में निरोधक कारक है जिसकी क्रिया से ऐसा होता है।

जैसा कि हमने पहले भी कहा है, यह काफ़ी सम्भव है कि ऐटलाण्टिक, अल्पाइन, डाइनारिक, आर्मीनायड, सुडेटिश जातियों के तथा मंगोलायड और निग्रायड समूह

आदि मनुष्य के कुछ वर्गों में पाये जानेवाले सभी भूरे रंग के गुणों को जननिक दृष्टि से समान कहना गलत हो। यह निष्कर्ष सत्य भी हो सकता है, इसका आभास क्रू द्वारा दिये गये मक्खियों के साधारण काले रंग के विवरण[1] में मिलता है। उसने बतलाया है कि एक जंगली प्रकार की मक्खी धूसर (ग्रे) शरीर की (BB) होती है। किन्तु सामान्य मक्खी (bb) का रंग अधिक काला होता है। इन दोनों का संकरण (B+b) है जिसमें दोनों माता-पिता के रंग का मध्यम रंग मिलता है, जैसी कि हम आशा कर सकते हैं। काले रंग की एक किस्म वह भी होती है जिसे हम एबोनी (आवनूस) ee कहते हैं तथा इन्हीं चिन्हों का प्रयोग करके हम भूरी जंगली मक्खी को EE से सूचित करते हैं। इस तरह इस प्रकार की मक्खियों में कालेपन के दो कारक हैं तथा दोनों ही उदाहरणों में अपसारी गुणोंवाले हैं। इसलिए काली मक्खी, जिसमें कि एबोनी (EE) के नहीं बल्कि कालेपन (bb) के गुण हैं, bb EE है, जब कि एबोनी रंग की मक्खी इसके विपरीत BB ee है।

इन दोनों के संकरण से F_1 पहली पीढ़ी Bb Ee हो जाती है जिसमें साधारण दशा में कालेपन के दो कारक हैं तथा बिना किसी आश्चर्य के, माता-पिता में से प्रत्येक के रंग से कुछ गहरे रंग के प्रकार मिलते हैं। परन्तु जब इस जनन (पीढ़ी) का अन्तः-प्रसवन होता है तथा F_2 पीढ़ी की उत्पत्ति होती है, तब यह स्पष्ट है कि पुनःसंयोजन में कुछ ऐसे परिणाम निकलेंगे, जो यदि हमारे सम्मुख मेण्डल का सिद्धान्त न हो तो, बहुत ही अनपेक्षित होंगे।

इस प्रकार से BB EE पित्र्यकवालों में कालेपन के कारक नहीं होते इसलिए वे धूसर रंग के होंगे, जब कि bb ee संयोजनवालों में, जो कि दूसरे सिरे पर होंगे, प्रत्येक व्यक्ति अपने प्रारम्भिक माता-पिता की अपेक्षा अधिक गहरे रंग का होगा। पहले दिये हुए चित्र[2] नं० ११९ से यह बात स्पष्ट हो जाती है।

ऊपर दिये हुए चित्र के तथ्यों से एक नियम बनाया जा सकता है, वह यह कि जब प्रसवन की प्रथम पीढ़ी (F_1) में सम्भावित नियम से कुछ परिवर्तन मिले तथा दूसरी पीढ़ी (F_2) में और भी अधिक परिवर्तन हो तो उस गुण से केवल एक कारक या एक जोड़ा पित्र्यक का ही सम्बन्ध न समझना चाहिए।

१. क्रू, पूर्वलिखित, पृष्ठ १३८–१३९

२. क्रू द्वारा

बहुविध भिन्नयुग्म (Allelomorphs)

अब हम भिन्न-युग्मों पर विचार करेंगे। यह दिखलाया[१] जा चुका है कि कभी किसी गुण में, जैसे रक्त-लोचनत्व में, न केवल श्वेत-लोचनत्व का भिन्न-युग्मिक गुण पाया जाता है परन्तु अन्य बहुत से रंग भी, जो कि लाल के विकल्प हे। ऐसा कहा गया है कि इसका आशय यह है कि चमकीले पदार्थ (क्रोमैटिन) में कुछ परिवर्तन उस समय होता है जब कि सम्बन्धित पित्र्यसूत्र में श्वेत आँखों का रंग उत्पन्न करनेवाला पित्र्यक उत्पन्न होता है। परिणामतः श्वेत रंग की उत्पत्ति करने के बजाय परिवर्तन की सीमा के अनुसार, वह चमकीला लाल, हलका पीला, श्वेत, गुलाबी इत्यादि रंग उत्पन्न कर सकता है। यह देखा गया है कि यह बहुविध भिन्न-युग्मिक दशा अन्यों की अपेक्षा कुछ गुणों से अधिक सम्बन्धित पायी जाती है। चूहे में यह निश्चित किया जा चुका है कि धूसर, श्वेत, पीले तथा काले रंग बहुविध भिन्न-युग्म हैं तथा खरगोश में यह हिमालयन, सर्वश्वेत तथा स्वयं अपने रंग के तीन प्रकार के होते हे।

इसलिए, उदाहरणार्थ, रंग ऐसे पदार्थों को प्रभावित करने में रंग से सम्बद्ध केवल साधारण प्रभावी की स्थिति काफ़ी नहीं होती, परन्तु रंग के निरोध, विस्तार व संकोच तथा बहुविध कारक के प्रश्न भी सम्बद्ध हैं जहॉ एक से अधिक पित्र्यक की स्थिति या एक से अधिक पित्र्यसूत्र सम्बन्धित है। साथ ही भिन्न-युग्मों की सम्भावना का प्रश्न भी है जहाँ पर एक ही पित्र्यक के दूसरे रूपों में रंगों की अलग-अलग तर्जों का सम्बन्ध मिलता है।

इसमें से कितने कारक मनुष्य में क्रियाशील है यह कहना कठिन है परन्तु इस तथ्य से कि एक अथवा अन्य दशा में वे अन्य प्रकार के जीवों में मिलते है, यह विदित होता है कि मनुष्य के रंग को निर्धारित करनेवाले कारक कितने जटिल हो सकते हे।

यह बात, जिसकी चर्चा पहले मक्खियों के शरीर के भूरे, एबोनी तथा काल रग की व्याख्या के समय की जा चुकी है, स्पष्टतर होती जाती है कि बहुधा एक गुण की उत्पत्ति में एक से अधिक पित्र्यक सम्बन्धित होते है। मक्खियों की आँखों के रंग में यही बात होती है, जैसा कि ड्रोसोफीला मेलानोजास्टर में दिखलाया जा चुका है कि लगभग २५ जोड़े पित्र्यकों का इससे सम्बन्ध होता है। मनुष्यों की आँखों के रंग के सम्भावित

१. क्रू, पूर्वलिखित, पृष्ठ १४२

आधार को बतलाने का जो प्रयत्न हमने आगे किया है, उससे भी यह स्पष्ट हो जाता है कि एक जोड़े से अधिक पित्र्यक सम्बन्धित हैं। चूँकि मनुष्यों का मक्खियों की भाँति अध्ययन नहीं किया जा सकता, हमारे परिणामों का थोड़ा बहुत अपूर्ण रहना स्वाभाविक है, इसलिए हम कुछ ही कारकों को निर्धारित कर सके हैं। यह बहुत सम्भव है कि आँखों के रंगों के प्रत्येक गुण की उत्पत्ति में एक के स्थान पर अनेक पित्र्यकों का योगदान होता हो। इसका पक्का निश्चय अभी और अनेक वर्षों के संपरीक्षण से ही किया जा सकता है। तिस पर भी यह अनुमान सम्भवतः अथवा बहुलांश में, ज्ञान की और वृद्धि के कारण होनेवाले संपरिवर्तनों के बाद भी ठीक होगा, क्योंकि यह सब उन सिद्धान्तों पर आधारित है जो कि ड्रोसोफीला **मेलानोजास्टर** में स्पष्ट रूप से कार्यान्वित हैं।

यह पूर्ण स्पष्ट है कि ये नियम अवश्य ही मनुष्य में क्रियान्वित होने चाहिए जिनके साधारण सिद्धान्तों की व्याख्या हमने अभी की है तथा जो अधिकतर जीवन को नियन्त्रित करते देखे जाते हैं तथा जिन कुछ प्रमाणों को हमने बतलाया है उनसे उनकी क्रिया की स्पष्ट रूप से पुष्टि हो सकती है। इसलिए, जैसा कि हमने पहले बतलाया है, मानव जातियों के हमारे अध्ययन में जाति-विज्ञान के जननिक आधार की अवहेलना नहीं की जा सकती तथा इसके किसी भी विद्यार्थी को, जननिक सिद्धान्तों का अध्ययन, मानव-विज्ञान पर उन्हें लागू करने के पूर्व कर लेना आवश्यक है।

चौदहवाँ अध्याय

उत्परिवर्तन, विभासन (Irradiation) पर कुछ टीका-टिप्पणी तथा उत्परिवर्तन पर उसका प्रभाव

पिछले अध्याय में बहुविध भिन्न-युग्मों (एलेमार्फ्स) की व्याख्या करते समय यह बतलाया गया था कि एक ही पित्र्यक में जो वैकल्पिक गुणों की उत्पत्ति होती थी, वह चमकीले पदार्थ (क्रोमैटिन) की बनावट में परिवर्तन के कारण थी।

जब इस प्रकार का परिवर्तन हो तब उसे उत्परिवर्तन (म्यूटेशन) कहेंगे। इस प्रकार का कोई भी परिवर्तन जब पित्र्यसूत्र में चमकीले पदार्थ के रासायनिक स्वरूप में होगा तब अवश्य ही वह भी उसी तरह उत्परिवर्तन होगा। हालाँकि हम सोच सकते हैं कि पित्र्यकों (Genes) की रासायनिक बनावट में नियन्त्रित तथा आकस्मिक परिवर्तन से ही उत्परिवर्तन होते हैं, फिर भी यह ध्यान में रखना चाहिए कि व्यत्यसन के कारण, जिसकी व्याख्या हमने अभी की है, जो परिवर्तन होते हैं, वे भी एक अर्थ में उत्परिवर्तन ही हैं, क्योंकि वे नये प्रकार के पित्र्यसूत्रों की उत्पत्ति करते हैं तथा जहाँ सम्बन्धित पित्र्यक बहुविध कारकों के अंश हैं, प्रकारों के बदल देने में उनका काफ़ी प्रभाव पड़ सकता है।

फिर भी, रासायनिक परिवर्तनों के कारण होनेवाले उत्परिवर्तन सहज रूप स नहीं बल्कि क्वचित् ही होनेवाली घटना हैं और उनकी वास्तविक दशा का ज्ञान हमें नहीं है। जब उत्परिवर्तन एक बार हो जाता है तब सहज गुण की भाँति वह पूर्णरूप से स्थायी अस्तित्व बन जाता है। उत्परिवर्तन क्वचित् ही होते हैं फिर भी पित्र्यसूत्रों की किन्हीं स्थितियों में, अन्यों की अपेक्षा वे अधिक मिलते हैं।

स्वभावतः उत्परिवर्तन अपने गुण तथा प्रभाव में काफ़ी भिन्न होते हैं परन्तु जननिक शास्त्रियों के अनुसार साधारण सिद्धान्त यह है कि बड़े परिवर्तनों से सम्बद्ध उत्परिवर्तनों की अपेक्षा वे अधिक होते हैं जिनके गुणों में थोड़ा परिवर्तन होता है।

उत्परिवर्तन एक से अधिक गुणों को प्रभावित कर सकता है

यह भी देखा गया है कि जब उत्परिवर्तन होता है, वह केवल एक ही गुण को प्रभा-

वित नहीं करता। इस प्रकार ड्रोसोफीला में ऐसा प्रतीत होता है कि उत्परिवर्तन के किसी निश्चित परिणाम के साथ-साथ छोटे पंख तथा वक्ष-देश में कुछ उठा हुआ भाग भी मिलता है। यह स्वयं ही आश्चर्यजनक नहीं है क्योंकि ऐसा विश्वास करने के सभी कारण हैं कि कुछ पित्र्यक एक गुण से अधिक को नियन्त्रित अथवा प्रभावित करते हैं।

उत्परिवर्तन की प्रवृत्ति अपसारिता की ओर होती है

उत्परिवर्तन में अपसारी होने की प्रवृत्ति होती है तथा साथ ही साधारणतया यह घातक भी होता है, कम से कम ड्रोसोफीला ऐसे जीवित जीवों के सम्बन्ध में यही परिणाम निकाला जा सकता है।

उत्परिवर्तन में घातक प्रवृत्ति

डा० रोजर पिल्किंगटन[1] इस मत के विशेष समर्थक हैं, यदि हम हाल में ही अखबारों में प्रकाशित उनके लेख को देखें, जहाँ उन्होंने लिखा है—

"लगभग सभी ज्ञात उत्परिवर्तन हानिकारक हैं, कुछ ही ऐसे हैं जिन्हें बहुत हुआ तो हम अहानिकर कह सकते हैं, पर अधिकांश घातक होते हैं। दोहरे अपसारी तथा लिंग-ग्रथित (Sex-linked) घातक उत्परिवर्तन ही प्रारंभिक भ्रूण के बहुधा नष्ट हो जाने का कारण है। बहुत से उत्परिवर्तन अपसारी भी होते हैं इसलिए उनका प्रभाव तब तक ज्ञात नहीं होता, जब तक अनेक पीढ़ियों बाद कोई क्षति नहीं हो जाती।[2]

ये विचार बहुत ज़ोर देकर व्यक्त किये गये हैं तथा प्रत्येक को मान्य नहीं हो सकते।

अवश्य ही इस समय यह एक विवादास्पद समस्या है और अणु-शक्ति से सम्बन्धित भौतिक-शास्त्री, जीव-वैज्ञानिक तथा अन्य लोगों की अपेक्षा, इस तर्क से कम ही प्रभावित होते हैं। यह लिखते समय इस बात की सत्यता जानने के लिए कुछ गम्भीर अनुसन्धान किये जा रहे हैं।

१. Dr. Roger Pilkington

२. **हाइड्रोजन बम का जननिक प्रभाव** 'Genetic effects of the H. Bomb' **टाइम एण्ड टाइड** 'Time and Tide' **लन्दन, मई, १९५५, पृष्ठ ५९१**

हमारी स्वय की भावना यह है कि जो लोग सतर्क होने के लिए कहते हैं वे इससे सतुष्ट या प्रसन्न होनेवालो की अपेक्षा सत्य के अधिक निकट हैं, क्योकि सामान्यत, जैसा कि हम देखते हैं, उत्परिवर्तन अधिक बार घातक प्रवृत्तियो से सम्बन्धित होते हैं।

उत्परिवर्तन तीन प्रकार के हो सकते हैं।

जन्यव (Gametic) उत्परिवर्तन

जन्यव वह है जब माता-पिता मे से एक के जन्यु (गैमीट) मे उत्परिवर्तन होता है, इसलिए वह युग्मकोश के केवल उस भाग मे मिलता है जो उक्त माता या पिता से प्राप्त होता है।

युग्मिक उत्परिवर्तन

युग्मिक उत्परिवर्तन वह है जो निषेचन के तुरन्त बाद होता है तथा युग्मकोश (जाइगोट) के दोनो जन्युओ को प्रभावित करता है। यहाँ उसका प्रभाव केवल व्यक्ति मे दिखलाया गया है, जब कि जन्यव मे यदि वह अपसारी उत्परिवर्तन है, यह स्पष्ट नही है परन्तु वह बाद की पीढियो मे प्रकट होगा, जब सयोगवश दो अपसारी गुणो के व्यक्ति एक दूसरे का सग करेंगे।

शरीरसम्बन्धी (सोमैटिक) उत्परिवर्तन

एक तीसरे प्रकार का उत्परिवर्तन होता है जो कुछ महत्त्व का सिद्ध हो सकता है। यह शरीरसम्बन्धी है तथा इसका कीटाणुकोश पर कोई प्रभाव नही पडता, क्योकि इसका सम्बन्ध केवल शरीरसम्बन्धी कोशो से रहता है और इसलिए अपना प्रभाव यह केवल शरीर पर ही दिखलाता है। इस शरीरसम्बन्धी उत्परिवर्तन से बेतुकी वस्तुओ इत्यादि की उत्पत्ति होती है।[१] इसलिए प्रत्येक असाधारण रूप को जननिक उत्परिवर्तन बतलाने के सम्बन्ध मे सावधान रहना चाहिए, जब तक कि उसके परिणाम प्रसवन द्वारा न देख लिये जायँ।

१. शरीरसम्बन्धी उत्परिवर्तन की कुछ ऐसी घटनाएँ हैं जो जननग्रन्थि के तन्तुओं को प्रभावित करती हैं तथा इनसे उसका योगदान पित्रागति की ओर रहा है। कहाँ तक ये इस दशा में सचमुच शरीरसम्बन्धी उत्परिवर्तन समझे जा सकते हैं, यह संदेहास्पद है।

उत्परिवर्तन का मनुष्य से सम्बन्ध

यदि हम कुछ जाने हुए उत्परिवर्तनों पर विचार करें तो उत्परिवर्तन का मनष्य से सम्बन्ध तुरन्त ज्ञात हो जायगा।

नीग्रो लोगों में इतरजायती दशा

उदाहरणार्थ कोकेन ने बतलाया है कि नीग्रो लोगों (हब्शियों) में इतरजातीय दशा, जो बहुत कम देखी जाती है, उन सभी उदाहरणों में, जिनका अध्ययन किया गया है[1], उत्परिवर्तन के कारण है।

अधिरक्तस्राव (Haemophilia) के लिए उत्परिवर्तन

अधिरक्तस्राव में पित्र्यक के उत्परिवर्तन का एक और उदाहरण मिलता है। यह एक बीमारी है जिसमें रक्त के जमने का गुण समाप्त हो जाता है, इस कारण वह बहा करता है। मनुष्य में रक्त के जमने के लिए एक कारक होमा स्वाभाविक है। परन्तु कुछ अभागे व्यक्तियों में X पित्र्यसूत्र पर स्थित यह पित्र्यक, जो कि लिंग से भी सम्बन्धित है, स्वाभाविक रूप से अपना कार्य बन्द कर देता है, इसलिए शरीर में इस प्रकार की प्रक्रिया उत्पन्न नहीं करता जिसका कार्य रक्त को जमाना है। चूँकि एक पित्र्यक के उत्परिवर्तन के कारण रक्त का जमना बन्द हो जाता है, (जो कि अधिरक्तस्राव की दशा है) अतः स्पष्ट है कि असामान्यता का पारेषण होता है। जिन व्यक्तियों में अधिक स्राव के पित्र्यक मिलते हैं उनमें से एक-तिहाई नर तथा दो-तिहाई मादा पित्र्यक होते हैं। यह इसलिए है कि XX पित्र्यसूत्र में उत्परिवर्तन से अधिरक्तस्राव होता है और पुरुषों में केवल एक ही X पित्र्यसूत्र तथा स्त्रियों में दो होते हैं। अधिरक्तस्राव वाले मनुष्यों में से लगभग एक-चौथाई प्रत्येक पीढ़ी में प्राकृतिक चुनाव द्वारा नष्ट हो जाते हैं।[2] परिणामतः अधिरक्तस्राव आज पूर्णतया समाप्त हो जाता यदि समय समय पर उत्परिवर्तन द्वारा उसका पुनर्निर्माण न होता। हल्डेन[3] का कथन है कि जनसंख्या में

१. जे० बी० एस० हल्डेन (J. B. S. Haldane), हेरेडिटी एण्ड पालिटिक्स, १९३८, पृष्ठ ६९

२. जे० बी० एस० हल्डेन (J. B. S. Haldane), हेरेडिटी एण्ड पालिटिक्स १९३८, पृष्ठ ६९

३. जे० बी० एस० हल्डेन (J. B. S. Haldane), पूर्वलिखित, पृष्ठ ७२

अधिरक्तस्राव की आवृत्ति से पता चलता है कि लगभग ५० सहस्र पीढ़ियों में एक बार X पित्र्यसूत्र का एक स्वाभाविक पित्र्यक उत्परिर्वातित होकर अधिरक्तस्राविक हो जाता है। अमेरिका के कुछ आँकड़ों से पता चलता है कि यह कुछ अधिक बार होता है।

उत्परिवर्तन बहुत कम होते हैं

इसलिए यह स्पष्ट है कि प्राकृतिक चुनाव के प्रभाव के कारण कुछ बीमारियाँ पूर्णतः नष्ट हो जातीं, यदि उत्परिवर्तन न होता, जिसके कारण जनसंख्या में वह फिर से उभड़ आती हैं। फिर भी ये उत्परिवर्तन सामान्यतः बहुत कम होते हैं।

प्राकृतिक चुनाव द्वारा घातक उत्परिवर्तनों का अन्त

कुछ घटनाओं में उत्परिवर्तनों का प्रभाव, जहाँ वे प्रभावी हानिकारक गुण उत्पन्न करते हैं, प्राकृतिक चुनाव द्वारा दूर हो जाता है। प्रकृति उत्परिवर्ती गुणों पर तुरन्त प्रभाव डाल सकती है जिससे समरूपता मिलती है। फिर भी जहाँ पर उत्परिवर्तन का सम्बन्ध एक अपसारी पित्र्यक से होता है, जैसा कि आसानी से समझा जा सकता है, प्रकृति बीमारी या खराबीवाले वर्ग को नष्ट करने में इतनी शीघ्रता नहीं करती, क्योंकि प्राकृतिक चुनाव का कार्य तभी होता है जब कि अपसारी गुण समरूप में सतह के ऊपर आ जाता है।

इस प्रकार बालकों की नेत्रशक्ति-सम्बन्धी दुर्बलता के उदाहरण में, जहाँ पर पित्र्यक अपसारी है, युग्मानेकगुणी व्यक्ति, जिनमें बीमारी का अपसारी गुण विद्यमान हो तथा जो स्वाभाविक पित्र्यक द्वारा दबा या छिपा रहता है, अपने बाहरी आकार (बाह्यसमरूप-Phenotype) में बीमारी को नहीं दिखलायेंगे। परिणामतः इसमें तथा ऐसे ही अन्य उदाहरणों में प्राकृतिक चुनाव प्रभाव नहीं डाल सकता, जब तक कि युग्मैकगुण (समयुग्मिक, होमोजाइगस) दशा में असामान्यता नहीं प्रकट होती। इस बीमारी में जब कि एक ही मनुष्य में दो अपसारी पित्र्यक मिलते हैं, जिस स्थिति में वह मूर्ख होगा, तभी प्राकृतिक चुनाव अपना कार्य आरम्भ कर सकता है। इस प्रकार प्राकृतिक चुनाव, प्रभावी उत्परिवर्तनों की अपेक्षा, अपसारी उत्परिवर्तनों को हटाने में अधिक सुस्त है।

मनुष्य में उत्परिवर्तन के उदाहरण

कोकेन[1] ने शरीरसम्बन्धी उत्परिवर्तन को लेकर मनुष्य में उत्परिवर्तन के अनेक

१. **ई० ए० कोकेन** (E. A. Cockayne) **पूर्वलिखित, पृष्ठ ३४**

उदाहरण दिये हैं। शरीरसम्बन्धी में मैरी सीले[1] का उदाहरण है जो लगभग ८ वर्ष की बच्ची थी तथा जिसका पिता भूरे रंग का और माता श्वेत रंग की थी। उसके चेहरे का रंग काला था तथा उसके सिर के एक भाग में लम्बे काले केश तथा दूसरी ओर छोटे घुँघराले तथा हलके रंग के केश थे। उसकी माता ने बतलाया कि उसके शरीर का रंग दो प्रकार का था, एक ओर भूरा तथा दूसरी ओर साफ़ रंग था।

मोट्रम[2] ने हांगकांग के एक आदिवासी बच्चे की उसी प्रकार की घटना बतलायी है जिसके शरीर का एक भाग श्वेत तथा दूसरा भूरा था।

जे० बी० एस० हल्डेन[3] ने एक उत्परिवर्तन की ओर ध्यान आकर्षित किया है जिससे पैर में काफ़ी छाले पड़ गये थे। यह शरीरसम्बन्धी उत्परिवर्तन न होकर, जिसका वर्णन अभी हमने किया है, जननिक गुण का उत्परिवर्तन है, जैसा कि अनेकों पीढ़ियों में उसके पारेषित होने से प्रमाणित होता है। यह निम्नलिखित वंशक्रम से स्पष्ट है जिसमें उसकी पित्रागति दिखलायी गयी है तथा जो कि हल्डेन की खोजों पर आधारित है।

यह बहुत कुछ F_1 पीढ़ी के पाँचवें बच्चे में प्रभावी उत्परिवर्तन होने के समान दीखता है जिसमें इस गुण के पित्र्यकों के जोड़े के लिए युग्मानेकगुण दशा होगी तथा जोड़े में से एक इस प्रभावी असामान्यता में उत्परिवर्तित हो गया। इस युग्मानेकगुणी दशा के फलस्वरूप सभी वंशजों में यह बीमारी नहीं मिलेगी। इस स्त्री (प्रथम पीढ़ी की पाँचवीं) में यह प्रभावी था, इसकी स्थापना इस तथ्य से होती है कि यह बहुत ही दुर्लभ दशा है। यह मानना अनुचित होगा कि उसके बच्चों तथा पोतों के पति-पत्नी उसे अपसारी रूप से युग्मानेकगुणी तरीके से ले गये, जैसा कि आवश्यक होगा यदि उसकी पित्रागति को अपसारी रूप में देखें। परिणामतः हम उसे एक प्रभावी उत्परिवर्तन का उदाहरण मानने को बाध्य होते हैं।

इसी प्रकार के अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं, और पाठकगणों का ध्यान

१. Mary Seeley

२. **ब्रिटिश मेडिकल जर्नल** (British Medical Journal), १९३२ पृष्ठ ८०४

३. **न्यू पाथ्स इन जेनेटिक्स** (New Paths in Genetics), १९४२

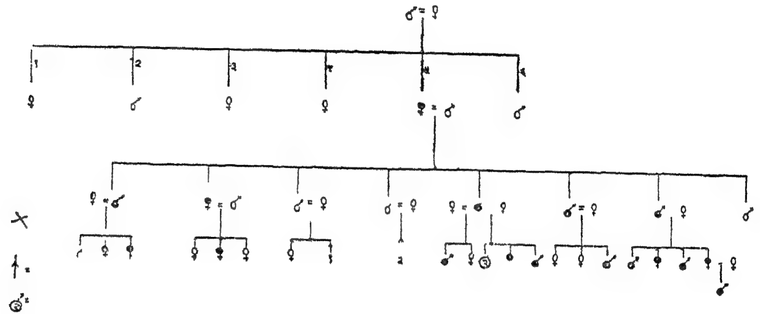
इस विषय मे मानव-जननिक के प्रकाशित साधारण साहित्य की ओर आकर्षित किया जाता है।[१]

चित्र नं० १२०

एक असामान्यता के लिए उत्परिवर्तन की जननिक पित्रागति, जिसने छालो से युक्त पैर का रूप ग्रहण किया

(हल्डेन द्वारा)

जनन P_1 जनन F_1 (प्रथम पंक्ति), जनन F_2 (दूसरी पंक्ति), जनन F_3 (तीसरी पंक्ति),



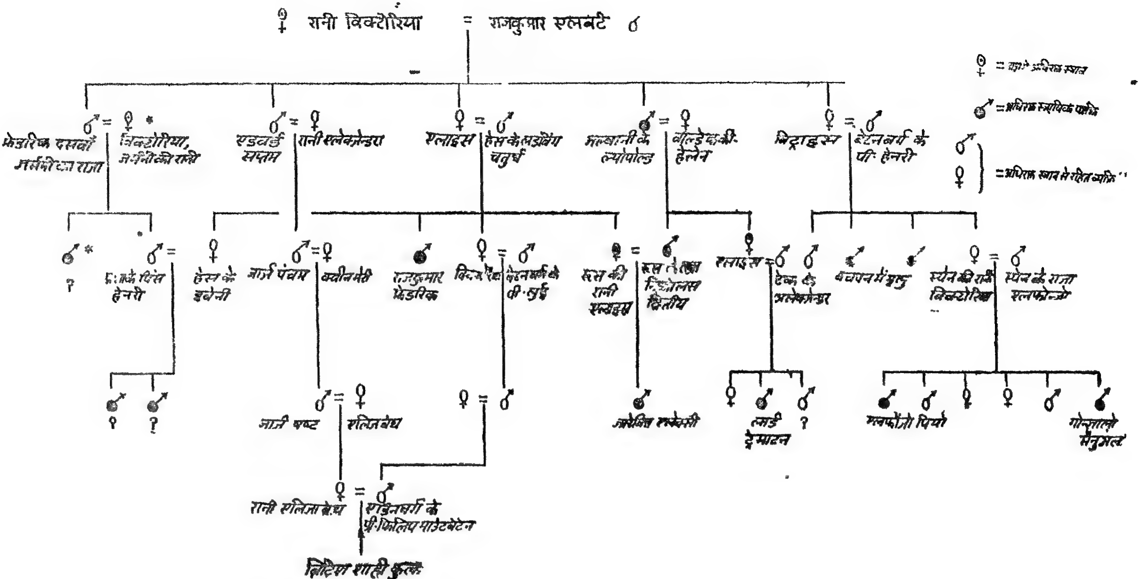
नीचे का प्रथम संकेत=अन्य सन्तति, जिसका लिंग नही दिया गया, तथा उसके नीचे की संख्या वह है जितनी कि सन्ततियाँ रही होगी।
दूसरा संकेत=दो नर।

लिग-ग्रथित उत्परिवर्तन

जो उत्परिवर्तन देखे तथा लिखे गये है, वे कभी कभी लिग-ग्रथित होते है।

१. जैसे कि जे० बी० एस० हल्डेन के म्युटेशन इन मैन, प्रोसीडिंग्स आफ दि एट्थ इन्टरनेशनल कांग्रेस आफ जेनेटिक्स, हेरेडिटास (Hereditas), परिशिष्ट भाग १, १९४९, पृष्ठ २६७, दि म्युटेशनरेट आफ दि जीन फार हेमोफीलिया ऐण्ड इट्स सेग्रीगेशन रेशियोज इन मेल्स ऐण्ड फीमेल्स, एनल्स आफ़ जेनेटिक्स, १९४७, भाग १३, पृष्ठ २६२, (Wolff Zeitschrift fur Rassenbiol, १९१३, भाग १३; सी स्टर्न, प्रिन्सिपिल्स आफ़ ह्यूमन जेनेटिक्स, १९५०, पृष्ठ ४०४

चित्र नं० १२१—यूरोप के शाही कुलों में अधिरक्त स्राव की लिंग-ग्रथित पित्रागति का उदाहरण



(ह्योगो इल्टिस 'Hugo Iltis' के जर्नल आफ हेरेडिटी पर आधारित, १९४८)

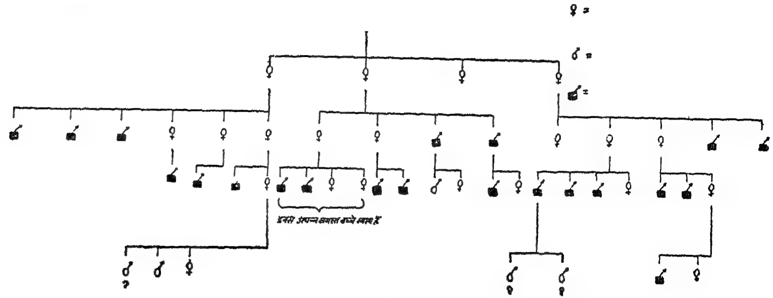
१. स्टर्न ने प्रिन्सिपिल्स आफ़ ह्यूमेन जेनेटिक्स (Principle of Human Genetics) में बतलाया है कि जमनी की रानी विक्टोरिया अधिरक्त स्राव से मुक्त थी तथा जर्मनशाही वंश में भी इसकी शिकायत नहीं थी।

शाही लिग-ग्रथित उत्परिवर्तन

एक बहुत रोचक तथा प्रसिद्ध लिग-ग्रथित उत्परिवर्तन है जिससे कि यूरोप के शासक कुलो मे अधिरक्तस्राव की उत्पत्ति हुई। यह स्वयं रानी विक्टोरिया को हुआ अथवा उनके पिता को, यह अनुमान का विषय है। यह स्पष्ट रूप से विदित होता है कि उन्हें यह अपनी माता से नही मिला। यह वंशक्रम चित्र[1] न० १२१ मे चित्रित है।

चित्र नं० १२२

अधिरक्तस्राव के पोषण का दूसरा उदाहरण जिससे पित्रागति के लिंग-ग्रथित गुणों की पुष्टि होती है
(स्टेबेल द्वारा, आर० सी० पुनेट के मेण्डेलिज्म से, १९१९, पृष्ठ २०४)



पहला संकेत—स्त्री जो अधिरक्तस्राव से मुक्त अथवा देखने में मुक्त परन्तु जो वाहक का काम कर सकती है
दूसरा संकेत—अधिरक्तस्राव से पूर्ण रूप से मुक्त
तीसरा संकेत—अधिरक्तस्राव वाला पुरुष

[टिप्पणी—

यह कहना सम्भव नहीं है कि विवाह के बाद भी कोई स्त्री अधिरक्त-स्राव से, यदि वह कुल मे है, मुक्त है, परन्तु यदि मुक्त नहीं तो वह अपने पुत्रों में उसे पारेषण करेगी।]

१. कुछ स्थानों पर पूर्ण सत्यता सन्देहास्पद है क्योंकि हम सदैव इसी विचार में रहे कि जर्मनी के वर्तमान शाही कुल में अधिरक्त स्राव की पित्रागति रानी विक्टोरिया की पुत्री राजकुमारी विक्टोरिया की ओर से नहीं हुई।

हमारे समक्ष उत्परिवर्तनों के आधार पर यह स्पष्ट है चूँकि वे अब भी बराबर हो रहे हैं, (हालाँकि वह साधारण प्रजनन की क्रिया के विपरीत प्रकार है) वे सदा ही बराबर होनेवाले कारक रहे होंगे इसलिए मानव जनसंख्या के गुणों पर थोड़ा या अधिक प्रभाव डालनेवाले कारक की दृष्टि से उनकी अवहेलना नहीं की जा सकती।

उत्परिवर्तनों की उत्पत्ति में क्ष-रश्मियों (X-ray) का प्रभाव

ऐसा विश्वास किया जाता है कि उत्परिवर्तनों की उत्पत्ति में क्ष-रश्मियों का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ सकता है। यदि ऐसा है तब, जैसा कोकेन[१] तथा अन्य लोगों ने बतलाया है, दवाओं में क्ष-रश्मि के प्रयोग का अध्ययन रोचक होगा। यदि इस प्रकार से उत्पादित परिवर्तन अपसारी हैं, तो वे ७०–१०० वर्षों तक प्रकट नहीं होंगे जिससे उस समय तक अच्छे या बुरे परिवर्तन स्वयं ही हो चुके होंगे, इससे पहले कि हमें वंशानुगति पर डाक्टरी में प्रयुक्त क्ष-रश्मि के प्रभाव की कोई चेतावनी मिल सके। हालाँकि, आशा देनेवाली बात यह है कि मनुष्य कहाँ तक विकिरण (रेडियेशन) को सहन कर सकता है इसका पता चल गया है, और यह देखा जा चुका है कि यह उससे अधिक है जितना कि साधारण रूप से डाक्टरी इलाज में प्रयोग में लाया जाता है।

पारमाणविक विकिरण तथा उत्परिवर्तन

इस स्थान पर हम इस तथ्य की ओर इंगित कर सकते हैं कि कुछ वैज्ञानिकों का, जिनमें पिल्किंगटन (Pilkington) भी हैं जिसके विचारों का अभी संक्षिप्त वर्णन किया गया है, यह सामान्य मत है कि पारमाणविक विकिरण का प्रभाव उत्परिवर्तनों को उत्पन्न करने के रूप में घातक हो सकता है, जो सदैव अपसारी होते हैं तथा पूर्णतः हानिकारक भी। अन्य लोगों ने, जैसे सर जान कोक्राफ्ट ने इस बात से इनकार किया है कि पारमाणविक बमों से तथा अन्य परीक्षणों से उत्पन्न विकिरण की मात्रा घनत्व की उस सीमा तक पहुँच सकती है जिससे ऐसा प्रभाव पड़ सके।[२]

१. ई० ए० कोकेन (E. A. Cockayne), पूर्वलिखित, पृष्ठ ३४

२. जहाँ पर परमाणु बम का विस्फोट हो, उसके निकट यदि कोई व्यक्ति ४५० रंटजन एकक—विकिरण शक्ति का माप—या इससे अधिक सहन कर ले तो उसकी मृत्यु हो जायगी। लगभग २०० एककों के सहन से मानव में उत्परिवर्तन की प्राकृतिक गति दुगुनी, अथवा तिगुनी हो जायगी—उत्परिवर्तन जो कि स्वयं हानिकारक हैं। सी० स्टर्न, (C. Stern), पूर्वलिखित, पृष्ठ ४३७-३८ तथा ४५०

हल्डेन ने गणना की है कि यदि किसी परमाणुबम के विस्फोट से ५०००० मनुष्य मर जायें तथा बचे हुए १० लाख को कुछ नही से ४५० रटजन एकक तक विकिरण प्राप्त हो, जिससे २० रटजन विकिरण का औसत हो तो यह घातक उत्परिवर्तन के कारण मृत्यु की उत्परिवर्तन-सम्बन्धी गति को बहुत अधिक नही बढा देगा।

इससे यह भी देखा जा सकता है कि अणु बम के विस्फोट तथा पारमाणविक कलो से होनेवाले विकिरण के सम्बन्ध मे जो वाद-विवाद चल पड़ा है उससे सचमुच एक घबराहट नही तो अनावश्यक आशका अवश्य उत्पन्न हो गयी है। तिस पर भी, इसके पहले कि मनमाने तौर से कोई राय कायम कर ली जाय, काफी सीखने को बाकी है। जो हो, एक तरह से यह भी अच्छा ही है कि अधिक विकिरण से उत्परिवर्तन का भय हमारे मस्तिष्क में बना रहे, बनिस्वत इसके कि उसके प्रभावों की हम लापरवाही से उपेक्षा करते रहें।

अब फिर हम उत्परिवर्तनों तथा उनके होने के प्रश्न की ओर झुकते है।

व्यत्यसन एक प्रकार का उत्परिवर्तन है

पित्र्यको के गुणो मे रासायनिक परिवर्तन से तथा पित्र्यसूत्रो के टूटने से होनेवाले व्यत्यसन (क्रासिग ओवर) से और उनके भाग गलत पित्र्यसूत्रो मे जुड़ जाने से तो उत्परिवर्तन होते ही है। पर ये अन्य प्रकार से भी हो सकते है।

पित्र्यसूत्रो की वृद्धि एक प्रकार का उत्परिवर्तन है

पौधो तथा प्राणियो में कभी-कभी देखा गया है कि साधारणतया एक कोश में दो पित्र्यसूत्र होते है और फिर अचानक ये तीन बन जाते है।

इस प्रकार से युग्मक (जाइगोट) मे, माता-पिता में से एक का दूसरे की अपेक्षा अधिक पित्र्यसूत्रो वाला असन्तुलित कोश (सेल) मिलता है। मनुष्यों मे ४९ तक पित्र्यसूत्र मिलते है। कभी-कभी यह दशा गलत अर्ध-सूत्रण (Meiosis) के कारण होती है, जब कि कोश क्रमश. २३ तथा २५ पित्र्यसूत्रो में विभक्त हो जाता है। इस दशा मे एक साधारण मनुष्य से सग करने मे ४९ पित्र्यसूत्रो के युग्मक की ही सम्भावना न मिलेगी बल्कि स्वाभाविक ४८ के बजाय ४७ का ही युग्यक होगा।

इस प्रकार के परिवर्तन के फलस्वरूप बहुधा निषेचित कोश नष्ट हो जाता है परन्तु यदि व्यक्ति जीवित रह जाय तो वह बिलकुल असाधारण होगा।

अर्ध-सूत्रण में आकस्मिक घटना से उत्परिवर्तन

अर्ध-सूत्रण के समय पित्र्यसूत्र के टूटने तथा गलत भागों के एक साथ जुड़ने के अति-

रिक्त, जिनका वर्णन पिछले अध्याय में चित्र सहित किया गया है, और भी अनेक आकस्मिक घटनाएँ हो सकती हैं। उदाहरण के लिए अर्धसूत्रण में दो पित्र्यसूत्र जुड़ सकते हैं तथा इस क्रिया में एक का एक भाग टूटकर सदैव के लिए कोश के आसपास के कोशद्रव्य (Cytoplasm) में विलीन हो जाता है। जब यह होता है तब गुथे हुए पित्र्यसूत्रों के जोड़े अपना वास्तविक कार्य करने के लिए, एक दूसरे से फिर अलग होकर साधारण रूप में जोड़ा बनायेंगे, पर इस बार अनियमित प्रकार से जोड़ा बनेगा, क्योंकि जो कुछ हुआ है उसके परिणामस्वरूप पित्र्यसूत्र के जोड़े में अवश्य ही एक अथवा उन दोनों के उस हिस्से की कमी रहेगी जो कि साथ में विशिष्ट पित्र्यक लिये रहता है तथा जो अब पूर्ण रूप से उस नस्ल के लिए नष्ट हो गये।

यदि प्रत्येक पित्र्यसूत्र से थोड़ा-थोड़ा भाग विभिन्न छोरों से टूटता है तब परिणाम यह होगा कि जोड़े का शायद ही कोई हिस्सा एक दूसरे के समान हो।

ऐसा होने पर एक बहुत ही अ-साधारण दशा की उत्पत्ति होगी।[1]

इस तथ्य के आधार पर यह विचार करना चाहिए कि अपने बच्चों को दूध पिलानेवाले प्राणियों, मुख्यतः मनुष्यों में, जिनकी स्थिति संपरीक्षण तथा अन्वेषण के उपयुक्त नहीं है, यह निश्चय करना सम्भव नहीं कि उत्परिवर्तन भिन्नयुग्मिक पित्र्यकों (Allelomorphic genes) की बनावट में परिवर्तन से होते हैं, अथवा, जो कि ऐसे परिवर्तनों के लिए सदैव बतलाया जाता है, यह टूटने तथा उसी तरह के अन्य कारणों से सम्भावित पित्र्यसूत्रसम्बन्धी असामान्यता के इस प्रकार के कारण हैं जैसा कि छोटे जीवों पर आधारित हमारे ज्ञान द्वारा पता चलता है।

मनुष्य के उद्विकास में उत्परिवर्तन

विभिन्न प्रकार के मनुष्यों तथा उनकी जातियों के उद्विकास में उत्परिवर्तन के महत्त्व पर सदैव अधिक ज़ोर दिया जाता है। परन्तु यदि वास्तव में जीववैज्ञानिकों का साधारण अनुभव यही हो कि उत्परिवर्तन अवश्य ही हानिकारक हैं तथा जो उदाहरण हमने दिये हैं वे नियम के अपवाद नहीं हैं, तब इस तथ्य को इस सिद्धान्त से मिलाना कठिन होगा कि उत्परिवर्तन सचमुच ही उद्विकास के साधन हैं।

१. सी० स्टर्न के प्रिन्सिपिल्स आफ़ ह्यूमन बायलॉजी, १९५०, पृष्ठ २० म इसका एक चित्र तथा इसके अतिरिक्त टूटने से बननेवाली अन्य व्यवस्थाओं को देखिए।

पिछले एक अध्याय में हमने व्यत्यसन की चर्चा की है तथा इसमें पित्र्यसूत्रों का टूटना[१] देखा है। इनका परिणाम अवश्य ही उत्परिवर्तन है क्योंकि उनके द्वारा नये प्रकार के पित्र्यसूत्रों का जन्म होता ह तथा ऐसे उदाहरणों में नये संयोजनों का निर्माण सम्भव होता है। यह देखना सरल है कि नये प्रकार की जातियों के उद्विकास में इस प्रकार के उत्परिवर्तनों का (यदि वे हानिकारक नहीं हैं तो) क्या भाग होगा। परन्तु इस प्रकार के उत्परिवर्तन (जिनमें कि चमकीले पदार्थ[२] में किसी भी कारण रासायनिक परिवर्तन भी होते है) मनुष्य के विकास में कोई आवश्यक तथा बड़ा भाग नहीं ले सकते, यदि ये उत्परिवर्तन सदैव नहीं, परन्तु साधारणतया हानिकारक हों। यह स्पष्ट है कि इस प्रकार के परिवर्तन जो कम कार्य-क्षमता तथा वास्तविक हानि-कारक दशाएँ उपस्थित करते हैं, उद्विकास में सहायक नहीं हो सकते।

इसलिए हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि यदि उत्परिवर्तन, चाहे वे पित्र्यकों तथा पित्र्यसूत्रों के चमकीले पदार्थ (रासायनिक) में परिवर्तन के कारण हों अथवा टूटने या अन्य किसी अनिश्चित कारण से हुए हों, आज पूर्णरूप से घातक हैं, जैसा कि साधारण मत है, तो उन्हें उद्विकास के साधनरूप में देखना कठिन प्रतीत होता है। अधिक आशा केवल उस असामान्य क्रिया से होती है जिससे एक अन्य पित्र्यसूत्र जुड़ जाता है तथा जिसका अधिक प्रभाव प्रकार नदलने में हो सकता है, यदि अपने पित्र्यसूत्रों की वृद्धि के बाद भी वंशशाखा विनष्ट होने से बची रह सके।

उद्विकास के अस्त्र के रूप में उत्परिवर्तन की क्रिया वैसी ही है जैसी कि आज हम पुरापाषाण (Palaeolithic) युग में जाति बनने के काल में देखते हैं, यदि कभी वैसा हुआ होगा जो ऊपर बतलाये हुए सभी तथ्यों के प्रकाश में काफ़ी सन्देहास्पद है।

उत्परिवर्तनों की प्रगति

इसलिए उस प्रकार के उत्परिवर्तनों का जिनसे हम परिचित हैं (मक्खियों अथवा मनुष्यों में उत्परिवर्तन के प्रभावों को देखकर जिनके कुछ उदाहरण भी दिये गये है) तथा जिन सभी को आज हानिकारक बतलाया जाता है, उद्विकास में हाथ था या नहीं, जैसा कि हमने देखा है कि वास्तव में ऐसा होना सम्भव नहीं यदि वह हानिकारक थे, फिर भी आज-कल सम्परीक्षण में उत्परिवर्तनों का बार-बार होना एक बड़े महत्त्व का विषय है।

१. इसके साथ पित्र्यसूत्रों के क्रम की पुनर्व्यवस्था भी समझनी चाहिए।

२. रंजितक, Chromatin

प्रथम तो चूँकि इसका बार-बार होना सहायक उत्परिवर्तनों की प्रगति बतलाने में निर्देशक हो सकता है, उत्परिवर्तनों की हानिकारकता के प्रमाण होने पर भी, हम यह जानते हैं कि प्रारम्भिक पुरापाषाण युग में मनुष्य के जाति-निर्माण के विकास में यह अवश्य ही सम्बद्ध रहे होंगे।

दूसरे इसलिए भी कि समस्त जनसंख्या में प्रकृतिसम्बन्धी दशाओं को बतलाने के लिए हमें उसकी प्रगति तथा उसका प्रभाव जानना चाहिए तथा कहाँ तक वह जन-संख्या घातक उत्परिवर्तनों से उत्पंन्न जीव-वैज्ञानिक बनावट के हानिकारक परिवर्तनों को प्राकृतिक चुनाव द्वारा नष्ट करने में सफल हो सकी है।

जैसा कि हमने बतलाया है, अधिरक्तस्राव के उत्परिवर्तन की बारम्बारता के सम्बन्ध में हल्डेन ने हिसाब लगाया है कि लगभग ५० सहस्र पीढ़ियों में एक ऐसा उदाहरण मिलता है।

कोपेनहेगेन के एक चिकित्सालय में एक कान्ड्रोडिस्ट्रोफिक (Condrodys-trophic) बौनेपन के साधारण प्रभावी उत्परिवर्तन की प्रगति का अनुमान १२,००० पीढ़ियों में एक बार होने का लगाया गया था।[1]

चूँकि, प्रत्येक व्यक्ति के दो साथी अथवा भिन्नयुग्मिक पित्र्यक होते हैं जिनमें से एक इस प्रकार की दशा उत्पन्न करने में सम्बन्धित होता है, इसका अभिप्राय है कि उत्परिवर्तन २४,००० पित्र्यकों में से एक में हुआ है।

साधारण रूप से यह परिणाम निकाला जा सकता है तथा यह देखा भी जा चुका है कि कान्ड्रोडिस्ट्रोफी, हेमोफीलिया से एनीरीडिया (Haemophilia to aniri-dia) तक में उत्परिवर्तन की प्रगति की भिन्नता २५ सहस्र से ८० सहस्र पीढ़ियों में एक बार के हिसाब में से मिलती है।[2]

प्राकृतिक चुनाव तथा उत्परिवर्तन की प्रगति में प्राकृतिक सन्तुलन

इस तथ्य की ओर ध्यान देते हुए कि इन असामान्य उत्परिवर्तनों की प्रगति प्राकृ-तिक रूप से इतनी सन्तुलित है, हम साधारण रूप से कह सकते हैं कि उनके घातक प्रभाव असामान्यताओं के उत्पन्न होते ही उन्हें नष्ट कर देते हैं। इसलिए, उदाहरण स्वरूप

१. सी० स्टर्न, प्रिन्सिपिल्स आफ़ ह्युमेन जेनेटिक्स, १९५०, पृष्ठ ४०७

२. जे० बी० एस० हल्डेन (J. B. S. Haldane) म्युटेशन इन मैन, प्रोसीडिंग्स, आठवीं इन्टरनेशनल कांग्रेस आफ़ जेनेटिक्स, हेरेडिटास, परिशिष्ट भाग, १९४९, पृष्ठ २६७

अधिरक्तस्राव वाले अधिक लोगों के प्रसवन का कोई मौका नहीं मिल पाता तथा ऐसा दीखता है कि हमारी जनसंख्या को प्रभावित करने के लिए तथा प्रकृतिसम्बन्धी असामान्यताओं द्वारा उसमें कोई विशेष कमी करने के लिए उत्परिवर्तन की प्रगति को काफ़ी आगे बढ़ाने की आवश्यकता पड़ेगी।

उत्परिवर्तन की उत्पत्ति में विभासन की प्रगति

हमारा यह ज्ञान कि क्ष-रश्मि (एक्सरे) से उत्परिवर्तन-सम्बन्धी परिवर्तन हो सकते हैं, जिससे कि क्ष-रश्मि से विभासन के प्रभाव की तथा परमाणु-बमों के संपरीक्षणों के प्रभाव की थाह लगाने में सहायता मिली है, जिसके कारण हम इससे उत्पन्न ख़तरे को समझने लगे हैं तथा उनके सम्परीक्षणों से सम्बन्धित बड़े अधिकारियों द्वारा इसका खण्डन हमें इस नतीजे पर पहुँचाता है कि वर्तमान उत्परिवर्तनसम्बन्धी गति पर प्रभाव डालने के लिए स्वाभाविक विभासन की गति को हजार गुना से भी अधिक बढ़ाना पड़ेगा। इसके सिवा, अधिकतर लोगों का मत इसके विरुद्ध है कि मनुष्य में होनेवाले उत्परिवर्तनों का मुख्य कारण प्राकृतिक विभासन है।

इसलिए यदि वातावरण पारमाणविक धूल से अनावश्यक रूप से बोझिल हो जाता है, जिससे विभासन की गति इतनी बढ़ जाय कि जीवन पर, मुख्यतः मनुष्य के जीवन पर, उसका असर पड़े तो उत्परिवर्तनों सम्बन्धी परिवर्तन प्राचीन समय की अपेक्षा अधिक भिन्न होने की सम्भावना बढ़ सकती है। यह भी हो सकता है कि यदि ऐसी बात कभी हुई तब ये परिवर्तन बहुत हानिकारक ही हो सकते हैं। उस अवस्था में इसकी बहुत कम आशा होगी कि उनके कारण जो व्यक्ति उत्पन्न होंगे वे जीवित रहें अथवा यदि वे जीवित रहने में सफल हुए तो वे जीवन-संग्राम में इतने अयोग्य सिद्ध होंगे जिससे यह माना जा सकता है कि उसका अन्त हो जाना ही अधिक सम्भावित है। अवश्य ही, यदि पूरा-का-पूरा प्रदेश प्रभावित हो जाता है तब जनसंख्या का बड़ा भाग नष्ट हो सकता है। परन्तु स्पष्ट है कि ऐसा करने के लिए विभासन की गति प्राकृतिक गति की अपेक्षा १००० गुना बढ़ानी पड़ेगी।

चूँकि ऐसा सम्भव नहीं है कि पूर्व काल में विकिरण (रेडियेशन) की गति कभी भी इतनी रही होगी, हम उचित रूप से मान सकते हैं कि ज्ञात अथवा सन्देहास्पद कारणों से सदैव ही उत्परिवर्तन की गति २५००० से ८०००० में एक के हिसाब से रही होगी तथा इसी आधार पर मनुष्य में हुए प्रगतिशील परिवर्तनों के सम्बन्ध में अनुमान लगाया जा सकता है।

तिस पर भी हमें इस तथ्य को न भूल जाना चाहिए कि हम केवल अनुमान लगा रहे

हैं कि उस उद्विकास में उत्परिवर्तनों का हाथ था, क्योंकि जैसा कि हमने ज़ोर देकर बतलाया है उत्परिवर्तन, जहाँ तक हमें उनकी जानकारी है, निःसन्देह हानिकारक हैं तथा मानव अथवा जातियों की उन्नति में वे कारणस्वरूप न रहे होंगे। भूतकाल में समय-समय पर कुछ परिवर्तन जीवित पदार्थों की समरूप आकृति में हुए हैं। साथ ही ये सदैव धीरे-धीरे नहीं हुए हैं परन्तु कभी-कभी ऊपर की ओर शीघ्रता से प्रगति हुई है तथा यह मानना उचित है कि ये बड़े रूप में आन्तरिक जननिक परिवर्तनों को सूचित करते हैं, निःसंदेह ही जो उत्परिवर्तनों के समान, जैसा कि हमने अपने निरीक्षणों में देखा है, जननिक रूप से कार्य करते हैं। इस प्रकार के बड़े जननिक परिवर्तन, उत्परिवर्तन हो सकते हैं परन्तु वैसे नहीं जैसे हम उन्हें जानते हैं तथा जैसे आजकल प्राकृतिक अथवा कृत्रिम रूप से प्रयोगशाला में होते हैं।

इसलिए ऐसा प्रतीत होता है कि यदि उत्परिवर्तन, उद्विकास के लिए कारण समान होते, तब हमें मानना चाहिए कि आजकल पाये जानेवाले स्वाभाविक रूप से हानिकारक उत्परिवर्तनों से भिन्न, भूतकाल में एक नये प्रकार के लाभदायक उत्परिवर्तन हुआ करते थे जो जीवित पदार्थों की जाति या प्रकार बनने के समय सहायक होते थे।

अन्त में, जब कि हम उत्परिवर्तनों के विषय में अपने विचार बदलने को हमेशा तैयार हैं, हम सोचते हैं कि मनुष्य तथा उसकी जातियों के उद्विकास में उनके प्रभावों पर पूर्वकाल की अपेक्षा भविष्य में अधिक पूर्ण रूप से अनुसन्धान करना चाहिए तथा हमारा यह विचार नहीं है कि रासायनिक परिवर्तनों के कारण उत्परिवर्तनों की दोहाई दे देना ही पूर्णतः अभी तक हुए जातियों के विकास के प्रत्येक अगले कदम की व्याख्या है। यह हो सकता है कि व्यत्यसन आदि यंत्रवत कारणों से उत्पन्न उत्परिवर्तनों का होना उस समय बहुत महत्त्वपूर्ण कारक रहा होगा जब कि मानव-समाज का युवाकाल था और मनुष्यों की संख्या कम थी तथा जब प्राकृतिक चुनाव को छोटे एककों की स्थापना को प्रोत्साहन देने का पूर्ण अवसर था, जिनमें जननिक प्रसरण आदि आकस्मिक पृथक्करण द्वारा नये तथा इच्छित पुनःसंयोजन बन गये थे।

तृतीय खण्ड

परिस्थिति तथा भौगोलिक निश्चयवाद के दावे और जुडवाँ तथा मानव–जनन के अन्य पहलुओं में वंशानुगति के अध्ययन पर आधारित उनके प्रमाण।

तृतीय खण्ड की भूमिका

जननिक नियमों के प्रयोग के प्रकाश में, जिनका वर्णन हम कर चुके हैं, मनुष्य के जातिगत गुणों की व्याख्या करने के पूर्व, परिस्थिति के प्रभाव सम्बन्धी दावों से उत्पन्न समस्याओं को सुलझाना आवश्यक है।

हम पौधों तथा पशुओं में वंशानुगति के प्रभाव का चाहे जितना वर्णन करें तथा मनुष्य में भी वंशानुगति-सम्बन्धी क्रियाओं का स्पष्ट उदाहरण बतलाएँ, फिर भी वर्षों पुराना दावा बना रहता है कि जीवित पदार्थों, मुख्यतः मनुष्य पर, बाह्य उद्दीपनों के परिवर्तनकारी प्रभाव भी पड़ते हैं। ये प्रभाव मुख्य रूप से परिस्थिति के होते हैं, हालाँकि इस सम्बन्ध में सामाजिक प्रभावों की भी पूर्णरूप से अवहेलना नहीं की जा सकती। फिर भी इस समय हम अपने उद्देश्य के लिए मनुष्य पर पड़नेवाले परिस्थिति के शक्तिशाली प्रभाव के सम्बन्ध में किये गये मुख्य दावों तक ही अपने को सीमित रखेंगे।

इसलिए, हम सबसे पहले पूर्वकाल से वर्तमान समय तक के परिस्थितिवादियों के दावों के वर्णन से विषय का आरम्भ करेंगे तथा विशेष रूप से इस सम्बन्ध में जातीय जननिक के मूल तथ्यों से उनके दृष्टिकोण कहाँ तक समान तथा असमान हैं, यह देखते हुए भौगोलिक निश्चयवादियों के मतों की व्याख्या करेंगे।

इसके पश्चात् हम परिस्थिति तथा वंशानुगति के सम्पूर्ण विषय की व्याख्या करेंगे जिसमें समान तथा असमान जुड़वों के एवं समान माता या पिता के बच्चों के पारिवारिक इतिहास से प्राप्त सामग्री से इसका क्या सम्बन्ध है, इस पर भी विशेष रूप से विचार किया जायगा।

पंद्रहवाँ अध्याय

परिस्थिति तथा भौगोलिक निश्चयवाद

किसी भी ऐसी रचना में जो कि मानव जातियों की जटिलता के अध्ययन से सम्बन्ध रखती है, एक ऐसे नियम के जानने तथा प्रतिज्ञापन करने की आवश्यकता उत्पन्न होती है कि जातियों की उत्पत्ति क्यों और कैसे हुई। साथ ही ऐसी पुस्तक में एक जातीय समूह से दूसरे की विभिन्नताओं की भी व्याख्या करना आवश्यक होता है।

हमारी पुस्तक जननिक अध्ययन पर आधारित है इसलिए हमारे लिए वंशानुगति पर विचार करना महत्त्वपूर्ण है।

तिसपर भी चूँकि एक ऐसा मत है जो परिस्थिति की परिवर्तनकारी क्षमता के विचार पर आधारित है, इस दृष्टिकोण की माँगों पर विचार करना अच्छा होगा तथा उस प्रमाण की परीक्षा बाद में की जायगी जो कि मुख्यतः उस सामग्री पर आधारित है, जिसकी व्याख्या ऐतिहासिक तथा जातियों सम्बन्धी भूगोल के इन सामान्य निष्कर्षों की अपेक्षा अधिक विस्तार से की जा सकती है। इन निष्कर्षों से उत्पन्न दार्शनिक धारणाओं का खण्डन वैसे ही सामान्य तर्कों से किया जा सकता है।

अत्यन्त प्राचीनकाल से ही परिस्थितिवादी मिलते हैं

यह बतलाना निरर्थक है कि प्राचीनकाल से ही एक ऐसी धारणा थी कि मनुष्यों की विभिन्नता के निर्माण में परिस्थिति का शक्तिशाली हाथ होता है।

हिप्पोक्रेटीज़[१] ने (४२० ई० पूर्व)—अपनी रचना "आन एयर्स, वाटर्स तथा प्लेसेज" में उत्साहहीन पूर्वनिवासी तथा अधिक शक्तिशाली किन्तु निर्धन पश्चिम-निवासियों की विभिन्नता का कारण भौगोलिक बतलाया है। उसके कथनानुसार पश्चिमी लोग अपनी शोचनीय परिस्थिति के कारण अच्छी दशाओं में स्थित अपने पड़ोसी एशिया-निवासियों की अपेक्षा अधिक कठिन परिश्रम करने को बाध्य हुए। उसने यह

१. Hippocrates

भी कल्पना की कि स्थलविशेष की प्राकृतिक स्थिति के कारण ही ठंडे ऊँचे प्रदेशों में, सूखे निचले प्रदेशों के दुबले, सख्त, साफ़ रंग के मनुष्यों की अपेक्षा, लम्बे, अनुद्दण्ड किन्तु बहादुर मनुष्य होते हैं।

अरस्तू ने (३८४-३२२ ई० पूर्व) अपनी "पालिटिक्स" में लगभग ऐसे ही विचार प्रकट किये हैं। उसके अनुसार यूरोप के ठण्डे प्रदेशों में बहादुर किन्तु साथ ही बौद्धिक एवं प्राविधिक रूप से पिछड़े कमज़ोर लोगों की उत्पत्ति होती है, जो कि इन परिस्थितियों के कारण ही स्वतन्त्रता-प्रेमी तो थे परन्तु राजनीतिक योग्यता न होने के कारण वे अपने पास-पड़ोस के लोगों पर शासन नहीं कर सके। जब कि पूर्व के लोग बुद्धिमान् तथा प्राविधिक रूप से निपुण होते हुए भी निम्न भावना के थे इसलिए दासता तथा अत्याचार से पीड़ित हुए। यूनान के निवासी इन दोनों छोरों के मध्य में होने के कारण दोनों क्षेत्रों की अच्छाई से लाभ उठाने में सफल हुए।

हम पोलीबियस[१] को (२०३-१२१ ई० पूर्व) लिखते पाते हैं कि मनुष्यों में जलवायु से प्रभावित होने की एक अनिवार्य प्रवृत्ति मिलती है तथा मनुष्यों में आकार, रंग और साथ ही आदतों की जो अत्यन्त विभिन्नताएँ दिखलाई देती हैं, वे इन्हीं कारणों से हैं। यह धारणा, जैसा कि हमने अभी बतलाया है, साधारण रूप से अब भी मानी जाती है तथा उष्ण कटिबन्ध में काले लोगों और शीत कटिबन्ध में श्वेत लोगों के सामान्य वितरण से इस मत को स्पष्ट रूप से बल मिलता है जिसकी चर्चा हम बाद में फिर करेंगे।

स्ट्रेबो ने (६३ ई० पूर्व ३६ ई० पश्चात्) अपनी भौगोलिक व्याख्या में ऐसे मतों को स्वीकार किया है क्योंकि उसके अनुसार रोम की उन्नति के लिए इटली (Italy) की बनावट, प्राकृतिक दशा तथा जलवायु उत्तरदायी है।

बाद के १६वीं तथा १७वीं शताब्दी के फ्रान्स के परिस्थितिवादी

बाद के लेखकों में इन्हीं मतों के माननेवाले थे जिनमें से अधिकांश फ्रान्स के थे। १६ वीं शताब्दी के जे० बोदां[२] (J. Bodin) ऐसे ही दर्शनशास्त्रियों में थे। उन्होंने उत्तरी देशान्तर को वहाँ के निवासियों की निर्दयता, क्रूरता तथा पराक्रमशीलता का कारण बतलाया है। इसी तरह उन्होंने अधिक शीतोष्ण देशान्तरों को उत्तरी निवासियों की अपेक्षा वहाँ वालों के अधिक कौशलपूर्ण होने का कारण माना है तथा दक्षिण

१. Polybius

२. Les Six Livres de la Republique, Lib. V. Cap. I.

के देशान्तर में रहनेवालों में कम उत्साह, साथ ही अधिक छल तथा विद्वेष का पाया जाना वहाँ की स्थिति के फलस्वरूप बतलाया है। हालाँकि उनकी प्रशंसा में उन्होंने स्वीकार किया है कि उनमें सत्य तथा असत्य के बीच निर्णय करने की क्षमता होती है।

सत्रहवीं शताब्दी में मान्टेस्क[1] (Montesquieu) का विश्वास था कि उत्तरी भाग के लोगों को मजबूत शरीर के, बहादुर तथा सत्य बोलनेवाले और दक्षिणवालों की तरह छली अथवा शंकास्पद न बनाने के लिए वहाँ का जलवायु उत्तरदायी था। परन्तु उसका विश्वास था कि यदि उत्तर के लोग दक्षिण के शक्तिहीन बना देनेवाले जलवायु में बस जाते तब शीघ्र ही उनकी शक्ति समाप्त हो जाती। इसलिए यह प्रश्न नहीं उठ सकता कि उष्ण कटिबन्ध वाले देशों में सदैव ही स्थिर सभ्यताएँ मिलेंगी। मान्टेस्क के अनुसार अफ्रीका की तरह के बंजर प्रदेश गणतन्त्र की उत्पत्ति करते हैं तथा डोरियन्स जैसे उपजाऊ प्रदेश में राजतंत्र मिलता है। इसी तरह द्वीपसमूहों का भी वहाँ के निवासियों के चरित्रों पर विशेष प्रभाव पड़ता है।

१९ वीं शताब्दी के परिस्थितिवादी

इन लेखकों के पश्चात् हम जर्मनी तथा फ्रान्स के बादवाले लेखकों को देख सकते हैं जिन्होंने अपने विचारों को इन परिस्थितीय आधारों पर विकसित किया है।[2]

इस प्रकार कार्ल रिटर[3] के (१७७९-१८५९) मत ने साधारणतया गम्भीर होते हुए भी इस दृष्टिकोण के विकास में सहायता दी है। उदाहरण के लिए जब वे खुलकर मत व्यक्त करने लगते थे तो उन्होंने बतलाया कि तुर्की-निवासियों की सँकरी आँखें मरुस्थलीय परिस्थिति के प्रभाव के कारण थीं।

रायटर १८४९ में यह बतलाने में समर्थ हुए कि डच लोगों में कफ़ का मिलना उनकी भौगोलिक दशाओं के कारण था। इसी तरह फ्रेडरिक लेपले[4] (१८००-८२),

१. **स्पिरिट आफ् लाज** (Spirit of laws), **बुक्** (Bock) XIV, **अध्याय** २, ४, ५, **बुक** XVIII, **अध्याय** १, ५

२. **जी० टैथम** (G. Tatham) **के एनवाइरनमेन्ट एण्ड पासीबिलिज्म इन ज्योग्रेफ़ी इन ट्वेन्टिएथ सेन्चुरी** (Environment and Possibilism in Geography) **ग्रिफ़िथ टेलर द्वारा संकलित, न्युयार्क तथा लन्दन, १९५३, पृष्ठ १३०**

३. Carl Ritter

४. Frederick Leplay

तथा एडमन्ड डेमोलिन्स का कार्य भी उसी दिशा में मिलता है। डेमोलिन्स[1] लिखते हैं कि—

"पृथ्वी के धरातल पर पायी जानेवाली जनसंख्या में बहुत विभिन्नता है। यह विभिन्नता किसने उत्पन्न की है? साधारणतया जो उत्तर दिया जाता है वह है 'जाति' (रेस) ने; परन्तु जाति से कुछ स्पष्ट नहीं होता क्योंकि यह खोजना अब भी बाकी रह जाता है कि जातियों की उत्पत्ति कैसे हुई। मनुष्यों तथा जातियों में विभिन्नता मिलने का प्रथम तथा सबसे निश्चित कारण वह भिन्न मार्ग है जिसे मनुष्यों ने (अपने देशान्तर-गमन के समय) अपनाया। यह मार्ग ही है जिससे अलग-अलग जातियों तथा सामाजिक प्रकार की उत्पत्ति हुई है। पृथ्वी के मार्गों ने, शक्तिशाली धातु के भभके की भाँति, इनमें से निकलनेवाले लोगों को एक ढंग से या दूसरे ढंग से परिणत कर दिया है।"

"यह उपेक्षा का विषय नहीं रहा है कि मनुष्यों ने एक मार्ग अथवा दूसरा मार्ग लिया, जैसे एशिया में घास के मैदानों का मार्ग, या साइबेरिया-टुन्ड्रा का मार्ग अथवा अमेरिका में घास के मैदानों का मार्ग या अफ्रीका में वनों का मार्ग। अलक्ष्य रूप से तथा अनिवार्य रूप से इन मार्गों ने तातार, मंगोल, लैप, एस्क्वीमाक्स, रेडस्किन, भारतीय अथवा नीग्रो प्रकारों का निर्माण किया। इस कथन के विपरीत कुछ नहीं कहा जा सकता। यह देखा जायगा कि यह एक सुप्रतिष्ठित नियम है। यह भी उदासीनता का विषय नहीं है कि मनुष्य अरेबिया तथा सहारा के मरुस्थलों के मार्गों से अथवा दक्षिणी तथा पूर्वी एशिया के मार्गों से चले। अलक्ष्य तथा अनिवार्य रूप से इन मार्गों ने अरब निवासी, तथा असीरिया (Assyria) और मिस्री प्रकार को अथवा मीड्स तथा फ़ारस वालों या चीनियों, जापानियों अथवा हिन्दुओं के प्रकार को बनाया है।"[2]

डेमोलिन्स के विचार काफी विस्तार से उद्धृत किये जा सकते है जिनमें उन्होंने भौगोलिक परिस्थिति को, मानव के जातिसम्बन्धी विभागों के साथ ही उनकी मानसिक, स्वभावसम्बन्धी तथा मनोवैज्ञानिक विशेषताओं की और अन्त में मानव के सामाजिक संघटन की उत्पत्ति का एकमात्र कारण बतलाया है।

१. Edmond Demolins, Essai de geographie sociale, Ccmment la route cr' eeletype sociale, 1901-3.

२. **जी० टैथम** (G. Tatham) **से ज्योग्रफ़ी इन दि ट्वेन्टिएथ सेन्चुरी** (Gec-graphy in the Twentieth Centur) **में, पूर्वलिखित, पृष्ठ ३९**

कुमारी सेम्पल के विचार

डेमोलिन्स के पश्चात् ही ई० सी० सेम्पल[1] उसी निश्चयता के दृष्टिकोण को लेकर आगे बढ़ी हैं, हालाँकि वे उस सीमा तक नहीं गयीं। जैसा कि टैथम ने उनकी सन् १९११ में प्रकाशित रचना "इनफ्लुवेन्सेज़ ऑफ ज्योग्रेफिक एवाइरनमेण्ट" के विषय में कहा है—"हालाँकि मानव-भूवृत्त सिद्धान्तों के कथन के लिए इसकी योजना की गयी पर यह (जैसा कि शीर्षक से स्पष्ट है) एक पुराने विषय की, याने मानव पर प्राकृतिक परिस्थिति के प्रभाव की समीक्षा है। यह पुस्तक इस कल्पना से आरम्भ होती है कि ऐसे प्रभावों का अस्तित्व है जिनसे कुछ सीमा तक वैज्ञानिक पक्षपातहीनता नष्ट हो जाती है।" इस प्रकार वे मनुष्य के विषय में कहती हैं—"पर्वतों पर पृथ्वी ने उसकी टाँगों की मांसपेशियाँ लोहे की बनायी हैं जिससे वह ढालों पर चढ़ सके तथा तटवर्ती प्रदेशों में उसने टाँगों को कमजोर और कोमल बनाया है, परन्तु इसके स्थान पर उसकी छाती तथा बाँहों का अच्छा विकास किया है जिससे वह डाँड़ अथवा पतवार चला सके।"

कुमारी सेम्पल ने अधिकांश भौगोलिक निश्चयवादियों के समान ही मानव की शारीरिक बनावट पर भूगोल के प्रभाव की बात तक ही अपने को सीमित नहीं रखा वरन् यह भी बतलाया है कि उसने मनुष्य के मानसिक तथा मनोविज्ञान सम्बन्धी दृष्टिकोण को भी प्रभावित किया है तथा वास्तव में उसके विभिन्न धर्म भी प्रकृति के प्रभाव के कारण ही हैं। इस प्रकार "बुद्ध भगवान् का जन्म हिमालय की उष्णतापूर्ण तराइयों में हुआ तथा गर्मी और आर्द्रता से उत्पन्न थकावट से संघर्ष करने के बाद उन्होंने अपने स्वर्ग को मोक्ष (या निर्वाण) के रूप में माना है, जहाँ समस्त कार्यों तथा व्यक्ति के जीवन का अन्त हो जाता है।"[2] वे भी उस मत को मानती हैं कि अद्वैतवाद की उत्पत्ति मरुस्थलों में हुई, जैसा कि उन अध्यात्मवादियों ने कहा है जो कि यहूदी धर्म को अरब की उत्पत्ति बतलाते हैं—"इतिहास का प्रमाण हमें यह दिखलाता है कि एक ऐसा सिद्धान्त भी है कि धर्म की विशिष्ट प्रतिभा मरुस्थल में उत्पन्न होती है।"

देशान्तर तथा जलवायु के प्रभाव पर उनके विचार पूर्ण रूप से परिस्थितिवादी पद्धति पर हैं तथा उनमें पूर्व लेखकों की ध्वनि का आभास मिलता है। इसीलिए हमें उनके निम्नलिखित विचार मिलते हैं—

१. E. C. Semple
२. जी० टैथम से, पूर्वलिखित, पृष्ठ ४१

"यूरोप के उत्तरी निवासी भावुक होने की अपेक्षा उद्योगशील, गम्भीर वृत्ति के एवं विचारशील हैं तथा उत्तेजनावाले होने की अपेक्षा सावधानी से काम करनेवाले हैं। दक्षिण में भूमध्यसागरीय प्रदेश के लोग सरल प्रकृति के, अत्यन्त आवश्यकता के समय छोड़कर अन्य समयों में अदूरदर्शी, प्रसन्न, भावमय तथा कल्पनाशील गुणों के होते हैं और यही गुण विषुवत क्षेत्रीय नीग्रो लोगों में गम्भीर जातीय दोषों में परिणत हो जाते हैं। यदि सुवर्ण रंग के ट्युटन्स जातीय लोग भूमध्यसागरीय भूरी जाति से साफ होकर बने हैं, जैसा कि बहुत से जाति-वैज्ञानिक मानते हैं,, तब स्वभाव की यह विपरीतता जलवायु[1] के कारण ही है।"

वर्तमान निश्चयवादी—

प्रोफेसर एल्सवर्थ हण्टिंगटन तथा ग्रिफ़िथ टेलर

भूगोलवेत्ताओं में से निश्चयवादी मत के माननेवालों में हमारे समय में ग्रिफ़िथ टेलर[2] तथा एल्सवर्थ हण्टिंगटन[3] के नाम[4] उल्लेखनीय हैं।

बहुत कम भूगोलवेत्ता आज इस दर्शन के पक्ष में हैं। इसके भौगोलिक कारणों का निरीक्षण हम बाद में करेंगे। तिस पर भी जो लोग इसके माननेवाले हैं, उन्होंने अपने पूर्व वैज्ञानिकों सहित साधारण विचारों को बहुत प्रभावित किया है जिससे आजकल की सामाजिक दशा तथा राजनीतिक सिद्धान्तों की मुख्य विचार-धाराओं पर पूर्ण अथवा अपूर्ण रूप से उन सिद्धान्तों का प्रभाव पड़ा है जिनमें यह माना गया है कि परि-स्थिति प्रभावकारी शक्ति है।

फिर भी ग्रिफ़िथ टेलर की स्थिति में अपने पूर्वजनों की तुलना में कई बातों में परि-वर्तन हो गया है। उदाहरण के लिए हम उन्हें यह कल्पना करते हुए पाते हैं कि स्वर्ण रंग के नार्डिक उसी वर्ग से उत्पन्न हुए हैं जिससे मेडिटेरेनियन लोग। ये पिछले लोग इसलिए काले हो गये कि स्वर्ण रंगवाले उस परिस्थिति के अनुकूल नहीं थे "तथा

१. पूर्वलिखित, पृष्ठ ६२०

२. Griffith Taylor ३. Ellsworth Huntington

४. उनके साथ उनके जीववैज्ञानिक साथी, उपार्जित गुणवादी, भी लिये जा सकते हैं, जो कि उसी सिद्धान्त के माननेवालों का, कि प्राप्त किये गये गुणों का वाह्य उद्दीपनों द्वारा पारेषण होता है, एक छोटा समूह है।

प्रागैतिहासिक देशान्तरगमन के कारण सहस्रों वर्षों में नष्ट हो गये।"[1] यह मत वास्तव में शुद्ध परिस्थितिवाद का त्याग ही है, क्योंकि भौगोलिक निश्चयवादी जाति में परिवर्तन होने का यह कारण स्वीकार न करता कि भूगोल ने वंशानुगति से उत्पन्न परन्तु परिस्थिति के प्रतिकूल होने के कारण किसी विशेष प्रकार को प्राकृतिक चुनाव द्वारा नष्ट कर दिया। उसने यह घोषित कर दिया होता कि परिस्थिति ने ही एक नये प्रकार का निर्माण किया।

रुको और जाओ—निश्चयवाद

इसलिए हम कह सकते हैं कि प्रोफेसर ग्रिफ़िथ टेलर ने, जिन्होंने अपने मत को "रुको और जाओ, निश्चयवाद" कहा है, भौगोलिक प्रभाव के विशुद्ध जीववैज्ञानिक पहलू में निश्चयवाद का त्याग कर दिया है। इस विषय के अन्य पहलुओं, विचारों में उन्होंने इसका त्याग नहीं किया, यह दूसरी बात है तथा इनमें वे अब भी निश्चयवादियों के मतों को माननेवाले हैं। हालाँकि, यहाँ पर भी, टैथम[2] तर्क करेंगे कि उन्होंने अपने शुद्ध निश्चयवादी दृष्टिकोण में काफी सुधार कर दिया है या उसे त्याग ही दिया है।

जाति-निर्माण के क्षेत्र में स्वर्गीय प्रोफ़ेसर एल्सवर्थ हण्टिंगटन के कार्य पूर्ण निश्चयवादी बने रहे हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि शरीर के आकार[3] के विषय में लिखते समय वे कहते हैं—

"किसी दिये हुए समूह के मनुष्यों के शारीरिक आकार तथा कुछ सीमा तक उनके स्वभावसम्बन्धी गुणों की पित्रागति में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में परिवर्तन हो सकता है। इस प्रकार के परिवर्तन नयी परिस्थितियों के कारण हो सकते हैं जैसे कि हवाई (Hawaii) में जापाननिवासियों तथा न्यूयार्क में इटली अथवा रूस के आप्रवासितों में हुआ है।"

आगे चलकर इसकी व्याख्या करने की आवश्यकता पड़ेगी क्योंकि उसका सम्बन्ध

१. **ग्रिफ़िथ टेलर, रेशियल ज्योग्रफी इन ट्वेन्टिएथ सेन्चुरी** (Racial Geography in Twentieth Century) **पृष्ठ ४३८**

२. **पूर्वलिखित, पृष्ठ १५९**

३. **मेनस्प्रिंग्स आफ़ सिविलाईजेशन** (Mainsprings of Civilization), **न्यूयार्क तथा लन्दन, १९४५, पृष्ठ ६३**

प्रो० फ्रैन्ज बोआस[१] के कथनों से है। ये मानवशास्त्रियों में उपार्जित गुणवाद के जो कि भौगोलिक निश्चयवाद का जीववैज्ञानिक पर्याय है, व्याख्याताओं में से एक है।

फिर भी, हण्टिगटन निश्चयवादियों के स्थान से काफ़ी आगे बढ़ गये हैं तथा यह स्वीकार करते हैं कि संभवतः अपने चुनाव संबंधी प्रभाव से, सामाजिक कारण भी, उतने ही बड़े परिवर्तन कर सकते हैं जितने वड़े उन्होंने परिस्थिति द्वारा बतलाये हैं, क्योंकि ऊपर दिये हुए अवतरण के साथ ही वे कहते हैं —

"भौतिक परिस्थिति में कोई स्पप्ट विभिन्नता न होने पर भी वे हो सकते हैं परन्तु सामाजिक रीतियों में होनेवाले परिवर्तनों के साथ सामंजस्य बनाये रखते हुए, जैसे लडकियों को अपना पति चुनने की स्वतन्त्रता अथवा किसी नये विचार का समावेश, जैसे गर्भनिरोध का विचार। इस प्रकार येल (Yale) के विद्यार्थियो में गर्भरोध की नयी सामाजिक रीति ने तिकोने की अपेक्षा चौकोर आकार के मनुष्यों अथवा उनकी पत्नियों को अधिक प्रभावित किया है। सम्भवतः शारीरिक गठन की विभिन्नता से सम्बन्धित स्वभाव की विभिन्नता के कारण ऐसा हुआ।

इसलिए हम यह प्रश्न कर सकते हैं कि परिस्थितिवादियों के भौगोलिक मत की धीरे-धीरे क्यों इतनी अवनति हो गयी तथा उसकी सीमा क्यों इतनी संकुचित रह गयी कि अभी तक अपने को निश्चयवादी कहलाने वाले लोग या तो जाति के निर्माण में परिस्थिति के परिवर्तनकारी प्रभाव को पूर्ण रूप से अस्वीकार कर दें अथवा यदि वे इस सीमा तक जाने को तैयार न हों तो परिस्थिति के साथ-साथ वैसे ही अन्य शक्तिशाली कारकों का होना स्वीकार करें।

सम्भवतः इस प्रश्न का दोहरा उत्तर है।

प्रथम यह कि उनका घटते जाना उपार्जित गुणवाद के उतार के साथ-साथ चल रहा है, क्योंकि वैज्ञानिक प्रमाणों के प्रकाश में जीव-वैज्ञानिक मतवालों में से उस सिद्धान्त के अनुयायी कम ही मिलते हैं[२]। इसके विषय में हमें कुछ समय बाद काफ़ी कहना है जब कि हम परिस्थिति के प्रभाव से सम्बन्धित जीव-वैज्ञानिक प्रमाण पर आधारित कुछ मुख्य तत्त्वों की चर्चा करेंगे।

दूसरा कारण भूगोल के क्षेत्र में ही मिलता है जहाँ पर सम्भववाद नाम का एक

१. Prof. Franz Boas

२. यह देखना शेष है कि रूस में उपार्जित गुणवाद के पुनरुत्थान के पश्चात् वहाँ पर भौगोलिक निश्चयवाद का, इसी के समान पुनर्विकास होता है या नहीं।

प्रतिद्वन्द्वी सिद्धान्त, जिसको माननेवाले अधिक लोग हैं, उसका स्थान ग्रहण करता जा रहा है ।

सम्भववाद (Possibilism)

स्थूल रूप से सम्भववाद का मत, निश्चयवाद के आवश्यक पहलुओं को छोड़कर अन्य पहलुओं से सम्बन्धित रहा है । हमारी दृष्टि से आवश्यक पहलू वह है जिसका सम्बन्ध मनुष्य के सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक कार्यों के विकास पर पड़नेवाले भौगोलिक प्रभाव से है।

इस मत की उत्पत्ति प्राकृतिक विज्ञान की अपेक्षा सीधे इतिहास के क्षेत्र से हुई तथा उस पर मनुष्य की चुनाव की स्वतन्त्रता के सिद्धान्त का काफी प्रभाव पड़ा है।

इस दृष्टिकोण का फारे[१] ने अपनी ज्योग्रेफिकल इन्ट्रोडक्शन टु हिस्ट्री में, वाइडल डेला ब्लाश[२] तथा ब्रुने[३] ने फ्रान्स में और इसाइया बोमैन[४] तथा अन्य ने अमेरिका में समर्थन किया।

इनके सिद्धान्तों ने मनुष्य पर पृथ्वी के प्रभाव की अपेक्षा पृथ्वी पर मनुष्य के प्रभाव पर ज़ोर दिया है।

सम्भववादी दर्शन का मुख्य विचार यह है कि परिस्थिति अनुमोदक है, आज्ञा देनेवाली नहीं।

जिस प्रकार यह प्रतीत होता है कि बाद के निश्चयवादी कभी कभी दो लहजे में बोलते हैं और यह विचार त्याग देते हैं कि मनुष्य तथा उसके समाज के उद्विकास में परिस्थिति का पूर्ण प्रभाव पड़ता है, ठीक उसी प्रकार जब हम सम्भववादियों को बोलते हुए पाते हैं तब उनकी भाषा से स्पष्ट परिस्थितिवादियों का मत प्रकट होता है, जिस प्रकार कि वाइडल डिला ब्लाश **'परिस्थिति के श्रेष्ठ प्रभाव'** के बारे में कहता है तथा ब्रुने भी उसी प्रकार की भाषा का प्रयोग करता है।

ये तथ्य हमारे मस्तिष्क में शंका उत्पन्न कर देते हैं कि सम्भववाद ने जो इतना अधिक निश्चयवाद का स्थान ले लिया है, क्या यह, जैसा कि मानववैज्ञानिक अथवा

१. Febvre.
२. Vidal de la Blache.
३. Brunhes.
४. Isaiah Bowman.

जननिकशास्त्र का ज्ञाता कहेगा, ठीक कारण से हुआ है। कारण, यह स्पष्ट है कि भूगोल-वेत्ताओं के कुछ समूहों में साधारणतया भूतकाल में तथा अब भी, कम प्रावैधिक शिक्षा-प्राप्त मनुष्यों के समान, कुछ ऐसी प्रवृत्ति मिलती है कि वे मनुष्यों की वर्तमान विभिन्नता में परिस्थिति का प्रभाव देखते है।

जहाँ तक वे ऐसा करते है वे जीव-विज्ञान में उपार्जित गुणवाद के माननेवालों के साथी है, परिणामतः अब भी भौगोलिक निश्चयवादी बने रहते हैं।

सम्भववादियों ने मुख्यतः दार्शनिक दृष्टिकोण से आलोचना की है और पूछा है कि क्या मनुष्य अपने कार्यो के लिए स्वतन्त्र है? इस प्रकार वे वर्तमान तथा निकट भूतकाल के दर्शनों की साधारण प्रवृत्ति बतलाते है, जो कि आर्मीनियावाद (Arminianism) तथा उसके 'स्वतन्त्र इच्छा के सिद्धान्त' से मिलती-जुलती अथवा उससे उत्पादित हुई। निश्चयवादी लोगों के प्रति उनका आक्षेप उसी प्रकार का है, जैसे कि आर्मीनिया निवासियों का कैल्विनवादियों के पूर्वनिर्धारित भाग्य या प्रारब्ध[1] के सिद्धान्तों के प्रति था।

जहाँ तक ऐसा है, वास्तव में इसका अर्थ यह नहीं निकलता, जैसे हम आगे देखेंगे, कि जाति-विज्ञान के प्रमाण की जननिक रूप से व्याख्या सम्भववाद के पक्ष में है। इसलिए हो सकता है कि वंशानुगति के तथ्यों की अधिकांश वैज्ञानिक चाहे कितनी ही व्याख्या करें कि वे परिस्थितिवादियों के इस विश्वास के विरुद्ध हैं कि परिस्थिति में सक्रिय परिवर्तन की शक्ति है, फिर भी इसके विपरीत जातीय जननिक विज्ञान से उत्पन्न दार्शनिक सिद्धान्त भौगोलिक निश्चयवादियों के अधिक समीप हो सकते हैं तथा वे मनुष्य की अपनी स्वतन्त्र इच्छा को कार्यान्वित करने की सम्भावना को सीमित करते दिखलाई पड़ते हैं।

इसकी इससे अधिक व्याख्या करने से हम अपने अनुसन्धान के क्षेत्र से बाहर निकल जायेंगे, फिर भी इन तथ्यों की ओर ध्यान आकर्षित करना आवश्यक था, क्योंकि हमारी छानबीन में उनका विशेष महत्त्व है। प्रथम दृष्टि में यह कहा जा सकता है कि चूँकि भौगोलिक निश्चयवादियों का मत इतने स्पष्ट रूप से अवनत हो रहा है इसको निर्णयकारी प्रमाण के रूप में ले सकते है कि स्वयं भूगोलवेत्ताओं की श्रेणियों में ही

१. पिछली शताब्दी में काल्विनवाद जितना बदनाम हो गया था, उसे देखते हुए किसी को सम्भववाद जैसे सिद्धान्त की, जो उसके विरोधियों से अधिक मिलता-जुलता है, सफलता पर आश्चर्य नहीं होता।

वंशानुगति की परिवर्तनकारी शक्ति के सिद्धान्त का खण्डन हो गया है, इसलिए उससे मिलते-जुलते उपार्जित गुणवाद की भी थोड़ी सी अवनति दिखलाने के सिवाय उदविकास में परिस्थिति के प्रभाव की अधिक व्याख्या करने की कोई आवश्यकता नहीं।

चूंकि, ऐसा प्रतीत होता है कि भूगोलवेत्ताओं ने, जो सम्भववादी मत के हैं उन्होंने भी परिस्थिति के सर्जनशील महत्त्व का पूर्ण रूप से त्याग नहीं किया है तथा निश्चय-वादियों पर उनकी सफलता में ऐसे दार्शनिक परिणाम मिलते हैं जिन्होंने उस सफ-लता पर काफ़ी प्रभाव डाला है, इसलिए हम जातिविज्ञान के विकास में परिस्थिति की क्रियाशील शक्ति के प्रश्न को समाप्त कर देने के सम्बन्ध में निश्चयवादियों की हार को स्वीकार नहीं कर सकते।

इसके अतिरिक्त चूंकि निश्चयवादियों के सिद्धान्तों का, इन्हीं दृष्टिकोणों से जीवन के अनेक क्षेत्रों में प्रचलन है तथा हमारे राजनीतिक और सामाजिक मतों के विकास में इनका काफ़ी प्रभाव है, यह ठीक नहीं प्रतीत होता कि व्याख्या यहीं समाप्त कर दी जाय तथा आगे न ले जायी जाय, जहाँ हम जननिक एवं जाति-विज्ञान[1] के अधिक कड़े तथा आग्रहशील नियमों के अन्तर्गत, जातियों और नये प्रकार के मनुष्यों के निर्माण में परिस्थिति के प्रभाव की परीक्षा कर सकें।

१. जो कि विज्ञान की एक शाखा है जिसे हम जातीयजननिक विज्ञान कहते हैं, जब हम जातिविज्ञान को जननिक विज्ञान के साथ लेते हैं।

सोलहवाँ अध्याय

उपार्जित गुणों की पित्रागति के विरुद्ध प्रमाण

हम निश्चयवादी दर्शन के विकास का क्रम देख चुके जो पूर्व काल से भौगोलिक परिस्थिति के कुछ स्पष्ट कारकों पर आधारित रहा है तथा हमने अभी तक इस समस्या की व्याख्या के लिए मनुष्य तथा अन्य जीवित पदार्थों के जननिक पित्रागति के वर्तमान ज्ञान से निश्चय किये गये तथ्यों का प्रयोग करने का कोई प्रयत्न नहीं किया है। जो कुछ हमने देखा उससे वंशानुगति के ज्ञान के बिना मतों की अनिश्चितता स्पष्ट है जहाँ जाति के बनने में निर्माणकारी शक्ति के रूप में भौगोलिक निश्चय के पक्ष अथवा विपक्ष में निश्चित रूप से कहना कठिन है। फिर भी हम यह सुझाव देने का साहस करते हैं कि जब जीव-विज्ञान के तथ्यों को, हम भौगोलिक परिस्थिति के विस्तृत सिद्धान्तों पर आधारित अधिक साधारण ज्ञान के साथ देखते है, तब कोई सन्देह नहीं रहता, जैसा कि पाठक स्वयं ही देख सकते हैं, कि भौगोलिक निश्चय की सर्वव्यापक शक्ति पर निरन्तर विश्वास रखने के लिए कोई स्थान नही रह जाता, जहाँ तक इसका अभिप्राय है कि जाति का निर्माण भूगोल द्वारा हुआ है।

भौगोलिक निश्चयवाद तथा उपार्जित गुणवाद

भौगोलिक परिस्थितिवादियों द्वारा जो तर्क उपस्थित किये जाते है, वास्तव में, वे जीव-विज्ञान के कतिपय क्षेत्रों में उपार्जित गुणवाद (लामार्किज्म) के नाम से काफ़ी समय पहले से प्रचलित थे। यह तथ्य स्वयं महत्त्वपूर्ण है कि यह सिद्धान्त त्याग देना पड़ा है तथा आज अमेरिका तथा रूस में नवोपार्जित गुणवाद (Neo-Lamarkian) के माननेवालों के अतिरिक्त मुश्किल से बहुत थोड़े वैज्ञानिक इसे मानते है। इसका कारण यह है, जैसा कि हम किसी अन्य स्थान में बतला चुके है, कि अनेक प्रसवनों के सम्परीक्षण के उपरान्त भी उपार्जित **गुणों की पित्रागति** का कोई प्रमाण नहीं मिलता, जब कि अनेकों में, पूर्ण रूप से उसके विपरीत ही मिलता है।

यह सम्भव नहीं है कि प्राचीन काल से लेकर वर्तमान काल तक के निश्चयवादियों के विचारों को लेकर उनकी समालोचना की जाय। इसलिए, मुख्य रूप से हम अधिक

विस्तृत उदाहरणों की अपेक्षा कम साधारण प्रस्तावनाओं को लेना ठीक समझते हैं, जहाँ पर पित्रागति, परिस्थिति की तुलना में अधिक निर्णायक है।

इसलिए हम भौगोलिक निश्चयवादियों के केवल कुछ मुख्य तथा स्पष्ट दावों या कथनों की समालोचना करने तक ही अपने को सीमित रखेंगे और फिर इनमें तथा आगे के पृष्ठों में वंशानुगति के आवश्यक प्रमाणों की कुछ विस्तार से परीक्षा करेंगे।

जलवायु तथा रंग

इस प्रकार हमने देखा कि ई० पू० दूसरी शताब्दी में पोलीबियस का कथन था कि मनुष्यों में आकार और रंग की विभिन्नता का मुख्य कारण जलवायु है। यदि यह एक पौराणिक मत ही होता तो हम बिना किसी व्याख्या के इसे छोड़ देते। परन्तु, आश्चर्य है कि यह ऐसा मत है जो साधारणतया ग्रहण किया जाता है, मुख्यतः जहाँ रंग का सम्बन्ध है। उदाहरणार्थ किसी प्रदेश के रंग तथा वहाँ के निवासियों की रंग की आवश्यकता में स्पष्ट सम्बन्ध है। इस प्रकार बहुत से लोग भूतकाल में तथा कुछ आजकल भी यह तुरन्त कह उठते है कि श्वेत रंग का मनुष्य यदि उष्ण कटिबन्ध में रहता है तो वह अपने ही जीवनकाल में परिस्थिति के अनुकूल बनने के प्रयत्न में गहरे भूरे रंग का हो जाता है। इसके सिवा परिस्थिति का यह प्रभाव हम उस समय भी देखते है जब कि अधिक मात्रा में दूध पानेवाले पाठशाला के विद्यार्थी, उन विद्यार्थियों की अपेक्षा कद में अधिक बढ़ जाते है जिनको दूध इतना नहीं मिलता। तब यह परिणाम निकाला जाता है कि इन आँकड़ों से परिस्थिति के प्रभाव का व्यावहारिक प्रदर्शन हो जाता है।

फिर भी, यह सब स्पष्ट भ्रम है। धूप से झाँवर पड़े हुए रंग वाले मनुष्यों के भी श्वेत त्वचा के बच्चे होते हैं तथा उष्ण कटिबन्ध में एक सहस्र पीढ़ियों के पश्चात् भी यह तथ्य नहीं बदलेगा, जैसा कि जननिक विज्ञान के तथ्यों से, जितना ही उसका अध्ययन किया जाता है, उतना ही यह स्पष्ट हो जाता है।

लेबानान में बेथलेहैम[1] के ड्रूसेज़ (Druses) निवासियों में तथा भारत के

१. **विलहेम सीगलिन** (Wilhelm Sieglin) Die blonden Haare der Indogermani schen. Volker des Altertums **म्युनिख, १९३५, पृष्ठ १२६, "इन हिज स्टेप्स"** (In his Steps"), **लन्दन, १९३९, खण्ड १, पृष्ठ १० को भी देखिए—"बैथलेहैम की बहुत-सी स्त्रियों की आँखें नीली तथा आकार यूरोप निवासियों समान है जिससे इस वंश में धर्मयुद्ध में सहायता देनेवालों (क्रूसेडर्स) का मिश्रण प्रकट होता है।"**

(अब पाकिस्तान के) उत्तर-पश्चिमी प्रदेश के पठानों में, कुछ में दो सहस्र वर्षों से अधिक होने पर भी, **स्वर्ण केश तथा नीली आँखें पायी जाती हैं।** इसी तरह कुछ सीमा तक जातीय मिश्रण के उपरान्त भी वे मनुष्य तथा जातियाँ जो कि भारत पर काकेशिया (Caucasian) के आक्रमणकारियों से सम्बन्धित हैं, अन्यों की अपेक्षा साफ़ रंग की दिखलाई पड़ती हैं।

यदि परिस्थिति में (इसके सिवाय कि वह प्राकृतिक चुनाव द्वारा अनुपयुक्त तत्त्वों का नाश कर दे) मनुष्यों के प्रकारों में परिवर्तन करने की शक्ति होती तो ये श्वेत तथा अधिक श्वेत मनुष्य बहुकाल पूर्व ही विलीन हो गये होते।

इसके उपरान्त भी परिस्थितिवादियों को इसकी व्याख्या करनी है कि काली जातियाँ, जैसे कि कांगो के नीग्रो, क्यों उसी परिस्थिति में रहती हैं जिसमें कि बोर्नियो (Borneo) के पीले पुनान (Punan) तथा अमेज़न (Amazon) में पीलापन लिये हुए भूरे रंग के निवासी रहते हैं अथवा क्यों एक ही कटिबन्ध में काले फीजी-निवासी तथा श्वेत समोआनिवासी रहते हुए पाये जाते हैं।

परिस्थिति तथा कद

उदाहरणार्थ, देशान्तरगमन में जो कद की वृद्धि दिखलाई पड़ती है वह भूगोल द्वारा जातिगत गुणों में उस तरह मुख्य रूप से परिवर्तन होने का प्रमाण नहीं है जिस तरह भौगोलिक परिस्थितिवादियों तथा उपार्जित गुणवादियों ने माना है।

इस प्रकार से ऊँचाई या कद में वृद्धि का मिलना अच्छी परिस्थितियों के प्रति मनुष्यों के सामूहिक सक्रिय होने का उदाहरण है। परन्तु रहने की दशाओं में ऐसा सुधार होने से कोई मनुष्य अपनी जाति के गुणों की निश्चित सीमा से आगे नहीं बढ़ जायगा।

साधारणतया ब्रिटेन तथा अन्य जगहों के औद्योगिक शहरों में जीवन की दशाएँ ऐसी थीं कि १९वीं शताब्दी में शारीरिक अवस्था में अवनति हुई है, इसलिए औद्योगिक अंग्रेज़ का शारीरिक स्वास्थ्य जैसा होना चाहिए उससे कम मिलता है। परिणामतः, इसमें आश्चर्य नहीं कि उनका ढाँचा उनकी जाति के औसत कद से कम हो। अच्छे पोषण से कद की वृद्धि में तुरन्त प्रभाव पड़ता है, यह इंग्लैण्ड के तथा अन्य देशों के औद्योगिक क्षेत्रों में नवयुवकों की पीढ़ी में देखा जाता है, परन्तु इस प्रकार का सुधार इसीलिए संभव हुआ कि अच्छी परिस्थिति ने उन्हें जाति के औसत कद तक बढ़ने का मौका दिया।

यही परिस्थिति का कार्य है कि वह जाति के विकास को संकुचित अथवा प्रोत्साहित कर सकती है पर वह जाति का **निर्माण** नहीं करती।

कद का वंशानुगत आधार

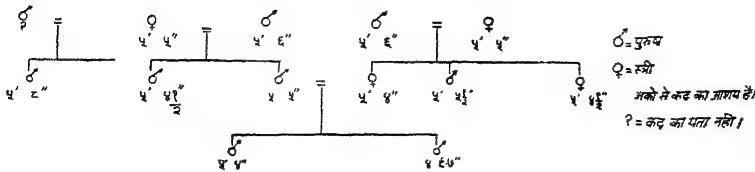
फिर भी साधारण से विशेष की ओर आकर हम सुझाव देते हैं कि निम्न चित्र, जो कि सहस्रों उदाहरणों में एक है, इस विचार का पूर्णतः खण्डन कर देता है कि कद मूल रूप से वंशानुगति पर नहीं, परन्तु परिस्थिति पर आधारित है।[१]

इस चित्र में यह देखा जायगा कि जो कुल या परिवार लम्बे मनुष्यों से प्रारम्भ हुए उनमें लम्बे पुरुष तथा स्त्रियों का प्रसवन होता रहा, जब कि उन कुलों में बिलकुल विपरीत मिलता है जिनका प्रारम्भ छोटे मनुष्यों से हुआ।

लम्बे मनुष्योंवाले कुल में केवल एक छोटे कद का है तथा काफ़ी सम्भव है कि यह खराब पोषण अथवा बाल्यावस्था में बीमारी के कारण हो।

बहुधा विपरीत दशाओं के कारण लोग अपने स्वाभाविक कद से छोटे होते हैं जैसा कि औद्योगिक क्षेत्र के अंग्रेज़ों में होता है जिनकी चर्चा हम अभी कर चुके हैं।

चित्र नं० १२३
छोटे कद का वंशानुगत आधार



टिप्पणी—५' ६' से कम ऊँचाई के पूर्वजों के वंशजों में कोई एक भी उस कद तक भी नहीं पहुँचता। इस चित्र की अगले चित्र की लम्बे समूहवालों की सन्तति से तुलना कीजिए।

परिस्थिति से प्रभावित बौनों का ढांचा

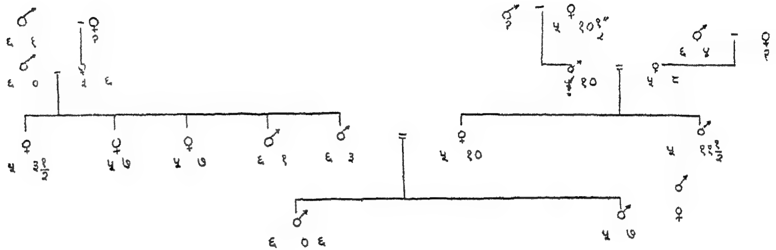
इस प्रकार के रुद्ध विकास का अन्य उदाहरण बहुत सी बौनी वन्य जातियों में मिलता है, जो वास्तव में जितना छोटा होना चाहिए उससे, खराब परिस्थितीय दशाओं के कारण, अधिक छोटी हैं। टोर्डे[२] ने खोज की कि कसाई नदी के कांगो बटवा बौने, जो वनों को दो पीढ़ी पूर्व ही त्याग कर कृषक हो गये थे, साधारण बौनों से लम्बे थे।

१. **पापनो तथा जानसन** (Popinoe and Johnson), **पूर्वलिखित**, पृष्ठ १४, ए० एफ़० २. Torday.

यहाँ तक परिस्थिति के परिवर्तन से उनके कद मे सुधार हुआ है। तिस पर भी वे अपने पड़ोसी बगुगो लोगो के समान नही थे जो लम्बी जातीय सन्तति मे थे।

चित्र नं० १२४

लम्बे कद का वंशानुगत आधार



पुरुष तथा स्त्री के सूचक संकेत वही हैं जो चित्र नं० १२३ की दाहिनी ओर दिये हैं।

अंकों से कद का आशय है

? कद का पता नहीं

टिप्पणी——इस वंश मे सबसे छोटा पुरुष पिछले चित्र के सबसे बड़े से बड़ा है। एक छोटी स्त्री का (५" ३ १।२") बालावस्था मे बीमारी के कारण अवरुद्ध विकास हुआ है।

किसी भी जीव-वैज्ञानिक को, जब तक कि वह उपार्जित-गुणवादी (लामार्कियन) न हो, पिटर्ड[1] के इस कथन से सहमत होने में कोई कठिनाई नही होगी——

"हमे यह विश्वास दिलाना व्यर्थ है कि मूल रूप से जो जातियाँ छोटे कद की थी, उनसे लम्बी जातिवालो का निर्माण हुआ है——जब तक कि अचानक कोई उत्परिवर्तन न हुआ हो। ऊँचाई को यदि शरीर की बनावट के गुणो के औसत स्वरूप देखा जाय तो वह वशानुगति के कारण[2] है।"

१. यूजीन पिटर्ड (Eugene Pittard), पूर्वलिखित, पृष्ठ ३७

२. यह महत्त्वपूर्ण है कि कुक्कुटों का बौनापन जो छोटी जाति की उत्पत्ति करता है, वंशानुगति के कारण है।

वंशानुगति तथा दीर्घायु

यह न केवल कपाल के आकार, त्वचा के रंग तथा कद तक के सम्बन्ध में ही सत्य है परन्तु यह दिखलाया जा सकता है कि परिस्थिति नहीं बल्कि वंशानुगति ही अन्य विभिन्न लक्षणों के लिए अधिक महत्त्वपूर्ण है, यों देखने में चाहे उनका सम्बन्ध वंशानुगति की अपेक्षा हमारे पास की परिस्थितियों से अधिक जान पड़े।

उदाहरणार्थ, सांख्यिकीय जाँचों से पता चलता है कि यद्यपि परिस्थिति भी महत्त्वपूर्ण है, फिर भी यह जानने के लिए कि हम में से प्रत्येक कितने वर्षो जीवित रहेगा, वंशानुगति अधिक प्रभावकारी है।

पौपनो तथा जानसन[1] आँकड़े देकर बतलाते हैं कि बालमृत्यु का औसत उन वंशों में राष्ट्रीय औसत से कम है जिनमें दीर्घायु होने की वंशानुगत प्रवृत्ति मिलती है। वे उन उदाहरणों के विषय में जिनको उन्होंने उद्धृत किया है, बतलाते है—

"इस जनसंख्या में जिसमें कि असाधारण रीति से बालमृत्यु की गति कम मिलती है, ऐसा नही है कि उसे बच्चों के बचाव के आन्दोलन की सहायता मिली हो अथवा उसे वर्तमान वैज्ञानिक ज्ञान की सहायता ही मिली हो। उसकी माताएँ अधिकांशतः निर्धन ही थीं, उनमें से बहुत सी अज्ञान तथा बहुधा कठिनाई में ही रहीं, वे किसान तथा कार्यकर्त्री थीं। उनके बच्चे बिना किसी डाक्टर, बिना शुद्ध दूध, बिना बर्फ़ के, बिना किसी सफ़ाई के तथा बहुधा साधारण भोजन ही पर रहे है। परन्तु उनको एक लाभ था जो किसी भी मात्रा में प्रयोगात्मक विज्ञान उन्हें नहीं दे सकता और वह था अच्छी वंशानुगति का।"

उन्हें वंशानुगति से असाधारण रूप में अच्छी शारीरिक गठन मिलती थी।[2] बहुत से उदाहरणों में यह भी बतलाया गया है कि पाटशालाओं के बालक यदि चश्मा लगाते

१. पूर्वलिखित, पृष्ठ ४०७

२. एच० एच० हिब्स (H. H. Hibbs) का यह मत (इनफ़ैन्ट मार्टेलिटी Infant Mortality न्यूयार्क, १९१६) कि औद्योगिक केन्द्रों में बच्चों की अधिक मृत्यु अपूर्ण साधनों तथा खराब निवासस्थान के कारण होती है, पूर्ण रूप से तथ्यों द्वारा ठीक नहीं उतरता—हालाँ कि अवश्य ही स्वाभाविक रूप से ये कारक भी बच्चों की मृत्यु के कारण हैं, परन्तु यदि ये कारण गौण कोटि के नहीं तो वंशानुगति पर आधारित कारणों के अतिरिक्त ही माने जा सकते हैं। जैसा कि पोपनो तथा जानसन ने पूर्व लिखित पृष्ठ ४११, में बतलाया है—

हैं तो अपने माता-पिताओं के ही कारण।[१] इस सम्बन्ध में कार्ल पियर्सन (Karl Pearson) के कार्यों से भी वही परिणाम निकलते हैं।

वंशानुगति तथा मानसिक गुण

मानसिक गुणों में भी ऐसा प्रतीत होता है कि परिस्थिति नहीं, परन्तु वंशानुगति अधिक प्रभावशाली शक्ति है। कुमारी पेरिन[२] (Miss Perrin) ने डिक्शनरी आफ् नेशनल बायोग्राफ़ी तथा हूज़ हू में १५५० जोड़े पिताओं तथा पुत्रों पर अनुसन्धान किया है। उसने देखा कि. . .अनिश्चयता का गुणांक पिता तथा पुत्र के व्यवसाय में, प्रथम समूह में ·७६ तथा बाद वाले में ·७५ है। हम जानते हैं कि यदि सांख्यिकीय ढंग से बतलाया जाय तो पित्रागति का गुणांक लगभग ·५ होगा। परिणामतः हम शुद्ध तथ्यों के तर्क से ही इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि मनुष्य के व्यवसाय की पसन्द दो-तिहाई वंशानुगत झुकाव पर तथा एक-तिहाई परिस्थितीय दशाओं पर निर्भर होती है।

ये आँकड़े भारत ऐसे देश के लिए विशेष महत्त्व के हैं जहाँ का सामाजिक संघटन वर्णव्यवस्था पर आधारित है। हम देखेंगे कि नैतिक आधार पर हम चाहे जितना इस प्रथा को बुरा कहें, जिससे मनुष्य अपने पिता के व्यवसाय के लिए ही प्रेरित होता है,

"शाही तथा उनके शाही सम्बन्धियों के रहने का स्तर नीचा नहीं है परन्तु फिर भी उनमें बच्चों की मृत्यु की गति बहुत अधिक है—यह, जहाँ पर माता या पिता की मृत्यु युवावस्था में हो गयी हो, वहाँ पर १००० में ४०० के लगभग है।"

कार्ल पियर्सन, ई० सी० स्नो, तथा ईथेल, एम० एल्डरटन (Karl Pearson, E. C. Snow and Ethel M. Elderton) के कार्य यह बतलाने में सफल हुए हैं कि जहाँ पर राष्ट्र का काफ़ी धन खर्च करके बालमृत्यु को कम किया गया है वहाँ पर जो बच्चे प्रथम कुछ वर्षों में मृत्यु से बचा लिये जाते हैं, बाद के वर्षों में वे मृत्यु के शिकार होते हैं। क्योंकि उनमें साधारण परिस्थिति में भली भाँति जीवित रहने की शक्ति नहीं रहती।

१. पोपनो तथा जानसन, पूर्वलिखित, पृष्ठ १३–१४।

जहाँ तक वंशानुगत आँख की खराबी का सम्बन्ध है, यह सम्भव है कि वह केवल एक एकक कारक मान ली जाय तथा उसे साधारण नेत्रज्योति के ऊपर प्रभावी समझना चाहिए।

२. बायोमेट्रिका (Biometrika) III, १९०४, पृष्ठ ४६७

तिस पर भी बात यह है कि यदि उसे स्वतन्त्र चुनाव का अवसर मिलता तो अधिकतर उदाहरणों में वह उसी को पसन्द करता।

वंशानुगति तथा मानसिक अस्वस्थता

यदि हम मानसिक अस्वस्थता पर ध्यान दें तो देखेंगे कि वंशानुगति एक प्रभावशाली शक्ति है।

साइज़ोफ्रेनिया[१] एक साधारण मानसिक बीमारी है तथा यह १०० में एक मनुष्य में देखी गयी है। इसको कभी कभी **डेमेन्शिया प्रेकाक्स**[२] कहते हैं। यह पागलपन का प्रारम्भिक रूप है और साधारणतः २० से ३०-३५ वर्ष तक की उम्र में मिलता है। इसकी विशेषता रोगी का विभाजित व्यक्तित्व है जिसके कारण, बढ़ी हुई हालतों में, मनुष्य को पागलखाने तक में रखना पड़ता है। लक्जेमर्बगर[३] तथा वान वर्शुअर[४] के कार्यों से पता चलता है कि सम्बन्धियों से रहित मनुष्यों में साइज़ोफ्रेनिया होने की सम्भावना ·८५ प्रतिशत तथा सम्बन्धियों युक्त व्यक्तियों में साइज़ोफ्रेनिया से मिलते-जुलते मानसिक लक्षणों में २·९ प्रतिशत मिलती है, परन्तु पीड़ितों के ५००० भाइयों के अध्ययन में यह संख्या १०·८ प्रतिशत तथा ९·७ प्रतिशत मिलती है और पीड़ितों के १५९५ बच्चों में संख्या और भी अधिक हो जाती है जो क्रमशः १६·४ प्रतिशत तथा ३२·६ प्रतिशत मिलती है।

सम्बन्ध में दूरी होने के साथ साथ इस प्रतिशतता में बराबर कमी होते जाना महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि पोते ३ प्रतिशत तथा १३·८प्रतिशत, चचेरे भाईबहन १·८ तथा १०·२ प्रतिशत, भतीजे-भतीजियाँ १·८ तथा ५·१ प्रतिशत और भतीज-पोते, भतीज-पोतियाँ १·६ प्रतिशत तथा १·९ प्रतिशत थे।[५] शिथिलता लानेवाला पागलपन २०० में से एक में होता है तथा जहाँ तक देखा जा सकता है, इसका बनावटसम्बन्धी आधार है जो सम्भवतः पित्रागति में किसी प्रभावी पित्र्यक के[६] कारण है।

१. Schizophrenia

२. Dementia praecox

३. Fortschrift. Erbpathol. १९३७, भाग १

४. Erbpathologie, Steinkopff १९३७

५. कुछ ने यह परिणाम निकाला है कि साइजोंफ्रेनिया केवल एक अपसारी पित्र्यक के कारण है।

६. सी० स्टर्न (C. Stern) पूर्वलिखित, पृ० ४८९

अभी तक हमने जिन प्रमाणों को देखा—उनसे स्पष्ट होता है कि वंशानुगति की शक्ति काफी प्रभावशाली है, जब कि उसकी परीक्षा ऐसे प्रमाणों के प्रकाश में की जाती है, जिनका ठीक ठीक विश्लेषण किया जा सके। इसलिए यदि हेरन[१] अपनी पुस्तक "दि इन्फ़्लुयेन्स आफ़ अनफेवेरबुल होम एनवाइग्नमेन्ट एण्ड डिफ़ेक्टिव फिजीक ऑन दि इन्टेलिजेन्स ऑफ स्कूल चिल्ड्रेन" में मानसिक स्थिति, योग्यता तथा पोषण में दाँतों की दशा, स्वच्छता इत्यादि में कोई सम्बन्ध न पा सके तो कोई आश्चर्य नहीं है।

उपार्जित गुणों के पारेषण का कोई प्रमाण नहीं

यह सिद्ध करने के लिए कि परिस्थितीय दशाओं से उपार्जित गुणों की पित्रागति होती है, इस समस्या को उस दृष्टिकोण से देखा जाता है कि अच्छे गुण प्राप्त किये जाते हैं इसलिए उनका पारेषण होता है, तथा दूसरी पीढ़ी में इस प्रकार से सुधार हो जाता है और वह उद्विकास के मार्ग में आगे पहुँचा दी जाती है। यह मत लेमार्क का तथा उनके अनुयायियों का है।

इस मत के माननेवाले शायद ही कभी इस बात पर ध्यान देते हैं कि यदि यह ठीक होता तो इसके विपरीत भी ठीक हो सकता था। इस प्रकार प्रथम महायुद्ध में फ़ौजों की गर्जनावाली बीमारियाँ सैनिकों के बच्चों में पारेषित हो जाती। इसी तरह अन्य दोष तथा बुराइयाँ जो मनुष्य ग्रहण कर लेता है, जिनमें प्रतिकूल आर्थिक दशाओं के परिणाम भी शामिल हैं, बाद की सन्ततियों में फैल जातीं, किन्तु जैसा कि हमें साधारण निरीक्षण से मालूम है, बात ऐसी नहीं है।

अधिकांश अमेरिकानिवासियों के पूर्वज अमेरिका में निर्धन आप्रवासितों की भाँति आये परन्तु उनकी सन्ततियों में कोई चिह्न ऐसा नहीं मिलता जिससे यह सिद्ध हो कि उनमें उनके पितामहों, प्रपितामहों तथा अगणित पूर्वजों की निर्धनता के फल-स्वरूप, जो यूरोप के गाँवों तथा शहरों की कठिन स्थितियों को छोड़कर वहाँ गये थे, कोई अयोग्यता है।

जनसंख्या के इतने बड़े अनुपात में उन निर्धन आप्रवासितों से उत्पन्न होने का एक ही प्रभाव उन गुणों पर पड़ता है जो उस कृषकवर्ग की वास्तविक प्रकृति को प्रति-

१. डेविड हेरन (David Heren) "दि इन्फ़्लुयेन्स आफ़ अनफ़ेवरेबुल होम एनक्वाइरनमेन्ट एण्ड डिफ़ेक्टिव फिजीक आन दि इन्टेलिजेन्स आफ़ स्कूल चिल्ड्रेन" युजीनिक्स लेबोरेटरी, लन्दन, मेमोरियल सिरीज, नं० ८ (VIII)

फलित करते हैं जिससे वे आये हैं।[१] यह प्रभाव उनकी सांस्कृतिक पित्रागति की निर्धनता (कमी) में भी देख पड़ता है, जिससे अंशतः इस बात का भी पता चल जाता है कि उनके समाज के अधिकतर लोगों में क्योंकर वह प्रवृत्ति पायी जाती है जिसे हम शीघ्रातिशीघ्र धनी बन जाने की प्रवृत्ति कह सकते हैं। परन्तु इसका कारण यह नहीं है कि अमेरिका की धरती से ये गुण उपार्जित किये गये हैं या अमेरिका की परिस्थिति ने ही वहाँ के मनुष्यों की मानसिक तथा स्वभावसम्बन्धी प्रक्रियाओं को बदल दिया है। यह बिलकुल सांस्कृतिक या कहिए कि संस्कृति के अभाव की पित्रागति है और भौतिक, मानसिक तथा स्वभावसम्बन्धी पित्रागति से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

जैसा कि शीनफ़ेल्ड ने विश्वस्ततापूर्वक बतलाया है, "एक ऐसी स्त्री से उत्पन्न बच्चे जो कि अपनी बाल्यावस्था में सुन्दर रही हो, परन्तु किसी घटना, कठिनाई आदि के कारण जिसने अपनी सुन्दरता खो दी हो, लेश भर भी उससे भिन्न नहीं होंगे, जैसे वे तब होते जब वह चित्रजगत की रानी बन जाती।"[२] उपार्जित गुणों की पित्रागति (इनहेरिटेन्स) के विरुद्ध किये गये प्रमाणों के साथ हम इस तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए कह सकते हैं कि चीननिवासी अपने बच्चों के पैर हजारों वर्षों से बाँधते रहे हैं पर वे उत्पत्ति के समय अब भी कुरूप नहीं होते; उसी प्रकार यहूदियों में लगभग ३००० से ४००० वर्षों से खतना होता आया है परन्तु अब भी उनके बच्चे बिना खतना के ही उत्पन्न होते हैं। मुसलमानों के यहाँ भी यह रिवाज काफ़ी लम्बे काल से चला आ रहा है, हालाँ कि इतने समय से नहीं जितना कि यहूदियों के यहाँ। सारे संसार की जंगली जातियाँ अगणित पीढ़ियों में लाखों वर्षों से आकृति तथा जननसम्बन्धी अंग के काटने का रिवाज़ अपनाती आयी हैं परन्तु इन प्रथाओं ने पित्रागति पर किसी प्रकार का भी प्रभाव नहीं डाला है।

जैसा कि काफी समय पूर्व वीज़मैन (Weisman) ने दिखला दिया है—जब उसने कई पीढ़ियों तक चूहों की पूँछ काटी, तब भी कोई चूहा बिना दुम के नहीं उत्पन्न

१. इस प्रकार से मध्य तथा पूर्वी मध्य यूरोप के किसानों की प्रसन्न तथा दिखावे की प्रकृति एक प्रधान विशेषता है जो कि अंशतः अमेरिका की जनता के दिखावेपन तथा बहिर्मुखी गुणों की व्याख्या करती है।

२. **अमराम शीनफेल्ड** (Amram Scheinfeld) **दि न्यु यू एण्ड हेरेडिटी, चेटो एण्ड विन्डस** (The New you and Heredity, Chatto and Windus) **लन्दन, १९५२, पृष्ठ १८**

हुआ, कोई ऐसी विधि नही है जिससे कि यदि मनुष्य अथवा प्रकृति द्वारा शरीर के जीवित या बाह्याग पर कोई काररवाई की जाय तो वह किसी भी प्रकार से प्रजनन सम्बन्धी गुणो को बदल सके।

यदि ऐसा सोचा जाता है कि जितने नर्क अभी तक हमने साधारण जाति-विज्ञान तथा जननिक विचारो की दृष्टि से दिये है वे भौगोलिक परिस्थिति के उद्भवसम्बन्धी प्रभावो को अस्वीकार करने के लिए अपर्याप्त है जो कि उपार्जित गुणो के पारेषण के सिद्धान्त द्वारा कार्य करते है, तब इनका जुडवो के अधिक विस्तृत अध्ययन के साथ विचार करना चाहिए।

अवश्य ही मनुष्य के उद्विकास मे भूगोल के प्रभाव के लिए स्थान है। इसकी व्याख्या हम आगे करेंगे। वास्तव मे भौगोलिक प्रभाव का महत्त्वपूर्ण स्थान है परन्तु वह सर्जनात्मक रूप से कार्य नही करता, जो स्वयं मनुष्य की बनावट में परिवर्तन करता हो और वही वशानुगति द्वारा पारेषित हो जाता हो।

सत्रहवाँ अध्याय

जुड़वों के अध्ययन से वंशानुगति के महत्त्व के और अधिक प्रमाण

अब यदि हम उन प्रमाणों की ओर जायें जो कि जुड़वों के अध्ययन से मिलते हैं तथा जिन पर अब बहुत सा साहित्य उपलब्ध है, तो हम देखेंगे कि जिन परिणामों पर हम पहुँचे हैं उनसे ये काफ़ी हद तक मेल खाते हैं।

परिस्थिति तथा एकरूपधारी जुड़वे

वास्तव में यह कहना निरापद होगा कि यदि जातियों के विकास में परिस्थिति के प्रभावों की सम्पूर्ण रूप से नहीं तो मुख्य कारक के रूप में किये गये दावे की कमज़ोरी दिखलाने की अभी और आवश्यकता हो, तो यह चार्ल्स डारविन के चचेरे भाई तथा सुजनन विज्ञान के प्रवर्तक गाल्टन (Galton) और उनके अनुयायियों द्वारा किये गये जुड़वों के अध्ययन में मिलता है।

गाल्टन ने यह तर्क किया है कि यदि परिस्थिति का प्रभाव तथा पोषण अनुत्पन्न सचेतन की प्रकृति परिवर्तित कर सकता है तो यह समान जुड़वों के उदाहरण में प्रदर्शित किया जा सकता था।

इस प्रकार के जुड़वाँ (यमल) एक ही अस्तित्व से उत्पन्न होते हैं तथा यदि ये विभिन्न दशाओं में पाले जाते हैं तब इन दोनों व्यक्तियों में जो कि प्रारम्भ में जाति की दृष्टि से समान हैं, अलग अलग परिस्थिति के अनुभव के अनुसार एक दूसरे से भिन्नता हो सकती है। दूसरी ओर साधारण जुड़वाँ जो कि विभिन्न अस्तित्व से उत्पन्न हैं यदि एक ही परिस्थिति में पाले जायँ तो उन्हें एक दूसरे के समान हो जाना चाहिए।

गाल्टन ने लगभग ८० जोड़े समान जुड़वों के इतिहास का संग्रह किया, जिनमें से ३५ के बारे में एक एक ब्यौरा प्रामाणिक आधार पर रखा गया, जिससे विदित हुआ कि बच्चे बचपन में बिलकुल समान थे। पृथक्करण के पश्चात् देखा गया कि वे अन्तिम समय तक निश्चित रूप से अपरिवर्तित रहे।

जब कि साधारण जुडवो मे एक दूसरे से उतनी ही विभिन्नता पायी जाती थी जितनी कि समान जुडवो मे समानता मिलती थी।

एच० एच० न्युमैन (H H Newman), एफ० एन० फ्रीमैन (F. N Freeman) तथा के० जे० होलजगर[1] (K J. Holzunger) ने जो कार्य किये है वे महत्त्वपूर्ण है क्योकि उन्होने यह बतलाया है कि जब समान जुडवाॅ साथ साथ तथा अलग अलग पाले गये तो वजन के अतिरिक्त बहुत ही कम महत्त्वपूर्ण औसत विभिन्नता—ऊॅचाई, वजन तथा सिर की लम्बाई-चौडाई के विषय मे—मिली, जहाॅ पर अक वैसे ही थे जैसे न० ३ तालिका मे दिये गये है।

वजन की विभिन्नता कोई महत्त्वपूर्ण नही है क्योकि वजन ऐसी वस्तु है जिस पर पोषणसम्बन्धी दशाओ का बहुत शीघ्र प्रभाव पडता है तथा यह विभिन्नता असम्भावित नही है।

जब ये परस्पर सम्बन्धित गुणाको (को एफीशेण्टस्) मे परिणत किये जाते है तो परिणाम कही अधिक महत्त्वपूर्ण होता है, क्योकि जितना कि प्रथम दृष्टि मे पता चलता है, परिस्थिति का उससे कही कम प्रभाव पडता है, जैसा कि साथ मे दी हुई तालिका न० ४ मे तुलना से विदित होता है।

समानता के गुणाको का प्रमाण

पित्रागति नियम (मेण्डेलियन लॉ) के अनुसार बच्चे पूर्ण रूप मे अपने माता-पिता के आकार मे प्रजनित नही होते, हालाॅ कि उनके समस्त गुण वशानुगत होते है तथा पूर्वजो के प्रकारो से आते है। परिणामतः जब हम इस समानता अथवा सादृश्य के (जिसको हमने अभी व्यवसाय के पसन्द करने मे वंशानुगत झुकाव के सम्बन्ध मे बतलाया है) गुणाक को साख्यिकीय रूप मे प्रदर्शित करते है, तब यह आशा नही की जा सकती कि यदि ० किसी समानता को नही तथा १ पूर्ण समानता को प्रदर्शित करता है तब बच्चे ठीक अपने माता-पिता के समान न० १ मे प्रजनित होगे।

भाइयो की समानता के गुणाक मे ठीक यही सत्य है।

१. **ट्विन्स** (Twins), **ए स्टडी आफ़ हेरिडिटी एण्ड एनवाइरनमेन्ट** (A study of Heredity and Environment), **यूनिवर्सिटी आफ़ शिकागो प्रेस** (University of Chicago Press), **१९३७.**

तालिका नं ३

समान जुड़वों की ऊँचाई, वजन तथा सिर की लम्बाई चौड़ाई के आँकड़ों की तुलना, जब कि वे अलग-अलग तथा साथ साथ पाले गये हों

ऊँचाई (सेंटीमीटरों में)	१ ७	साथ-साथ पाले हुए दो समान जुड़वों के लिए	१·८	उनके लिए जो अलग-अलग पाले गये हों
वजन (पौंडों में)	४·१	,, ,, ,,	९ ९	,, ,, ,,
सिर की चौड़ाई (मिलीमीटर में)	२ ८	,, ,, ,,	२ ८५	,, ,, ,,
सिर की लम्बाई (मिलीमीटर में)	२ ९	,, ,, ,,	२·२०	,, ,, ,,

यह देखा जायगा कि समान जुड़वे जब साथ-साथ तथा अलग-अलग पाले जाते है तो सिवाय वजन के अंकों में बहुत थोड़ा अन्तर है।

इसलिए, कोई प्रमाण नहीं है कि परिस्थिति की कोई शक्ति वंशानुगत प्राप्त गुणों में परिवर्तन कर सकती है।

तालिका नं० ४

अलग अलग तथा साथ साथ पाले गये समान जुड़वों के आँकड़ों की तुलना तथा ऊँचाई, वजन और सिर की लम्बाई, चौड़ाई के विषय में गुणांक-पुनःसम्बन्ध द्वारा प्रदर्शित

ऊँचाई	०·९३२	साथ पाले हुए समान जुड़वों के लिए	०·९६९	उनके लिए जो अलग अलग पाले गये है
वज़न	०·९१७	,, ,, ,,	०·८८६	,, ,, ,,
सिर की चौड़ाई	०·९०८	,, ,, ,,	०·८८०	,, ,, ,,
सिर की लम्बाई	०·९१०	,, ,, ,,	०·९१७	,, ,, ,,

हम देखते है कि पित्रागति तथा भाइयों में समानता का गुणांक (कोएफीशेंट) सब ·५ तथा ·६ के पास मिलता है। इस प्रकार से भाइयों तथा बहनों में आँखों के रंग की समानता ·५२, कद की ·५१, कापालिक देशना की (जिसमें सिर की लम्बाई तथा चौड़ाई का अनुपात है) ·४९ तथा केशों के रंग की ·५९ है।

यह सब परिस्थिति की तुलना में वंशानुगति का अधिक महत्त्व सिद्ध करने में सहायक होते है क्योंकि उनसे विदित होता है कि साधारणतया, कम से कम ·५ से अधिक दिखलाई देनेवाला साम्य, वंशानुगति से सम्बन्धित मिलता है तथा शेष के लिए हमारी जननिक विद्या काफ़ी अंशों तक बतलाने में सहायक होगी। परिणामतः परिस्थिति के आँकड़े, यदि वास्तव में उनका अस्तित्व है अथवा वह जो कुछ भी है, ·५ से बहुत कम होना चाहिए जब कि जातीय अंक उससे काफ़ी अधिक है।

वंशानुगति तथा जुड़वों में शरीरसम्बन्धी गुण

अन्य बच्चों की अपेक्षा समान जुड़वों में परिस्थिति तथा वंशानुगति के प्रभाव पर जो अनुसन्धान हुए हैं, इनको केवल शारीरिक गुणों तक ही सीमित नहीं रखना चाहिए, जिनके बारे में अभी हमने बतलाया है।

इस प्रकार से रक्त-दबाव (याने Blood Pressure) तथा नाड़ी की गति के सम्बन्ध में यह देखा गया है कि समान जुड़वों में ऐसी दशाओं में क्रमशः ६३ प्रतिशत तथा ५६ प्रतिशत की समानता मिलती है, जबकि असमान जुड़वों में यह क्रमशः ३६ प्रतिशत तथा ३४ प्रतिशत मिलती है।[1]

वंशानुगति का प्रभाव स्पष्ट है। प्रथम मासिक धर्म दूसरा महत्त्वपूर्ण शरीरसम्बन्धी गुण है।

समान जुड़वों में प्रथम मासिकधर्म के समय के अन्तर २–८ मास दिखलाया गया है तथा असमान जुड़वों में १२ मास है। अन्य सपितृक बच्चों में १२·९ महीने में तथा माता-पुत्री के सम्बन्ध में १८·४ महीने और असम्बन्धित स्त्रियों में १८·६ महीने[2] का है।

उन दो व्यक्तियों के जीवनविस्तार में काफ़ी समानता मिलती है जो समान

१. **मलकोवा** (Malkova) **के कार्य पर आधारित, प्रोसीडिंग्स आफ़ मैक्सिम गोर्की** (Proceedings of Maxim Gorki), **मेडिकल बायलोजिकल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, ३, १९३४, सी० स्टर्न** (C. Stern) **से प्रोद्धरित, पूर्वलिखित, पृष्ठ ४७७/८**

२. Petri, Zeitschrift, Morph. V. Anthropology, **३३, १९३४**

जुड़वाँ हैं। कालमैन तथा सैन्डर[1] (Kallman and Sander) के अन्वेषणों ने यह सिद्ध कर दिया है, जिनसे पता चलता है कि जब कि समान जुड़वों में ६० वर्ष से आयु अधिक वालों में जीवनविस्तार का अन्तर ३६·९ मास था, असमान जुड़वों में यह ७८·३ था।

जुड़वों में वंशानुगति तथा खेलों सम्बन्धी शारीरिक शक्ति

वंशानुगति का प्रभाव अन्य अनेक गुणों में—बच्चे के चलना शुरू करने से बाद की खेलने की शक्ति तक, दिखलाया जा सकता है। इस प्रकार एक अध्ययन[2] में यह देखा गया था कि समान जुड़वों में ६९ प्रतिशत में चलने की सदृशता थी जब कि असमान जुड़वों में केवल ३५ प्रतिशत थी। एक दूसरे अध्ययन[3] में अंक इनसे मिलते जुलते थे जो क्रमशः ६७ तथा ३० प्रतिशत थे। जब कि कुछ जुड़वों के जोड़ों में कूदने की ऊँचाई में यह देखा गया कि समान जुड़वों में औसत अन्तर १·७५ तथा असमान में यह अन्तर ७·६ सेन्टीमीटर था।

जुड़वों में वंशानुगति तथा चिकित्सासम्बन्धी दशाएँ

चिकित्सासम्बन्धी दशाएँ प्रत्यक्ष रूप से वंशानुगति द्वारा काफ़ी निकटता से नियन्त्रित हैं जैसा कि इस सम्बन्ध में (जिनमें से कुछ की व्याख्या हम अन्य स्थान पर कर चुके हैं) न केवल साधारण जननिक अध्ययन से ही परन्तु मुख्यतः समान जुड़वों के अध्ययन से स्पष्ट है जहाँ पर परिस्थिति के प्रभाव से इसका सम्बन्ध महत्त्वपूर्ण है।

उदाहरणार्थ, चेचक के विषय में जो सभी अथवा लगभग सभी बच्चों को हो सकती है, यदि वे छूतवाले क्षेत्र के निकट आ जाते हैं, इसका विस्तार जुड़वों के समान जोड़ों में असमान की अपेक्षा अधिक होगा। (८७ प्रतिशत की अपेक्षा ९५ प्रतिशत तुलना करने पर मिलता है)

१. **'इन जर्मनी'** (In Germany), **वी० वर्शुअर** (V. Verschuer) **द्वारा, १९२७, सी० स्टर्न** (C. Stern) **पूर्वलिखित, पृष्ठ ४८० से प्रोद्धरित**

२. **बोसिक** (Bossik) **द्वारा, यू० एस० एस० आर०** (U. S. S. R.) **१९३४ सी० स्टर्न, पूर्वलिखित, पृष्ठ ४८० से प्रोद्धरित**

३. **मिरेनोवा** (Mirenova), **प्रोसीडिंग्स, मैक्सिम गोर्की मेडिकल बायलोजिकल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, १९३४, ३**

साधारण रूप से मानसिक गुणों की पित्रागति पर किये गये अनुसन्धान से निकले परिणामों का जुड़वों के अध्ययन से भी समर्थन होता है।

इस प्रकार से साइजोफ्रेनिया के उदाहरण में, जैसा कि हमने दिखलाया है अवश्य ही वंशानुगति का आधार होना चाहिए, हम पाते हैं कि स्टर्न[1] वान वर्शुअर से लक्जेम्बर्जर[2] तक रोजनाफ़[3], प्लेसेट[4] तथा ब्रश[5] के कार्यों के आधार पर इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि असमान तथा समान जुड़वों में मानसिक अस्वस्थता क्रमशः ११ प्रतिशत तथा ६८ प्रतिशत है। जैसा कि स्टर्न बतलाते हैं—

"समान तथा असमान जुड़वों में सदृशता की वारम्बारता में काफ़ी अन्तर है ...। यह बहुत कम ठीक जान पड़ता है कि परिस्थिति में अधिक समानता, जुड़वों में साइजोफ्रेनिया के अधिक सादृश्य के लिए उत्तरदायी है।"

वह, कालमैन द्वारा बतलाये हुए एक उदाहरण की ओर ध्यान आकर्षित करता है, जहां समान जुड़वाँ बहनें जन्म के उपरान्त विभिन्न घरों में अलग अलग कर दी गयीं तथा एक-दूसरी से शायद ही कोई सम्बन्ध रहा हो। १५ वर्ष में एक ने जो कारखाने में कार्य करती थी, एक अवैध बच्चे को जन्म दिया तथा दूसरी एक परिवार की सुरक्षित शरण में एक घरेलू नौकरानी की भाँति रही। परन्तु दोनों को साइजोफ्रेनिया हो गया, एक को बच्चे के जन्म के उपरान्त ही तथा दूसरी को डेढ़ वर्ष पश्चात्। जैसा कि उसने ठीक ही बतलाया है, उसमें बीमारी की शारीरिक बनावट-सम्बन्धी पृष्ठभूमि का संकेत मिलता है। स्पष्ट रूप से परिस्थिति का प्रभाव अवैध गर्भाधान वाले उदाहरण में यह हुआ कि बीमारी और भी शीघ्र हुई।

उन्मत्त उदासी के साथ पागलपन एक दूसरे प्रकार की मानसिक बीमारी है जिसमें जुड़वों के प्रमाण महत्त्वपूर्ण हैं। जर्मनी में लक्जेम्बर्जर तथा अमेरिका के रोज़नाफ,

१. **सी० स्टर्न** (C. Stern) **पूर्व लिखित, पृष्ठ ४८८**

२. Luxemberger

३. Rossanoff

४. Plesset

५. **अमेरिकन जर्नल आफ़ साइकियेट** (American Journal of Psychiat), ९१, १९३४

हैन्डी तथा प्लेसेट ने असमान जुड़वों में कम सादृश्य तथा समान जुड़वों में अधिक सादृश्य दिखलाया है।

जुड़वों में वंशानुगति तथा क्षीण बुद्धि

क्षीण बुद्धि उस मानसिक अस्वस्थता के साथ निकटता से सम्बन्धित है जिसकी व्याख्या हम अभी तक करते रहे हैं। यह मानसिक पीड़ित के, जिसका जड़ (मूढ़) के अन्तर्गत वर्गीकरण हुआ है, तथा साधारण बुद्धि के लोगों के मध्य की अवस्था है। बुद्धिपरीक्षा में इन लोगों को ५० से ७० नम्बर तक मिलते हैं। पश्चिमी देशों में, जिनके कुछ आंकड़े हमारे पास हैं, उनकी संख्या नगण्य नहीं होती। साथ ही हमारा विश्वास है कि ये लोग इस विषय में निराले नहीं हैं।

जड़ता तथा बुद्धि की क्षीणता दोनों ही जन्म (Natal) के पूर्व तथा पश्चात् मस्तिष्क में चोट लगने के परिणामस्वरूप हो सकते हैं। परन्तु इन कारणों को अलग कर दें तो जननिक में जननसम्बन्धी प्रमाण से पित्रागति का ज्ञान हो सकता है जिसके फलस्वरूप ऐसी दशा उससे अधिक होनी चाहिए जितनी कि सम्पूर्ण जनसंख्या में साधारणतया मिलती है। यदि हम जुड़वों द्वारा प्रस्तुत किये गये प्रमाणों को देखें तो यह सिद्ध हो जाता है। उदाहरणार्थ, डेनमार्क में क्षीण बुद्धि वाले जुड़वों के एक समूह में से, जिसमें से सभी परिस्थितीय कारण हटा दिये गये थे, यह देखा गया कि १५ जोड़े असमान जुड़वों में केवल एक जोड़े में क्षीण-बुद्धिपन की सदृशता मिली। जब कि १६ समान जुड़वों में १४ में सादृश्य पाया गया।[1]

क्षीण बुद्धि से साधारण बुद्धि की ओर जाने में जुड़वों के अध्ययन से वही प्रभाव प्रदर्शित होता है जो अधिकांश में वंशानुगति के कारण माना जायगा।

एच० एच० न्युमैन (H. H. Newman), एफ० एन० फ्रीमैन (F. N. Freeman) तथा के० जे० होलजिंगर[2] (K. J. Holzinger) ने विनेट बुद्धिपरीक्षा का उपयोग करके साथ पाले गये समान जुड़वों, अलग अलग पाले गये समान जुड़वों, असमान जुड़वों तथा अन्य समान माता-पिता वाले बालकों का सम्बन्ध गुणांक दिलाया है, जैसा कि तालिका नं० ५ में दिया गया है।

१. **सी० स्टर्न** (C. Stern) **पूर्वलिखित, पृष्ठ ४९४**

२. **ए स्टडी आफ़ हेरेडिटी एण्ड एनवायरनमेण्ट** (A Study of Heredity and Environment) **शिकागो युनिवर्सिटी प्रेस, १९३७**

यहाँ पर हमारा अभिप्राय जुड़वों के सम्बन्ध में अधिक विस्तार से बुद्धिपरीक्षा पर विचार करना नहीं है। जब कि स्पष्ट है कि अनुकूल शैक्षिक तथा सामाजिक दशाओं से मस्तिष्क, लाभ तथा ऐसी कम दशाओं से हानि उठा सकता है, साधारण नियम के अनुसार यदि समान जुड़वों को विश्वविद्यालय की शिक्षा दी जाय तो उन्हें बुद्धिपरीक्षा में, उनकी अपेक्षा जिन्हें ऐसी शिक्षा नहीं मिलती, अधिक नम्बर मिलना चाहिए। तिस पर भी तालिका नं० ५ के आंकड़ों से पता चलता है कि ऐसी परिस्थितियों में भी सम्बन्धित जुड़वों की बुद्धि में अन्तर साथ पाले गये समान जुड़वों तथा भाइयों के जोड़े तथा अन्य समान मातापितावाले बच्चों के स्तर के मध्य में आता है।

तालिका नं० ५

बुद्धिपरीक्षा के सम्बन्ध में साथ साथ पाले गये समान जुड़वों तथा अलग अलग पाले गये समान जुड़वों के मध्य में परस्पर-संबन्ध गुणांक (बिनेट बुद्धिपरीक्षा)

	माध्यमिक अन्तर	ठीक किया हुआ माध्यमिक अन्तर	सम्बन्ध गुणांक
५० समान जुड़वाँ साथ साथ पाले हुए	५·९	३·१	०·८८१
१९ समान जुड़वाँ अलग अलग पाले हुए	८·२	६·०	०·७६७
५२ असमान जुड़वाँ साथ साथ पाले हुए	९·९	८·५	०·६३१
४७ जोड़े समान मा बाप के बच्चे	९·८		

(न्युमैन, फ्रीमैन तथा होलजिंगर से)

[यह देखा जायगा कि परस्पर-सम्बन्ध गुणांक से पता चलता है कि समान जुड़वों में अलग अलग पाले जाने के बावजूद, असमान जुड़वों की अपेक्षा, जो कि साथ साथ पाले गये हों, समानता का अधिक ऊँचा गुणांक मिलता है।]

समस्या के इस पहलू के निरीक्षण को समाप्त करते हुए हम टरमैन के अनुभव को प्रोद्धरित कर सकते हैं जो कहता है कि अलग अलग पाले जाने पर भी समान जुड़वों की बुद्धि में अधिक अन्तर होने की बात का पता नहीं चलता।

परिस्थिति से सम्बन्धित वंशानुगति तथा स्वभाव

भावना तथा स्वभाव, व्यक्तियों के मानसिक गुणों के एक अन्य रूप को प्रकट करते हैं। न्युमैन, फ्रीमैन तथा होलजिगर[१] द्वारा देखे गये व्यक्तियों के इतिहास से विदित होता है कि विभिन्न परिस्थितियों में पाले गये, समान जुड़वों के आधार रूप गुणों में प्रत्यक्ष समानता मिलती है।[२]

अपराध, वंशानुगति तथा परिस्थिति

अपराध तथा उसकी ओर प्रवृत्ति, मानसिक अभिव्यक्ति का विशेष प्रकार है, इस लिए वंशानुगति तथा परिस्थिति के दृष्टिकोण से उसकी परीक्षा की जा सकती है। बँधी हुई धारणा के आधार पर हम मानते हैं कि अपराध मुख्यतः परिस्थिति का परिणाम होता है। यदि किसी मनुष्य को निर्धनता में, भूखे अथवा लगभग भुखमरी की दशा में, निम्न तथा खराब वातावरण में पाला जाय, तो यह स्वतः सिद्ध-सा प्रतीत होगा कि वह अपराध करने के लिए प्रेरित होगा ही। निस्सन्देह यही आधार है जिस पर इस विषय के लगभग समस्त सामाजिक विधान बने हैं।

फिर भी, जुड़वों के अध्ययन से स्पष्ट है कि बात ऐसी नहीं है।

जर्मनी, हालैण्ड तथा अमेरिका में किये गये कार्य से प्रकट है कि जहाँ असमान जुड़वों में ३४ प्रतिशत सादृश्य रहता है, वहाँ समान जुड़वों में ७२ प्रतिशत अर्थात् उसकी अपेक्षा कहीं अधिक रहता है।

अवश्य ही, इस विषय में अपराधी प्रवृत्तिवाले घर में सभी बच्चों पर परिस्थिति का प्रभाव पड़ता है तथा जहाँ तक समान जुड़वों का सम्बन्ध है, यदि एक बच्चा किसी

१. पूर्वलिखित

२. **हम 'डूने इन्डिविडुअल विल टेम्परामेन्ट टेस्ट प्रोफाइल्स'** (Douney Individual will Temperament Test profiles) **से प्रभावित नहीं होते जिसमें भावना तथा स्वभाव की परीक्षा की जाती है, क्योंकि बहुत से गुण जो इतने आवश्यक नहीं हैं जितने अन्य, बराबरी की श्रेणी में रख दिये गये हैं। शीघ्र निर्णय की क्षमता ऐसी बात है जो अध्ययन द्वारा काफी प्रभावित हो सकती है तथा विरोध की प्रतिक्रिया भी उसी के समान प्रभावित होती है और साथ साथ नैतिक शिक्षा तथा अनुशासन इत्यादि का भी उन पर प्रभाव पड़ता है। इसलिए हमें यह देखकर आश्चर्य नहीं होता कि ये कृत्रिम परीक्षा-विधियाँ बुद्धिपरीक्षा से कम ठीक परिणाम बतलाती हैं।**

अपराधी प्रवृत्तिवाली परिस्थिति का अनुभव करता है तो दूसरा भी उतना ही करेगा। पर यह सब कारक असमान तथा समान जुड़वों के अपराध की घटनाओं में देख पड़नेवाली अत्यधिक असमानता का कारण समझाने में असमर्थ हैं। जैसा स्टर्न कहते है—"जुड़वों के जोड़ों के विस्तृत अध्ययन से परिस्थितीय व्याख्या के ठीक प्रमाणित होने का समर्थन नहीं होता।"[१]

वंशानुगति तथा स्थूलचरण (Clubfoot)

मानसिक दशाओं पर पड़नेवाले वंशानुगति के प्रभाव को छोड़कर, जो कि इस प्रकार के गुण हैं जिनको हमने पूर्ण अथवा अपूर्ण रूप से परिस्थिति के कारण समझा होता, यदि हम इन तथ्यों पर पुर्नविचार न करते जिनकी व्याख्या हमने अभी की है, हम कुछ ऐसी शारीरिक दशाओं पर विचार कर सकते हैं जो परिस्थिति के परिणाम-स्वरूप मालूम होती हैं।

इन दशाओं में स्थूलचरण जैसी घटनाएँ हैं। सम्भवतः यह उन दशाओं के कारण है जिनसे भ्रूणावस्था में ही कुछ क्षति पहुँचती है तथा यह जुड़वों में से एक को हो सकता है दूसरे को नहीं। इसलिए प्रथम दृष्टि में ऐसा प्रतीत होगा कि यह ऐसी घटना का स्पष्ट उदाहरण है जो परिस्थितीय आधार से उत्पन्न हुई है। किन्तु यहाँ भी उसी तरह समान जुड़वों में २३ प्रतिशत तथा असमान जुड़वों में केवल २ प्रतिशत सादृश्य देखा गया है।

इससे हम इस परिणाम पर पहुँचने को बाध्य हो जाते हैं कि जननिक ढंग की कुछ शारीरिक निर्बलता के कारण एक बच्चे में, दूसरे की अपेक्षा क्षति शीघ्र होने की सम्भावना हो जाती है। परिणामतः जहाँ पर समान जुड़वों में से एक की यह दशा हो जाती है, उस दिशा में निर्बलता की उचित सम्भावना मिलती है, इसलिए असमान जुड़वों की अपेक्षा, जिनकी जननिक बनावट एक ही नहीं है, समान जुड़वों के जोड़े में उसी प्रकार की अधिक क्षति पहुँच सकती है।

वंशानुगति, परिस्थिति तथा तपेदिक

ऐसा समझा जाता था कि तपेदिक की बीमारी वंशानुगत होती है तथा यदि यह किसी सदस्य को हुई तो परिवार में काफ़ी घबराहट फैल जाती थी। साथ ही जिस

१. सी० स्टर्न, पूर्व लिखित, पृष्ठ ४९१

कुल में यह बीमारी देख पड़ती थी, उस कुल में विवाह करने में वास्तविक भय समझा जाता था।

ये भय इस खोज से काफ़ी शान्त कर दिये गये कि वास्तव में वंशानुगति के कारण नहीं, बल्कि अणु-जीव (micro-organism) के कारण यह रोग होता है।

फिर भी जुड़वों के अध्ययन से निकले हुए प्रमाण, उन अधिक सुविधाजनक परिणामों का समर्थन नहीं करते, जो तपेदिक के कीटाणु की खोज से निकले हैं। यह सत्य है कि वास्तविक बीमारी वंशानुगत नहीं होती परन्तु यह भी स्पष्ट है कि निर्बलता की पूर्व प्रवृत्ति अवश्य मिलती है जिससे रोग का प्रतिरोध करने की शक्ति कम हो जाती है। इस प्रकार जब कि असमान जुड़वों में, जहाँ पर दोनों जुड़वों में बीमारी मिलती है, यह २५ प्रतिशत में पायी जाती है तथा उसका कारण जितनी परिस्थिति हो सकती है उतनी ही वंशानुगत दशाएँ। जब हम समान जुड़वों पर आते हैं तब बीमारी में सादृश्य के आँकड़े दोनों में से प्रत्येक जुड़वाँ में लगभग ६५ प्रतिशत तक मिलते हैं। असमान तथा समान जुड़वों में यह अन्तर अधिकतर वंशानुगति के कारण ही होना चाहिए।

इस प्रकार के तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि जब हम माता-पिता तथा बच्चों में बीमारी के क्रम पर किये गये कार्यों के परिणामों पर विचार करते हैं तब बीमारी के आँकड़े उन बच्चों में अधिक मिलते हैं जिनके माता-पिता में यह हो चुकी थी, बनिस्बत उन बच्चों के जिनके मा-बाप इससे मुक्त थे। परन्तु यह पूर्ण रूप से बीमार माता-पिता की निकट परिस्थितीय दशाओं के कारण ही नहीं है, जैसा कि अन्यथा समझ लिया जा सकता है।

इसके विपरीत, निम्न आँकड़ों से यह प्रत्यक्ष है कि इसमें परिस्थितीय कारक के साथ साथ छिपा हुआ वंशानुगत कारक भी है। पर्ल (Pearl) ने ये अंक तैयार किये हैं जो कि साथ में दी हुई तालिका नं० ६ में दिये गये हैं।

वंशानुगति तथा सूखा रोग (रिकेट्स)

सूखा रोग एक ऐसी दशा है जो पूर्ण रूप से विटामिन डी की कमी के कारण होती है, इसलिए यह बिना किसी संकोच के परिस्थितीय दशाओं से सम्बन्धित समझी जायगी। स्पष्ट है कि यदि बच्चे के खाने में विटामिन डी तथा सूर्य के प्रकाश की कमी है, सूखा रोग होने की सम्भावना की जा सकती है। यह एक ऐसी घटना है जहाँ परिस्थिति स्पष्ट निर्णायक के रूप में दिखलाई पड़ती है। फिर भी यह निश्चय है कि वंशानुगति अब भी सर्वप्रथम विचारणीय है। क्योंकि जब कि असमान जुड़वों में सादृश्य केवल २२ प्रतिशत में मिलता है, समान जुड़वों में लगभग ८८ प्रतिशत में मिलता है।

यह उदाहरण किसी अन्य की तरह ही इस बात पर जोर देता है कि परिस्थिति के कार्यों का वास्तविक स्वरूप क्या है। भौगोलिक परिस्थितियों द्वारा प्रकृति कुछ नियन्त्रित दशाएँ तथा सीमाएँ निर्धारित करती है जिन्हें जीवित पदार्थ बिना कुछ मूल्य चुकाये पार नहीं कर सकते तथा यह मूल्य इतना अधिक हो सकता है कि पूर्ण नाश की आवश्यकता पड़ जाय, परन्तु उसे उन जीवित पदार्थों की वंशानुगति के आधार पर ही कार्य करना होता है जिसके लिए यह परिस्थिति प्रस्तुत करती हैं।

तालिका नं० ६

तपेदिक से प्रभावित बच्चों का प्रतिशत, जहाँ कि एक या दोनों माता-पिता प्रभावित हैं उनकी उनसे तुलना जहाँ पर माता-पिता में से कोई प्रभावित नहीं है

प्रभावित माता-पिता	प्रभावित बच्चों का लगभग प्रतिशत
माता-पिता में से कोई नहीं	८ %
माता	१३ %
पिता	१४ %
दोनों	३४ %

[५४६ जोड़े माता-पिता तथा २४८० बच्चों के अध्ययन पर आधारित।]

वंशानुगति तथा बहुमूत्रता

बहुमूत्रता 'मेटाबोलिज्म' (Metabolism) की असामान्य दशा के कारण होती है, परन्तु फिर भी जुड़वों के अध्ययन से पता चलता है कि वंशानुगति एक मुख्य कारक है, क्योंकि असमान जुड़वों में ३७ प्रतिशत तथा समान जुड़वों में लगभग ८४ प्रतिशत इसका सादृश्य मिलता है।

वंशानुगति तथा महामारी (epidemics)

केवल महामारी के ढंग के रोगों में भी, जो कि किसी एक अथवा दूसरे समय में थोड़ा बहुत सभी को हो सकते हैं, वंशानुगत कारक के सम्बद्ध होने के कुछ प्रमाण मिलते हैं क्योंकि इसमें भी असमान तथा समान जुड़वों के सादृश्य में अन्तर पाया जाता है। उदाहरणार्थ असमान तथा समान जुड़वों में चेचक के लिए क्रमशः ८७ तथा ९५ प्रतिशत तथा स्कारलेट ज्वर के लिए क्रमशः ४७ तथा ६४ प्रतिशत सादृश्य मिलता है।[1]

वंशानुगति तथा कैन्सर

निःसंदेह कैन्सर का भी जिसके जननिकविज्ञान के विषय में अभी हम काफ़ी नहीं जानते, वंशानुगत आधार है, जैसा कि इस तथ्य से स्पष्ट है कि एक विशेष क्षेत्र में एक प्रकार के कैन्सर के सम्बन्ध में असमान जुड़वों में २४·२ प्रतिशत सादृश्य मिलता है परन्तु समान जुड़वों में यह ५८ प्रतिशत है।[2]

इसलिए इस बीमारी के होने की सम्भावना काफ़ी सीमा तक वंशानुगत कारकों पर निर्भर है।

परिस्थिति, वंशानुगति तथा पोष्य बच्चे (फोस्टर चिल्ड्रन)

जुड़वों के अध्ययन के साथ पोष्य बच्चों का प्रश्न भी आता है।

हम यह मान सकते हैं कि पोष्य पुत्र जब किसी सामाजिक स्तरवाले घर में जाते हैं तो उनका बुद्धिस्तर उस घर के अन्य बच्चों की अपेक्षा मध्यमान के आसपास होगा। बात यह है कि वंशानुगति यदि एक नियंत्रक कारक है तो स्वाभाविक रूप से उत्पन्न उस घर के बच्चे अपने माता-पिता के बुद्धिस्तर के अनुसार भिन्न होंगे, जो कि साधारणतया व्यवसायी वर्ग वालों से श्रमिकों तक कम होता जायगा।

वास्तव में ऐसा होता है, जो साथ में दी गयी तालिका से स्पष्ट है।

१. स्थूल चरण, तपेदिक, सूखा रोग, बहुमूत्रता, चेचक तथा स्कारलेट ज्वर के आँकड़े, वान वर्शुअर (Von Versehuer) के कार्य पर आधारित हैं। Ergebr. Allgem. Pathol. १९३२, भाग २६ तथा Beitrag. Zur Klinik, d. Tuber Kul. १९४१, भाग ९७, सी० स्टर्न (C. Stern) की एक तालिका से प्रोद्धरित, पूर्व लिखित

२. मैकलिन (Macklin), जर्नल आफ़ हेरेडिटी, १९४०, ३१

तालिका नं० ७

निम्नलिखित सामाजिक स्तरों मे पोष्य बच्चों तथा घर के बच्चों के बुद्धि-सूचक अंकों की तुलना

बच्चो की संख्या	ग्रहण किया हुआ या उसी घर का बच्चा	सम्बन्धित घर का वर्ग	बुद्धिसम्बन्धी अंक	
			ग्रहण किये हुए बच्चे का	घर के बच्चे का
४३	ग्रहण किया हुआ	व्यवसायी वर्ग	११२ ६	
४०	घर का	,, ,, ,,		११८ ६
३८	ग्रहण किया हुआ	व्यापारी मनुष्य	१११ ६	
४२	घर का	,, ,, ,,		११७ ६
४४	ग्रहण किया हुआ	कुशल व्यापारिक तथा लिपिक कर्मचारी	० ६	
४३	घर का	,, ,, ,,		१०६ ९
४५	ग्रहण किया हुआ	अर्ध कुशल	१०९ ४	
४६	घर का	,, ,, ,,		१०१ १
२४	ग्रहण किया हुआ	अकुशल कर्मी	१०७ ८	
२३	घर का	,, ,, ,,		१०२ १

यह ध्यान देने योग्य है कि ग्रहण किये हुए बच्चे घर के बच्चों की अपेक्षा मध्य-मान के (जो कि ११०·५ के लगभग है) निकट है तथा यह स्पष्ट प्रमाण है कि विभिन्न सामाजिक स्तरों के बुद्धिसूचक अंकों के अन्तर में वंशानुगति मुख्य कारक है।

अठारहवाँ अध्याय

वंशानुगति के महत्त्व के अन्य प्रमाण——समान जुड़वों के हाथों में रेखाएँ बनने से

हाथों की रेखाओं तथा चिह्नों की बनावट से न केवल उनकी पित्रागति का ही पता चलता है, परन्तु यह भी कि असमान जुड़वों की अपेक्षा समान जुड़वों में वे अधिक एक से होते हैं। इस प्रकार यह तथ्य उन प्रवृत्तियों का समर्थन करता है जिनकी चर्चा हम पिछले दो अध्यायों में करते आये हैं। चूँकि ये चिन्ह काफी जातिवैज्ञानिक अभिरुचि के हैं तथा परिणामस्वरूप हमने बाद मे उसी दृष्टिकोण से अध्ययन के लिए एक सम्पूर्ण अध्याय ही दिया है, अतः जुड़वों तथा एक ही माता या एक ही पिता के बच्चों के सम्बन्ध में इन लक्षणो के विषय पर पुनर्विचार करना वांछनीय जान पड़ता है। इससे क्रमशः वंशानुगति तथा परिस्थिति के प्रभाव के प्रमाणों की विस्तृत जानकारी होगी।

ऐसा समझा जाता है कि एक-युग्मिक (अथवा समान जुड़वो) के हाथ की रेखाओं तथा अन्य बनावटों में अन्य दो व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक समानता मिलेगी। घटनाओं से यह बात सिद्ध भी हो जाती है।

साथ ही "कम होते हुए सम्बन्धोंवाले बच्चों की तुलना में समानता की क्रमशः कमी देखी जा सकती है। इस प्रकार से एक जोड़े समातृक या सपितृक (समान माता या समान पितावाले) बच्चों तथा भ्रातृ-सदृश जुड़वाँ जोड़ों में, एक-युग्मिक जुड़वें जोड़े की अपेक्षा बहुत कम समानता होती है। माता-पिता तथा बच्चों में, औसतन, समातृक या सपितृक बच्चों की अपेक्षा कम समानता मिलती है तथा उसी जाति के असम्बन्धित व्यक्तियों में और भी कम, जब कि सबसे अधिक अन्तर विभिन्न जातिवालों के रूपों की तुलना में मिलता है।"[१]

१. एच० कमिन्स तथा सी० मिडलो (H. Cummins and C. Midlo), **फिंगर प्रिन्ट्स, पाम्स एण्ड सोल्स फ़िलाडेलफिया, १९४३, पृष्ठ २१०**

मनुष्य के हाथ की बनावट में परिस्थिति का प्रभाव

जे० डब्लू० मैकआर्थर[1] ने देखा कि समान (या एक-युग्मिक, मोनोजाइगोटिक) जुड़वों के उदाहरण में उनके हाथ की बनावट का अन्तर (standard deviation) २०.८ प्रतिशत प्रामाणिक विचलन होता है। चूँकि एक ही अण्डे से प्रत्येक जोड़े की उत्पत्ति होती है, इसलिए दोनों व्यक्ति समान होने चाहिए। उनमें यदि कोई विभिन्नता होती है तो वह गर्भावस्था से आगे तक किसी एक या दूसरे प्रकार के परिस्थितीय कारण से होती है।

वास्तव में हम इसको परिस्थिति के आपेक्षिक प्रभाव के एक स्पष्ट उदाहरण के रूप में ले सकते हैं जो व्यक्ति के बाह्य अथवा समरूपी गुणों पर प्रभाव डालते हैं तथा ऐसी अवस्था में उसमें यह सम्भावना हो सकती है कि परिस्थिति केवल बाह्य गुणों को बदल सकती है जो कि लगभग २०%है, जब कि अवश्य ही, जहाँ तक हम जानते हैं यह आन्तरिक जननिक ढाँचे सम-पित्र्यक (genotype) को किसी भी सीमा तक प्रभावित नहीं करती।

हाथ की बनावट का जननिक आधार

गाल्टन (Galton) का विचार था कि सूक्ष्म उभरे भाग तथा हाथ के अन्य गुण, जीव-वैज्ञानिक अथवा जननिक, एककों को प्रदर्शित करते हैं। परिणामतः ऐसी बनावट की पित्रागति से प्रमाणित होता है कि मानव-वंशानुगति सूक्ष्मतम पैमाने पर कार्य करती है। फिर भी, हाथों तथा पैरों के नमूने की बनावट की जटिलता से विदित होता है कि सम्भवतः उसमें पित्र्यकों की बहुत बड़ी संख्या सम्बद्ध है। वास्तव में, इसके लिए संतोष का कोई कारण नहीं है कि मानव पित्र्यकों तथा उन पित्र्यसूत्रों की जिनसे कि वे सम्बन्धित हैं बहुत शीघ्र तालिका बनायी जा सकती है तथा उनकी पहचान हो सकती है।

फ्रेन्सिस गाल्टन[2] ने उँगलियों की छाप के जननिक आधार की प्रथम स्थापना की है। इनकी रचना के पश्चात् एच० एच० विल्डर (H. H. Wilder) की रचना आती है जिसने दो परिवारों के अध्ययन के नमूने की पित्रागति को बतलाया है।

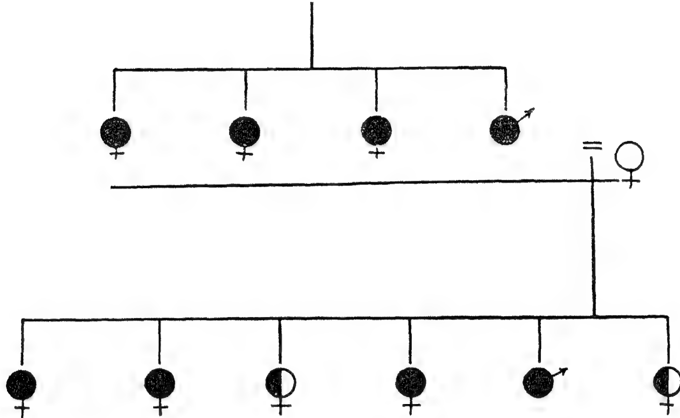
१. रिलायबिलिटी आफ़ डरमेटोग्लीफ़िक्स इन ट्विन डागनोसिस, ह्यु मेन बायलोजी, १९३८, भाग १०, पृष्ठ १२

२. फिंगर प्रिन्ट्स (Finger Prints London), १८९२

प्रथम एक कुल में हथेली के उभरे भागवाला (thenar eminence) आकार था (अँगूठे के नीचे 'वीनस' का उभरा भाग जो कि १५—२० प्रतिशत काकेशियनों में मिलता है) जो कि पिता की प्रत्येक बहिन में मिलता था। पिता ने किसी दूसरे आकारवाली से विवाह किया।

चित्र नं० १२५

हाथ की बनावट के वंशानुगत गुण को सिद्ध करते हुए हथेली के उभरे भाग (thenar eminence) का वंशक्रम



(एच० एच० विल्डर द्वारा)

स्त्रियां जिनके दोनों हाथों में उभरे भाग (thenar eminence) हैं।

स्त्रियां जिनके केवल बायें हाथ में उभरा भाग है।

स्त्रियां जिनके हाथ में उभरा भाग नहीं है।

पुरुष जिनके दोनों हाथों में उभरे भाग हैं।

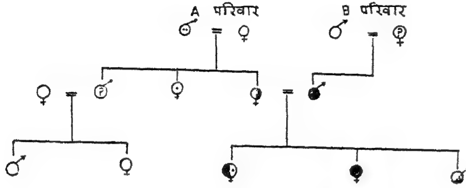
यह काकेसायड में विरली बनावट है तथा ऊपर की स्थिति अकस्मात् ही नहीं बल्कि अवश्य ही वंशानुगति के कारण है।

उत्पन्न बच्चों में एक पुत्र था जिसके दोनों हाथों में पिता के हाथ की जैसी रेखाएँ थीं, तीन लड़कियों के दोनों हाथों में थीं तथा दो लड़कियों के केवल बाएँ हाथ में थीं। साथ में दिया हुआ चित्र (चित्र नं० १२५) यह बात स्पष्ट कर देता है।

विल्डर (Wilder) के दूसरे कुल में ऐड़ी का ऐसा नमूना था जो १ प्रतिशत व्यक्तियों से अधिक में नहीं मिलता। फिर भी इस कुल में १२ मनुष्यों में से (जिनमें से

चित्र नं० १२६

विरल एड़ी (rare calcar) के नमूने की पित्रागति का वंशक्रम



(एच० एच० विल्डर से)

पुरुष जिनकी दोनों एड़ियों में प्राथमिक विरल नमूना है।

पुरुष जिनकी परीक्षा नहीं हुई।

पुरुष जिनकी दाहिनी एड़ियों में विरल नमूना है।

मनुष्य जिनकी दायीं एड़ी में विरल नमूना तथा बायीं एड़ी में प्राथमिक विरल नमूना है।

पुरुष जिनकी एड़ी का नमूना नहीं है।

स्त्रियाँ जिनकी बायीं एड़ी में प्राथमिक विरल आकार है।

वे स्त्रियां जिनकी परीक्षा नहीं हुई।

स्त्रियाँ जिनकी दोनों एड़ियों में विरल नमूना है।

स्त्रियाँ जिनकी दाहिनी एड़ी में विरल नमूना तथा बायीं एड़ी में प्राथमिक आकार है।

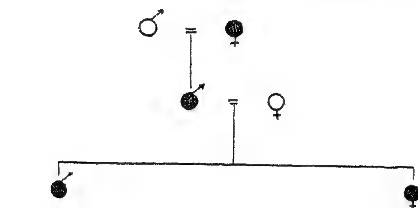
स्त्रियाँ जिनकी बायीं एड़ी में विरल नमूना तथा दाहिनी एड़ी में प्राथमिक आकार है।

२ की परीक्षा नहीं की गयी) ७ में किसी न किसी रूप में यह थी जैसा कि साथ में दिये हुए वंशक्रम से (चित्र नं० १२६) से पता चलता है।

वंशक्रम से यह अनुमान होता है कि नमूने का प्रकार अपसारी है, क्योंकि A कुल का संग करने में जहाँ पर बाबा में प्राथमिक चिह्न मिलते हैं, यदि उसके पूर्व की पीढ़ी (पुरुष) तक नहीं, जिसकी परीक्षा नहीं की गयी, तो यह पोतों की पीढ़ी तक समाप्त हो जाती है।[1]

चित्र नं० १२७

हथेली के बायें ऊँचे भाग (hypothenav eminence) **पर घूँसे के उभरा भाग** (the bulb of percussion) **के चक्र की पित्रागति का वंशक्रम**



(ए० सेवीडाली से)

●♀ = स्त्री जिसकी गदेली के बाए ऊचे भाग मे चक्र है।

♀ = स्त्री जिसकी गदेली के बाये ऊचे भाग मे चक्र नही है।

●♂ = पुरुष जिसकी गदेली के बाये ऊचे भाग (hypothenav eminence) मे चक्र है।

♂ = पुरुष जिसकी गदेली के बाये ऊचे भाग मे चक्र नही है।

एक अन्य छोटे वंशक्रम[2] में हथेली के बायें ऊँचे भाग (hypothenav eminence) में (घूँसे के उभरे भाग (the bulb of percussion) चक्र के पारेषण का पता चलता है, जहाँ पर कि काला पित्रागति को प्रदर्शित करता है।

१. कमिन्स तथा मिडलो (Cummins & Midlo) **पूर्व लिखित, पृष्ठ २१७, दूसरे मत को मानते हैं तथा वे कहते हैं कि "उसमें बिना नमूनेवाले के ऊपर नमूनेवाली बनावट के प्रभावी होने की सम्भावना मिलती है" अवश्य ही, यह ऐसा हो सकता है परन्तु कुल के उन दोनों व्यक्तियों में नमूने के होने न होने पर बहुत कुछ निर्भर है—जिनकी परीक्षा नहीं की गयी।**

२. ए० सेविडाली (A. Cevidalli) **के द्वारा** Contributo allo Studio delle linee papillari in rapporto alla erditarieta. Bol. Soc. Med. Chir. di Modena, 1911. **भाग १३, पृष्ठ ५४७.**

यह कुछ महत्त्व का विषय है कि हीन्डेल (Heindl) ने कुछ ऐसे प्रमाणों को पाया है जिससे पता चलता है कि किसी एक विशेष कुल के जिन लोगों की उँगली की छाप एक सी थी, उनके शरीर के अन्य गुण भी समान थे।[1]

इससे हाथों तथा पैरों में रेखाओं की बनावट तथा साधारण शारीरिक गुणसम्बन्धी नियंत्रण करनेवाले पित्र्यकों में ग्रथन का अनुमान होता है। यह इस विषय को और भी परिस्थिति के क्षेत्र से हटाकर वंशानुगति की ओर ले जाता है।

एच० ग्रुनबर्ग[2] ने देखा है कि समान (एक-युग्मिक monozygotic) जुड़वों के लगभग ८० प्रतिशत में उँगलियों के आकार मिलते हैं जो मैकआर्थर (Mac Arthur) के कार्य से प्रमाणित होता है तथा उसे भी यही संख्याएँ, लगभग ८१ प्रतिशत, मिली थीं, परन्तु असमान (अनेक-युग्मिक) जुड़वों में यह केवल ६३·४ प्रतिशत मिली।

उसने यह भी पाया कि जिन माता-पिता के गाँठ (loop, लंबवृत्त) थी उनके ८०·९ प्रतिशत बच्चों में भी वह थी तथा जब माता-पिता में चक्र था तब ७०·८ प्रतिशत के बच्चों में यह मिलता था।

इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि पित्रागति का प्रमाण मिलता है।

ई० एसेन मोलर[3] (Eo. Essen-Moller) ने देखा कि जहाँ तक समान जुड़वों की बात थी, जुड़वों के जोड़ों में या तो चक्र बिलकुल नहीं था या दोनों में एक या अधिक लगभग ८५·७ प्रतिशत में मिलता था तथा अन्य जुड़वों में ६५·८ प्रतिशत में मिलता था।

ग्रुनबर्ग का विश्वास है कि गाँठ, चक्र तथा गुम्बद की उत्पत्ति से सम्बद्ध पित्र्यक X X पित्र्यक हैं जो कि प्रभावी हैं तथा x x अपसारी गुणों के साथ हैं और Y Y भी y y की अपेक्षा प्रभावी हैं। ये आकार निम्न जननिक संयोजनों का निर्माण करते हैं—

१. कमिन्स तथा मिडलो द्वारा प्रोद्धरित, पूर्व लिखित, पृष्ठ २१८, हिन्डेल से, System and Praxis der Daktyloskopie, तीसरा संस्करण, बर्लिन तथा ल.ग, १९२७.

२. Die Vererbung der Menschlichen, Tastfiguren Zeischrift unfur Indukt Abst V. Vererbungs-Lchre, भाग ५०, पृष्ठ ७६–९६, १९२९, कमिन्स तथा मिडलो, पूर्व लिखित से उद्धरित

३. Empirische "Ahnlichkcits diagnose bei Zwillingen, हेरेडिटाज (Hereditas) भाग २७, पृष्ठ १–५०, १९४१, कमिन्स तथा मिडलो, पूर्व लिखित से उद्धरित

X X Y Y गाँठदार बनावट का
X X Y y चक्रदार बनावट का
X X y y चक्रदार बनावट का
X x Y Y गाँठदार बनावट का
X x Y y गाँठदार बनावट का
X x y y चक्रदार बनावट का
x x Y Y गाँठदार बनावट का
x x Y y गाँठदार बनावट का
x x y y गुम्बददार बनावट का

यह सुझाव दिया जाता है कि Y तथा Y Y क्रमशः X तथा X X पर प्रभावी हैं परन्तु Y के ऊपर X X तथा यदि किसी जोड़े का प्रभावी पित्र्यक अनुपस्थित है तब दूसरे का प्रभावी स्पष्ट हो जाता है तथा यदि सभी प्रभावी अनुपस्थित हैं तब गुम्बद एक दोहरे अपसारी गुण के रूप में आता है।[1]

जातिसंकरण के प्रमाण

पशुओं की भाँति मनुष्यों में भी पित्रागति के जननिक नियंत्रण का काफ़ी प्रमाण जातीय प्रसंकरण में मिलता है। यह स्पष्ट रूप से उंगलियों, हथेलियों, तथा तलुओं में बने हुए नमूनों के विषय में भी मिलता है।

उदाहरण के लिए जमाइका में काले, भूरे तथा श्वेत मनुष्यों के विषय में डेवनपोर्ट तथा स्टेगर्डा[2] (Davenport and Steggerda) द्वारा अध्ययन किया गया है।

इनके अध्ययनों में ऐसा विचार किया गया कि जहाँ तक उनकी उँगलियों की छाप का सम्बन्ध है, भूरे लोग अपने माता-पिता के वर्ग में मध्यम थे। इस प्रकार से उँगलियों पर चक्र मिलनेवालों में श्वेत २२ प्रतिशत, काले ३० प्रतिशत तथा माध्यमिक भूरे २५ प्रतिशत मिलते हैं।[3]

१. कमिन्स तथा मिडलो, पूर्व लिखित, पृष्ठ २१९–२२०

२. सी० बी० डेवनपोर्ट तथा एम० स्टेगर्डा (C. B. Davenport and M. Steggerda) रेस क्रासिंग इन जमाइका (Race Crossing in Jamaica) कामेकी संस्था (Comequie Institution) वाशिंगटन, पबलिक, १९२९, भाग ३९५

३. हाथों के अन्य आकारों के विषय से सम्बन्धित कुछ अनियमित बातें हैं जिनका वर्णन यहाँ पर आवश्यक नहीं है। इनमें भूरे माध्यमिक नहीं हैं परन्तु कालों की अपेक्षा

उँगली की छाप के चक्र तथा जुड़वें

ई० एसेन-मोलर (E. Essen moller) ने उँगलियों की छाप जैसी सूक्ष्म वस्तु पर विचार करके बतलाया है कि जुड़वों की उँगलियों पर एक अथवा अधिक चक्र होने अथवा कोई चक्र न होने का जहाँ तक प्रश्न है, साधारण दो-अण्डक (dizygotic) जुड़वों में लगभग ६५·८ प्रतिशत में समानता है जब कि समान अथवा एक-अण्डक (monozygotic) जुड़वों में इसकी बारम्बारता ८५·७ प्रतिशत थी। यदि यह कहा जाय कि वंशानुगति का प्रभाव हाथ के नमूनों पर नहीं पड़ता, तब इस प्रकार बार-म्बार देख पड़नेवाली समानता का और क्या कारण बताया जा सकता है ?

वास्तव में यद्यपि ज्ञान की वर्तमान अवस्था में विषय की जटिलता के कारण जननिक विज्ञान का विषय चाहे समझ में न आये, इसमें कोई सन्देह नहीं कि नमूनों के मुख्यतः वंशानुगति के कारण हैं, जब कि यह जोर देकर कहा जा सकता है कि—(१) जब माता पिता दोनों की उँगलियों में दोहरे लम्बवृत्त (गाँठें) हों तो साधारणतया बच्चों के भी ये होते हैं। (२) जब दोहरी गाँठें दोनों माता-पिता के नहीं होतीं तो बच्चों के भी नहीं होतीं तथा (३) यदि केवल माता-पिता में से एक में हैं तो कुछ बच्चों में मिलेंगी तथा कुछ में नहीं मिलेंगी।[1]

उँगलियों के नमूने के अध्ययन से के० बोनेविक[2] (K. Bonnevic) ने दिखलाया है कि परस्पर सम्बन्ध के गुणांक से पता चलता है कि असम्बन्धित मनुष्यों में यह ०·२७, साधारण जुड़वों में ०·५४, समातृक या सपितृक बच्चों में ०·६० जब कि समान जुड़वों में ·९२ है। वंशानुगति के महत्त्वपूर्ण प्रभाव का इससे स्पष्ट प्रमाण कुछ और नहीं हो सकता।

ऐसा होते हुए भी, हमारे अध्ययन से उन मतों के लिए बहुत थोड़ा स्थान रह जाता

अधिक हैं। जहाँ तक हमारे वर्तमान ज्ञान का सम्बन्ध है जब कि यह दशाएँ स्पष्ट रूप से नियमविरोधी हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं कि अन्त में उनकी व्याख्या हो सकेगी तथा वे उँगलियों की छाप के स्पष्ट संकेतों को निरर्थक नहीं कर देती जहाँ कि यह निश्चित है कि व्यक्तियों की सम्भावित उँगलियों की छाप के प्रकार में वंशानुगति नियन्त्रक कारक है।

१. कमिन्स तथा मिडलो, पूर्व लिखित, पृष्ठ २२१

२. स्टडीज आन पैपिलरी पैटर्न्स आफ़ ह्युमेन फिंगर्स (Studies on papillary patterns of human fingers) **जर्नल आफ़ जेनेटिक्स, भाग १५, पृष्ठ १**

है जो किसी भी परिस्थिति में समान द्वारा समान की उत्पत्ति में वंशानुगति के महत्त्व को कम करने अथवा उनकी अवहेलना करने का प्रयत्न करते हैं।

इसलिए जननिक अध्ययन से अथवा पित्रागति के अध्ययनों से, जिनका हमने विवेचन किया है, एक ओर तो उपार्जित गुणों के पारेषण के सिद्धान्तों के लिए और दूसरी ओर उसके प्रतिरूप भौगोलिक मत के लिए स्थान शेष नहीं रहता जो अनेक वर्षों से भौगोलिक निश्चयवादियों का सिद्धान्त रहा है।

फिर भी, इन सब तथ्यों के उपरान्त भी, भौगोलिक निश्चयवादी अपने जीव-वैज्ञानिक शास्त्रों के उपार्जित गुणवादी मित्रों सहित उन मतों के प्रतिपादन से रोके नहीं जा सके हैं, जिनमें वंशानुगति के अत्यधिक प्रमाणों के होते हुए भी, यह दिखलाने का प्रयत्न किया गया है कि परिवर्तनशील जीवित पदार्थों को परिस्थिति अब भी बदलती रहती तथा उनमें परिवर्तन करती है और इस प्रकार नये प्रकारों तथा नयी जातियों की उत्पत्ति करती है।

इन सिद्धान्तों की मीमांसा हम अगले अध्याय में करेंगे, हालाँकि हमारा मत है कि जननिक अध्ययनों द्वारा प्रस्तुत किये गये प्रमाणों से यह बात अन्तिम रूप से निश्चित हो जाती है कि वंशानुगति एक प्रभावशाली शक्ति है।

जैसा कि हमने पहले कहा है, भौगोलिक परिस्थिति का स्थान है, उसका अपना कार्य है, परन्तु यह उस प्रकार का नहीं है जैसा कि परिस्थितिवादी बतलाते हैं। उसका स्वरूप क्या है, इसकी चर्चा समय आने पर हम करेंगे।

उन्नीसवाँ अध्याय

जाति तथा वंशानुगति से सम्बन्धित भौगोलिक परिस्थिति तथा निश्चयवाद (DETERMINISM) के महत्त्व की अन्तिम व्याख्या

सोलहवें अध्याय में हमने जातिवैज्ञानिक तथा जननिक ढंग के उन साधारण तर्कों की संक्षिप्त व्याख्या की थी, जो अपनी सर्जनात्मक क्रियाशीलता से, उपार्जित गुणों के पारेषण के सिद्धान्त द्वारा मनुष्य की जातियों के विकास को बदल देने की परिस्थिति की शक्ति पर, शंका करते मालूम पड़ते हैं। इसके बाद के दो अध्यायों में हमने वंशानुगति के विस्तृत अध्ययन तथा विशेष रूप से जुड़वों के तुलनात्मक अध्ययन से मिलनेवाले प्रमाणों पर तथा परिस्थिति और वंशानुगति की आपेक्षिक शक्ति पर विचार किया।

प्रथम दृष्टि में, जननिक अध्ययनों के आधार पर इस प्रश्न के सम्बन्ध में जाति-वैज्ञानिक दृष्टिकोण, भौगोलिक निश्चयवादियों का कथन मानने को तैयार न होगा, क्योंकि उनके द्वारा प्रतिपादित प्रारम्भिक सिद्धान्त, जननिक विज्ञान की प्रक्रिया तथा जातीय विकास के, जैसा कि सामान्यतः उसका अर्थ लिया जाता है, विरुद्ध हैं।

इसलिए जब इन सबके ऊपर हमारे पास उन अध्ययनों के प्रमाण हैं जिनका सीधा सम्बन्ध परिस्थिति की शक्ति की परीक्षा करने से है तथा जिनके परिणाम परि-पोषकों (नरचरिष्ट) के परिणामों के प्रतिकूल हैं, तब यह पता चलता है कि यदि वैज्ञानिक तथ्य हमारे निर्देशक हैं, तो केवल यह परिणाम निकाला जा सकता है कि एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में मनुष्यों के जातिगत गुणों के पारेषण में वंशानुगति ही मुख्य प्रभावशाली शक्ति है।

तिस पर भी, इस विषय का अन्त करने के लिए यह आवश्यक है कि वादविवाद जाति-विज्ञान के क्षेत्र में ले आया जाय तथा उसी के प्रकाश में भौगोलिक निश्चय-वादियों के मुख्य तर्कों का निरीक्षण किया जाय। यही हमने अगले पृष्ठों में करने का प्रयत्न किया है।

इसके फलस्वरूप हमें सभी सम्बद्ध विज्ञानों में परिणाम की एक आधारभूत एकता का संकेत मिलता दिखलाई पड़ता है, अतः साधारणतया इस प्रश्न के सम्बन्ध में, उनके परिणाम निर्णयकारी समझे जा सकते हैं। हालाँकि नव उपार्जितगुणवादी (neo

Lamarkian) विचारों पर, एक वैज्ञानिक मत अथवा दार्शनिक विश्वास की भाँति जोर दिया जाय तो अवश्य ही कुछ लोग इन परिणामों को उस तरह पूर्ण नहीं समझेंगे जिस तरह हमने सुझाया है।

फिर भी, चाहे जो हो, अब हम निश्चयवादियों के तर्कों की परीक्षा करेंगे तथा पाठकगणों को परिणाम स्वयं निकाल लेने के लिए छोड़ देंगे।

परिस्थिति तथा बढ़ा हुआ कद

कई स्पष्ट तथ्यों में से एक यह भी है कि शरीर की बाढ़ प्रभावित होती है—एक तो भौगोलिक परिस्थिति के द्वारा एवं अच्छे पोषण से, जो अच्छी परिस्थितियों से और बढ़ जाता है, दूसरे कठिन परिश्रम के घंटों में कमी हो जाने से विशेष कर कम उम्र में जब कि शरीर बढ़ रहा हो।

इसलिए विलर्मे[१] ने जो तर्क उपस्थित किया कि अच्छी परिस्थिति विकास में सहायक होती है तथा बुरी दशाओं में कद का बढ़ना रुक जाता है, उसे हम अपने अनुभव में स्वयं प्रमाणित देखते हैं।

इससे साधारणतया यह परिणाम निकाला जाता है कि इन कारकों को नियन्त्रित करने से जातीय तथा सामाजिक सुधार किया जा सकता है।

समाज-सुधार के सम्बन्ध में यह ठीक है, इसमें कोई सन्देह नहीं, हालाँकि सामाजिक उन्नति भी जातिसम्बन्धी सुधार से लाभदायक रूप में प्रभावित हो सकती है, परन्तु यह मान लेना कि इससे जातिगत सुधार भी हो सकता है, वास्तव में विवादास्पद वस्तु को ही सत्य समझ लेना है।

संक्षेप में लम्बे और छोटे कद तथा लोगों के रहने की दशाओं में घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस प्रकार के कुछ तथ्यों की परीक्षा के उपरान्त, जो कि जातिवैज्ञानिक के क्षेत्र में आते हैं, यह काफ़ी स्पष्ट हो जाता है।

उदाहरणार्थ, अंग्रेज मध्य श्रेणी के लोगों की ऊँचाई की गणना ६९·१४ इंच (१·७५७ मीटर) तथा श्रमिक वर्ग की ६५·७ इंच (१·७०५ मीटर) की गयी[२] है।

१. Villerme.

२. **फाइनल रिपोर्ट्स** (Final Reports), **ब्रिटिश एसोसियेशन आफ एडवान्समेंट आफ साइन्सेज** (British Association of Advancement of Sciences) **१८८३, पृष्ठ १७**

डा० जान बेडो[1] ने भी बतलाया है कि खानों में काम करनेवाले, आसपास रहनेवाले अन्य श्रमिकों से भी छोटे थे। उसी लेखक तथा राबर्ट्स[2] (Roberts) ने बतलाया है कि कारखानों तथा शहरों के काम करनेवाले, शहर से बाहर रहनेवाले देहाती कार्य-कर्ताओं की अपेक्षा छोटे थे।

बेल्जियम[3] (Belgium) में तथा साथ ही रूस[4] (Russia) में भी यही बात सत्य मालूम होती है।

पहली बात तो यह महत्त्व की है कि अधिक आराम करनेवाले वर्गों का कद श्रमिकों के कद से अधिक ऊँचा होता है।

दूसरे, जहाँ तक इन उदाहरणों का सम्बन्ध है, यह भी उतने ही महत्त्व का है कि श्रम करनेवाले वर्गों में भी, जो मुख्यतः उत्तरी यूरोप के थे, शहर के लोग १९ वीं शताब्दी के घने औद्योगिक शहरों की बुरी दशाओं में रहने के कारण देहातों के लोगों की अपेक्षा अवश्य ही छोटे कद के थे, जिससे हम परिणाम निकाल सकते हैं कि यह पोषण तथा रहन-सहन के नीचे स्तर के कारण था।

इस सम्बन्ध में न केवल यही दो तथ्य कद तथा उत्तम रहन-सहन के सम्बन्ध का महत्त्व बतलाते हैं परन्तु एक तीसरा तथ्य भी निकलता है जो उतने ही महत्त्व का है।

ये आँकड़े उस समय लिये गये हैं जब कि सभी पश्चिमी देशों में, जहाँ तक रहने की स्थिति तथा श्रम के घंटों का सम्बन्ध है, औद्योगिक दशाएँ आज की अपेक्षा बहुत खराब थीं। वास्तव में वे आजकल की अपेक्षा तन्दुरुस्ती के नीचे प्रमाप वाले लोगों को प्रदर्शित करते हैं।

१. Dr. John Bedoe, **स्टेचर एण्ड बल्क आफ़ मैन इन ब्रिटिश आईल्स** (Stature and Bulk of Man in British Isles), **लन्दन, १८७०, पृष्ठ १४८**

२. **ए मैनुअल आफ ऐन्थ्रोपोमेट्री** (A. Manual of Anthropometry), **लन्दन, १८७८, तथा जर्नल आफ दि स्टेटिस्टिकल सोसाइटी आफ लन्दन** (Journal of the Statistical Society of London), **१८७६**

३. **हाउजे** (Housz'e) **बुलेटिन आफ़ सोशल एन्थ्रोपोलोजी** (Bulletin of Social Anthropology), **ब्रुसेल्स** (Brussels), **१८८७**

४. **एनुचिन** (Anuchin) "O Geograficheskom" **लैनिनग्राड** (Lenin-grad) **१८८९, ज्योग्रेफिकल डिस्ट्रीब्युशन आफ स्टेचर इन रशा** (Geographical Distribution of Stature in Russia)

इसलिए यदि हम इनसे वर्तमान आँकड़ों की तुलना करें तो हम देखेंगे कि समाज के निचले स्तर के लोगों के कद में काफ़ी वृद्धि हो गयी है।

वास्तव में यह और भी अधिक लक्षित होता है, जब हम आस्ट्रेलियानिवासियों को देखते हैं जो ९५ प्रतिशत ब्रिटिश उत्पत्ति के हैं तथा कद में अंग्रेजों से कहीं बढ़े-चढ़े हैं, चाहे पूर्णरूप से सबसे ऊँचे (स्काट तथा आयरलैण्ड निवासियों से) अधिक वे न हों, तथा जिनका रहने का स्तर संसार में सबसे ऊँचा है।[१]

डेनीकर[२] (Deniker) के कथन से भी इनमें से कोई तथ्य व्यर्थ नहीं सिद्ध हो जाता, जो हमें यह बतलाते हैं कि एमन[३] (Ammon) तथा दे लेपोज[४] (de Lapouge) ने देखा है कि दक्षिणी जर्मनी तथा फ्रान्स में ठीक इसके विपरीत सत्य है अर्थात् शहर के लोग देहात के लोगों की अपेक्षा अधिक लम्बे हैं।

इसकी पुष्टि पिटर्ड[५] (Pittard) द्वारा भी की गयी है जिसने यह बतलाया है कि ड्रेसडेन तथा लाइपजिग की जनसंख्या का कद, आसपास के देहातों में रहनेवालों की अपेक्षा काफ़ी ऊँचा है।

शहरों की जनसंख्या के कद पर उनके प्रभावों की इस स्पष्ट प्रतिकूलता की व्याख्या विभिन्न प्रकार के सम्बद्ध शहरों के परिस्थितीय प्रभाव की विवेचना द्वारा की जा सकती है।

परिस्थितिसम्बन्धी समस्या का हल शायद पिटर्ड (Pittard) के निरीक्षण द्वारा मिलता है, जब उसने इस तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित किया कि, यद्यपि हैम्बर्ग के लोगों का कद चारों ओर के देहाती क्षेत्र के लोगों की अपेक्षा कम है, ब्रेमेन तथा लबेक[६] (Bremen and Luback) में ठीक इसके विपरीत मिलता है।

१. इस उदाहरण में, फिर भी, एक दूसरी समस्या सम्बद्ध है, वह है प्रसंकर शक्ति की (Hybrid vigour), जिसकी हमने किसी अन्य स्थान पर व्याख्या की है।

२. दि रेसेज आफ़ मैन (The races of Man) लन्दन, १९००, पृष्ठ ३१—३२

३. Die Natur Auslese beim Menschen, जीना (Jena), १८९३

४. ला सलेक्शन सोशेल (Les Selections Sociales), पेरिस (Paris) १८९६

५. पूर्वलिखित, पृष्ठ १६६

६. पूर्व लिखित पृष्ठ १६४

कोई भी, जो इन शहरों को जानता है, समझता है कि हैम्बर्ग साधारणतया उत्तरी-पश्चिमी यूरोप के अन्य औद्योगिक शहरों की भाँति ऐसा है जहाँ पर विशेष रूप से कुछ ही समय पूर्व की पीढ़ियों में, जिनके लिए ये आँकड़े ठीक हैं, रहने की दशाएँ घनी बस्ती होने के कारण घातक रही हैं तथा श्रमिकों के कार्य की दशा कठिन तथा अधिक समय की थी।

इस प्रकार हम साधारण शब्दों में कह सकते है कि यूरोप के बड़े औद्योगिक शहर अपनी जन-संख्या के विकास तथा उन्नति के लिए सहायक नहीं रहे हैं, हालाँकि अवश्य ही गत वर्षों में काफ़ी बड़े सामाजिक परिवर्तन हुए हैं जो कुछ समय बाद विकास को रुद्ध करनेवाले कारकों को अवश्य हटा देंगे।

कहीं पर भी अधिक घनी बस्तियों तथा मैली-कुचैली गलियों का जीवन, निःसन्देह ही ऐसे परिणाम उपस्थित करता है तथा यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि पुर्तगाल के कुछ बड़े शहरों में भी कद के सम्बन्ध में यही प्रवृत्ति मिलती है। इस प्रकार कोइम्ब्रा तथा लिस्बन (Coimbra and Lisbon) में चारों ओर के देहातों की अपेक्षा छोटे कद की जनसंख्या मिलती है।

पिटर्ड द्वारा बतलाये गये ब्रेमेन तथा लुबेक उत्तरी शहर, जहाँ पर कि जनसंख्या का कद चारों ओर के देहातों के लोगों की अपेक्षा, जैसे कि ड्रेसडेन, बड़ा है, जैसा कि अभी वतलाया जा चुका है, तथा कोपेनहेगेन (Copenhegen) जहाँ पर कि कद १.७० मीटर है, ये सब ऐसे शहर हैं जिन्होंने १९वीं शताब्दी के औद्योगिकीकरण के कष्टों का अनुभव कभी नही किया तथा दक्षिणी यूरोप के अनेक शहरों की भाँति जहाँ पर समस्त जनसंख्या में ऊँचे वर्ग के लोग, उत्तरी शहरों की अपेक्षा, अधिक अनुपात में है, इसलिए इन शहरों में ऊँचे स्तर का जीवन मिलता है।

इसलिए साधारण शब्दों में उत्तरी शहरों में मुख्यतः छोटे कदवालों की तथा दक्षिण में लम्बे कदवालों की विचित्र स्थिति की व्याख्या परिस्थितीय दशाओं द्वारा की जा सकती है, जिससे परिणाम निकाला जा सकता है कि विलर्मे का यह तर्क साधारणतया सत्य है कि अच्छी परिस्थितीय दशाएं विकास में सहायक तथा बुरी दशाएँ कद के विकास को रोकती हैं।[1]

१. इनमें कुछ नियमविरोध भी है--जैसे लाइपजिग में लम्बे कदवाले मिलते हैं जो कम से कम अर्ध औद्योगिक नगर तो है ही। परन्तु अधिक सूक्ष्म अनुसन्धान करने पर इसकी भी समुचित व्याख्या की जा सकेगी।

पिटर्ड[1] ने बतलाया है कि यूरोप की उत्पत्ति के अमेरिका-निवासी, जिन लोगों से वे आये हैं, उनकी अपेक्षा अधिक लम्बे कद के पाये जाते हैं। इसकी उसने सम्भवत: सत्य ही विवेचना की है कि यूरोप की अपेक्षा अमेरिका में यान्त्रिक उन्नति पहले ही हुई है, इसीलिए बालिग होने के पूर्व अधिक श्रम के कारण रुक जानेवाली बाढ़ से बचे रहकर यहाँ के मनुष्यों को विकास के लिए अधिक समय मिला।

वह यह भी बतला सकता था कि उपजाऊ तथा प्राकृतिक पदार्थों से भरपूर देश में आप्रवासितों ने जो ऊँचे स्तर के जीवन का उपभोग किया यह भी एक अन्य कारक था जो कि उसी ओर सहायक था। जब कि आप्रवासितों के कद में तथा अमेरिका में उत्पन्न हुए उनके बच्चों के कद में फर्क होने का तथ्य यह है कि ये आप्रवासित लोग यूरोप के पददलित वर्गों से आये थे तथा ये वही लोग थे जिनका पोषण ठीक नहीं था और शरीर के विकास के समय उनके कार्य करने के घंटे भी अधिक थे।

ये सारे तथ्य बड़े मनोरंजक हैं अवश्य, परन्तु अब हम अपने प्रारम्भिक विषय को देखें जिससे हटकर हमने इस तथ्य को समझने का प्रयत्न किया था कि परिस्थिति के प्रभाव की जातिवैज्ञानिक कसौटी को प्रभावित करनेवाले ठोस प्रमाण हैं, तो मालूम होगा कि वे किसी खास बात की स्थापना नहीं करते। हालाँकि, यह स्वीकार किया जाता है कि जातियों में प्रकृति से ही जो परिवर्तन के प्रकार मिलते हैं, ये तथ्य बहुधा उनके निर्देशक माने जाते हैं।

फिर भी इन तथ्यों में जो कुछ है उससे कहीं अधिक उससे निकालना कितना गलत है, यह सरलता से जाना जा सकता है।

परिस्थिति लम्बी **जाति** (रेस) की नहीं, परन्तु एक लम्बी **पीढ़ी** (जेनरेशन) की उत्पत्ति करती है, बस यहीं सब कुछ है परन्तु दोनों में अन्तर बहुत अधिक है। फिर भी, हमें ध्यान रखना चाहिए कि यदि हम श्रेणी तथा श्रेणी के बीच में परिस्थिति के प्रभाव का अध्ययन करें तो, मालूम होगा कि एक अन्य कारक, जातीय कारक, भी इसके बीच में आता है।

डेनकिर[2] (Deniker) ने बतलाया है कि यूरोप में हम ऊँची तथा नीची श्रेणी के लोगों के कद की विभिन्नता में जातीय बनावट की विभिन्नता भलीभाँति देख सकते हैं, क्योंकि महाद्वीप के अधिकांश भाग में, ऊँचे कदवाली नार्डिक जाति

१. पूर्वलिखित, पृष्ठ १५
२. पूर्वलिखित, पृष्ठ ३१–३२

समाज के ऊर्ध्वार्ध भाग में अधिक मिलती है और अल्पाइन तथा मेडिटेरेनियन जैसी छोटे कद की जातियाँ निचली श्रेणी में मिलती हैं।[1]

परिस्थिति तथा जातियों का मिश्रण

स्थायी रूप से जातीय प्रकारों को परिवर्तित करने में परिस्थिति के प्रभाव के पक्ष में एक दूसरा तर्क भी उपस्थित किया जाता है। वह है यहूदियों में अनेक प्रकार के गुणों का मिलना जिसको कि बोआस (Boas)[2] तथा थोड़े से अन्य लोगों ने परिस्थिति के कार्य का परिणाम बतलाया है।

जैसा कि पिटर्ड[3] ने कहा है, जाहिरा तौर से जातीय मिश्रण ही उनकी व्याख्या है जिसका यहूदियों के इतिहास में स्पष्ट संकेत मिलता है।

अमेरिका की परिस्थिति तथा उससे उत्पन्न कहे जानेवाले जातिसम्बन्धी परिवर्तन

प्रोफेसर फ्रैन्ज़ बोआस ने भी दावा किया है कि परिस्थिति ने अमेरिका के आप्रवासितों के भौतिक प्रकारों को, विशेष रूप से कपाल के अनुपातों के सम्बन्ध में भलीभाँति प्रभावित किया है तथा इस सम्बन्ध में उन्होंने यहूदियों के उदाहरण को प्रोद्धरित किया है।

१. ब्रिटेन (Britain) में यह कारक उतना नहीं लागू होता जितना कि जातीय इतिहास की विभिन्नता के कारण यूरोपीय महाद्वीप में। महाद्वीप के अनेक भागों में नार्डिक जाति वाले, विजेताओं की उच्च श्रेणी के रूप में थे किन्तु इंग्लैण्ड में, जहाँ तक कि देश के पूर्वी भाग का सम्बन्ध है, उन्होंने खुद ही उस प्रदेश को बसाया, पहले केल्टों ने, फिर ऐंग्लो-सैक्सनों ने तथा अन्त में कुछ भागों को डेन्स (Danes) ने बसाया। नार्मन आक्रमण के ऐतिहासिक, भाषासम्बन्धी तथा सांस्कृतिक काफी परिणाम हुए हैं परन्तु वे बहुत थोड़े जाति-वैज्ञानिक महत्त्व के थे क्योंकि नार्मन लोग अधिकांशतः नार्डिक उत्पत्ति के जर्मन लोग थे जो कि स्वयं ऐंग्लो-सैक्सनों के समान थे।

२. फ्रैन्ज बोआस (Franz Boas) चेन्जेज आफ़ बाडीफ़ार्म आफ डिसेन्डेन्ट्स आफ़ इम्मीग्रान्ट्स (Change of Body form of Descendants of Immigrants), १९१२

३. पूर्वलिखित, पृष्ठ १४

फिर भी प्रोफेसर के० पीयर्सन तथा एल० एच० सी० टिपेट[1] ने इस तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित किया है कि ब्रिटिश तथा मध्य यूरोप के यहूदियों की कापालिक देशनाएँ बहुत समान हैं तथा यूरोप के विभिन्न देशों में सैकड़ों वर्ष रहने के पश्चात् भी वह बात नहीं हो सकी जिसका फ्रैन्ज़् बोआस ने अमेरिका में केवल एक पीढ़ी में हो जाने का दावा किया है।

वास्तव में यह तथ्य कि यहूदी जातीय प्रकार (जिससे मतलब ऐशकेनाजायक, 'Ashkenazaic' से है, जो कि आधार रूप में आर्मेनायड जाति के गुणों से प्रभावित है) साधारण निरीक्षण द्वारा ही सारे संसार में सरलता से पहचाना जा सकता है, एक अच्छा प्रमाण है कि परिस्थिति, वास्तव में जाति-वैज्ञानिक गुणों को विभिन्न प्रकार तथा आकारों में परिणत नहीं करती।

प्रोफेसर रगेल गेट्स ने इस विषय के अनेक कार्यकर्ताओं के मतों का संक्षिप्त विवरण दिया है, जिसका एकत्रित प्रभाव देशान्तरगमन के बतलाये गये प्रभाव का अर्थात् कपाल[2] के आकार पर नयी परिस्थितियों के प्रभाव का निराकरण कर देता है।

सम्भवतः आंशिक रूप से और बहुत थोड़ी मात्रा में देशान्तरगमन के कारण जो परिवर्तन बतलाये जाते हैं तथा जननिक उत्पत्ति से जिनका सीधा सम्बन्ध नहीं है, वे वास्तव में कपाल के आकार पर बढ़े हुए कद के प्रभाव के कारण हैं।

प्रोफेसर आर० ए० फिशर (Professor R. A. Fisher) ने बतलाया है कि यूरोप तथा जापान में छोटी श्रेणी के लोगों की अपेक्षा ऊँची श्रेणी में लम्बे कद तथा लम्बे सिरवाले लोग मिलते हैं।

फिर भी, जहाँ तक यूरोप का सम्बन्ध है ऊँची तथा नीची श्रेणियों में इस प्रकार का अन्तर मुख्य रूप से इस कारण से नहीं बतलाया जा सकता, क्योंकि यह अधिकांशतः जननिक है अर्थात् नार्डिक तथा डाइनारिक तत्त्व उच्च लोगों में, सामान्य जनता की अपेक्षा अधिक प्रदर्शित होते हैं।

फिर भी, ऐसा भी हो सकता है कि लम्बा कद वास्तव में सकरे कपालों की उत्पत्ति

१. **ऑन दि स्टेबिलिटी ऑफ दि सिफालिक इण्डिसीज विद दि रेस** (on the Stability of the Cephalic Indices with the Race.); **बायोमेट्रीका** (Biometrika), **१६, पृष्ठ ११८**

२. **आर० आर० गेट्स** (R. R. Gates) **ह्यूमैन जेनेटिक्स** (Human Genetics), **१९४६, जिल्द दो, पृष्ठ १३८३**

करता हो। यदि ऐसा है तो, उदाहरणार्थ अमेरिका, कनाडा तथा आस्ट्रेलिया की रहन-सहन की अच्छी दशाएँ अधिक लम्बी पीढ़ी की उत्पत्ति कर सकेंगी और इससे सकरे कपाल की उत्पत्ति होना भी बहुत संभव है। परन्तु यह चीज स्थायी अथवा जननिक महत्त्व की नहीं है। यदि जीवन की ऊँचे स्तर की दशाएँ हटा दी जायँ तो पीढ़ी पुनः अपने प्रारम्भिक प्रकार में परिणत हो जायगी। कोई भी जननिक शास्त्री बाह्य समरूप (फेनोटाइप) पर परिस्थिति के प्रभाव के सम्बन्ध में आपत्ति नहीं करना चाहता, परन्तु अपने कार्य के अनुभव द्वारा वे उन प्रमाणों को अस्वीकार करने को बाध्य हैं जो कई क्षेत्रों में यह दिखलाने के लिए अभी तक दिये गये हैं कि बाह्य उद्दीपन द्वारा किसी सम पित्र्यक में कोई मूलभूत परिवर्तन की उत्पत्ति की जा सकती है।

यह सब चाहे जो हो, कद की वृद्धि द्वारा, जो स्वयं देशान्तर गमन के पश्चात् सुधरी हुई परिस्थिति के कारण है, कपाल का इस तरह सकरा हो जाना किसी बड़े महत्त्व का नहीं है।

यह अवश्य ही इतने महत्त्व का नहीं है कि प्रोफेसर बोआस या और किसी के द्वारा उठाये गये इस दावे का औचित्य सिद्ध कर दे कि परिस्थिति ने काफी सीमा तक किसी जातीय प्रकार को बदल दिया है। कद में इस प्रकार के परिवर्तन दीर्घ कपालों (dolichocephals) को माध्यमिक कपालों (mesaticephals) में अथवा इन्हें पृथु कपालों (brachycephals) में परिणत नहीं कर सके।

बढ़े हुए कद के कारण कपाल के सकरे होने के सिद्धान्त के सम्बन्ध में प्रसंकर शक्ति के सम्भावित प्रभाव को न भूल जाना चाहिए।

प्रसंकर शक्ति जिसकी व्याख्या हम अधिक विस्तार से अन्य स्थान में करेंगे, अन्य गुणों के साथ साथ लम्बे कद की उत्पत्ति भी कर सकती है तथा इस प्रकार कपाल का सकरापन हो सकता है। चूँकि परिस्थिति द्वारा कपाल के आकार में परिवर्तन की बात अक्सर ऐसे उदाहरणों से ली जाती है जिनमें यह परिवर्तन उन देशों में बस जाने के बाद होता है जहाँ जातीय मिश्रण हो रहा है तथा इसलिए जहाँ पर प्रसंकर शक्ति एक महत्त्व का कारक है, वहाँ इसकी सम्भावना को न छोड़ देना चाहिए।

भौगोलिक निश्चयवाद द्वारा बोआस का समर्थन

बोआस (Boas) ने यह सिद्ध करने के प्रयत्न में जो कार्य किया है कि आप्रवास से जातीय गुणों में मूल रूप से परिवर्तन हो जाता है, उस कार्य को भौगोलिक निश्चय-वाद के एक प्रमुख समर्थक, येल विश्वविद्यालय के स्व० प्रोफेसर एल्सवर्थ हंटिंगटन ने लिया। ऐसा करते समय उन्होंने जननिक क्षेत्र में कार्य करनेवालों के विचारों की अव-

हेलना की है, जिसके कुछ उदाहरण हम प्रोद्धरित कर चुके हैं। उन्होंने एक अतिशयता-पूर्ण दावा भी किया है कि "प्रारम्भ की संदिग्धावस्था के बावजूद बोआस ने एक ठोस, युग-निर्माणकारी उन्नति की ओर कदम बढ़ाया है।"[१] वास्तव में यदि यह सत्य होता तो यह युग-निर्माण से भी अधिक होता, क्योंकि यह डार्विन, मेण्डल तथा अन्य जननिक शास्त्रियों के आज तक किये गये अन्वेषणों को नष्ट कर देता और मानव-शास्त्रियों तथा जातिवैज्ञानिकों द्वारा किये गये सम्पूर्ण परिश्रम के मूल आधारों को अप्रमाणित कर देता।[२]

हवाई में जापानी प्रवासी

इसकी पुष्टि करने के लिए हण्टिंगटन इसके आगे भी जाते है तथा हवाई में जापानी आप्रवासितों पर लिखित शेपीरो (Shapiro) के ग्रंथ से उद्धरण देते हैं, जिसके अन्वेषण आप्रवासित माता-पिताओं तथा उनके बच्चों के शारीरिक आकार के अन्तर की ओर संकेत करते हैं।

इसके साथ साथ उन्होंने पिछले १५० वर्षों में स्विटजरलैण्ड तथा ५० वर्षों में अन्य स्थानों में होनेवाली कद की वृद्धि के आँकड़ों के लिए बोलेस[३] (Bowles) को उद्धृत किया है।

शेपिरो का कार्य मुख्यतः शारीरिक अनुपात तथा उनसे मिलनेवाली देशनाओं से सम्बन्धित है। किसी अन्य स्थान पर हमने बतलाया है कि जननिक प्रभाव मापों में

१. मेनस्प्रिंग्स आफ़ सिविलाइजेशन (Mainsprings of Civilization), न्यूयार्क एण्ड लन्दन, १९४५, पृष्ठ ५४

२. इस स्थान पर यह कहा जा सकता है कि सारे भौगोलिक निश्चयवादी, स्व० प्रोफेसर एल्सवर्थ हन्टिगटन के मतों से सहमत नहीं हैं। उदाहरण के लिए प्रोफेसर ग्रिफ़िथ टेलर इस सम्बन्ध में प्रोफेसर फ्रैन्ज बोआस के विचारों से असहमत हैं, जैसा कि उन्होंने अपने एक 'रेशिल ज्योग्रफ़ी' (Racial Geography) लेख में ज्योग्रफ़ी इन दि ट्वेन्टिएथ सेन्चुरी (Geography in the Twentieth Century) में बतलाया है, लन्दन (London) मेथुअन (Methuen), १९५३

३. न्यु टाइप्स आफ़ ओल्ड अमेरिकन्स एट हार्वर्ड ऐण्ड ऐट ईस्टर्न वुमेन्स कालेजेज (New Types of old Americans at Harvard and at Eastern women's Colleges) हार्वर्ड यूनीवर्सिटी (Harvard University), १९३२

प्रदर्शित नहीं होते वरन् आकार द्वारा अधिक सरलता से देखे जा सकते हैं। यह बात इसे इस दिशा में सीमित कर देती है, अन्यथा यह कार्य बड़े महत्त्व का है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि मुख्यतः यह कार्य हवाई में जापानी आप्रवासितों के वंशजों के कद की अथवा आकार तथा वजन की वृद्धि बतलाता है।

शारीरिक अनुपात, स्वभाव तथा प्रवसन

प्रोफेसर एल्सवर्थ हंटिंगटन स्वीकार करते हैं कि शारीरिक अनुपात तथा स्वभाव में सम्बन्ध मिलता है। अधिकांश प्रौढ़ भौतिक मानव-वैज्ञानिकों ने इस विषय पर कभी सन्देह नहीं किया था, जिनका विशेष ध्यान प्रारम्भ में चाहे कपाल के सम्बन्ध में रहा हो, यह जानते थे कि प्रत्येक कपाल के प्रकार में एक विशेष शारीरिक आका र से सम्बन्धित होने की प्रवृत्ति मिलती है।

इसलिए यदि, जैसा कि हंटिंगटन मानते हैं, ऐसा कोई सम्बन्ध है तब स्वदेश की औसत जनसंख्या तथा औसत आप्रवासितों के अन्तर का कारण चुनाव भी माना जा सकता है।

यह समझने के लिए कोई कल्पना करने की आवश्यकता नहीं है कि स्वदेश में चाहे जितनी कठिनाइयाँ हों परन्तु हर व्यक्ति ऐसा नहीं है जो उत्प्रवासी बनने को तैयार हो। उत्प्रवासन में पिछले को भूल जाने की, अपने को मूल स्थान से अलग करने की तथा सभी सुरक्षा को छोड़ने की आवश्यकता पड़ती है, जैसी भी वह रही हों, जो उस स्थान में रहने से मिलती हैं जहाँ पर कुछ लोग उसे जानते हैं तथा जहाँ उसके रक्त-सम्बन्धी तथा नातेदार रहते हों। उत्प्रवासन के लिए प्रवासी में साहसिक प्रवृत्ति तथा काफी सीमा तक घर में रहनेवाले औसत मनुष्यों से अधिक आत्म-निर्भरता होनी चाहिए। इसलिए, इसके लिए हिम्मत चाहिए, मुख्यतः उन दशाओं में, जब कि यह कार्य कुछ लोगों को बाहर बसाने की राज्य की किसी योजना के अन्तर्गत न हो रहा हो।

इसलिए यह स्पष्ट है कि उत्प्रवासियों में कुछ निश्चित स्वभावसम्बन्धी गुणों का होना अन्तर्निहित है। स्वभाव तथा शरीर की बनावट में घना सम्बन्ध होने के कारण यह परिणाम निकलता है कि उत्प्रवासन में जो एक विशिष्ट प्रकार के स्वभाव का चुनाव करना पड़ता है, उसके साथ ही एक विशेष प्रकार के शारीरिक आकार का भी चुनाव आवश्यक है।

इसलिए इसमें आश्चर्य नहीं कि हवाई द्वीपसमूह में जापान के जो आप्रवासी गये वे वास्तव में अपने देश की जनसंख्या से एक विशेष दिशा में थोड़ा भिन्न थे। परिणामतः उनके निकट-वंशजों में वही अन्तर बने रहेंगे।

साथ ही इसमें भी कोई आश्चर्य नहीं कि, जिन कारकों की हमने अभी व्याख्या की है उनको पूर्ण रूप से छोड़ दिया जाय तो भी, प्रवासितों के बच्चे अपने माता-पिता की अपेक्षा अधिक लम्बे तथा शरीर के भारी हों और उनमें कुछ अन्य गुणों के सम्बन्ध में भी थोड़ा अन्तर मिले। कारण यह है कि अभी जिन कारकों की व्याख्या की है उनके अतिरिक्त देशान्तर-गमन में बहुत से नये कारक भी शामिल रहते हैं।

प्रथम तो देशान्तर-गमन की प्रवृत्ति सदैव निर्धनता से अधिक अच्छी दशाओं की ओर बढ़ने की होती है।

आस्ट्रेलियानिवासियों के तथा अन्य उदाहरण इससे मिलते जुलते हैं। उन लोगों ने देशान्तर-गमन से अपनी स्थिति काफी सुधार ली है तथा उसी के साथ अपनी शारीरिक दशा की भी उन्नति कर ली है।

इसलिए, जो बच्चे पुरानी स्थिति के बजाय नयी तथा अच्छी परिस्थिति में बढ़ते हैं, वे पुराने समय की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह जाति के पूरे कद तक बढ़ेंगे। परन्तु यहाँ यह केवल अधिक अच्छे पोषण द्वारा परिस्थिति के कार्य करने तथा बाह्य समरूप पर उसके प्रभाव डालने का उदाहरण है। समपित्र्यक अप्रभावित रहता है। कम से कम इसका कोई प्रमाण नहीं कि उसमें परिवर्तन हुआ हो।

कद की वृद्धि, खुराक तथा पेशा

हण्टिंगटन[1] (Huntingtan) कद में साधारण वृद्धि के प्रमाणों का विवेचन करने के पश्चात्, जिसके सम्बन्ध में हमने भी मध्यकाल से वर्तमान समय तक बढ़ते चलने की चर्चा अन्य स्थान पर की है, केवल खुराक, स्वास्थ्य, व्यायाम तथा पेशे में सुधार को ही उसके लिए उत्तरदायी ठहराने के विचार को अस्वीकार करते हैं।

इसके विषय में शेपिरो ने भी उनका समर्थन किया है और इस तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित कर उक्त तर्क का खण्डन किया है कि अमेरिका के ओजार्क में तथा उस देश के दक्षिणी राज्यों में, जहाँ पर रहने की दशाएँ विशेष रूप से खराब हैं, संयुक्त राज्य अमेरिका के कुछ सब से लम्बे कद के लोग पाये जाते हैं। उनका कथन है कि "हालाँ कि चाहे यह दावा किया जा सकता है कि ये लोग पित्रागति द्वारा लम्बे कदवाले

१. पूर्वलिखित, पृष्ठ ५५

वर्ग से आये, तथ्य यह है कि बहुत खराब दशाएँ होते हुए भी ये लोग अब भी अपने यूरोप के पूर्वजों से अधिक लम्बे हैं।"[1]

फिर भी इस तर्क में उचित से अधिक बातें सत्य मान ली गयी हैं।

प्रथम तो, उनकी परिस्थिति की खराबी को उनके पूर्वजों की परिस्थिति तथा कद से तुलना करके सिद्ध करना आवश्यक है। यह केवल सम्भव ही नहीं है परन्तु काफी सम्भावित भी है कि उनके परदादाओं की रहने की दशाएँ आजकल मिलनेवाली दशाओं से कहीं अधिक खराब रही हों। यही कारण था कि ये लोग संयुक्त राष्ट्र अमेरिका को गये।

कद तथा प्रसंकर शक्ति

यदि केवल तर्क के लिए ही हम यह बात मान लें कि अच्छा पोषण इसके लिए उत्तरदायी नहीं है, तब भी एक आवश्यक बात छूट जाती है कि केवल यह तथ्य कि यूरोप से ओजार्क में लोगों ने देशान्तरगमन किया अथवा जापानी आप्रवासी जापान से हवाई (Hawaii) टापू गये, यह बतलाता है कि साधारणतया अन्तर्विवाह करने की परिधि बढ़ गयी और यहीं प्रसंकर शक्ति (Hybrid vigour) का विषय सामने आता है जो कि ऐसी व्याख्या के समय अक्सर छोड़ दिया जाता है।

प्रसंकर शक्ति के विषय की व्याख्या हमने अन्य स्थान में कुछ विस्तार से की है इसलिए यहाँ पर अधिक विस्तृत वर्णन करने का विचार नहीं है। फिर भी संक्षेप में हण्टिंगटन तथा शेपिरो के विचारों को स्पष्ट करने के लिए कुछ कहना आवश्यक है, यद्यपि वह कैसे होता है उसे हम आगे की व्याख्या के लिए छोड़ देंगे। ऐसी घटनाओं में उसकी विशिष्ट महत्ता पर अधिक जोर देना अनुचित नहीं है।

विवाह के क्षेत्र को बढ़ाये बिना, जहाँ से पति अथवा पत्नियाँ मिलती हैं, किसी प्रकार का देशान्तर-गमन नहीं हो सकता। जब कि पहले एक ही गाँव के पुरुष तथा स्त्री विवाह करते थे, देशान्तर-गमन के पश्चात्, पुरुष एक ऐसी स्त्री से विवाह कर सकता है जिसके माता-पिता निकटवर्ती गाँव के हों अथवा पुरुष के अपने माता-पिता के घर से अधिक दूर के प्रान्त के हों।

इस प्रकार से विभिन्न भिन्न-युग्म (allelomorphs) के आने से, जननिक

१. **अमराम शेनफील्ड** (Amram Scheinfield) **से प्रोद्धरित, दि न्यु यू एण्ड हेरेडिटी** (The New You and Heredity), **लन्दन, १९५२, पृष्ठ १०४**

बनावट का विस्तार हो जाता है। परिणामतः बहुत सी घटनाओं में प्रसंकर शक्ति का निर्माण होता है।

इसलिए यदि बच्चे अपनी उत्पत्ति के देशोंवाली पैतृक पीढ़ी की अपेक्षा बड़े न हों, तो यह आश्चर्य की बात होगी।

परिणामतः इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि वे बड़े हैं तथा नये प्रदेश में उत्पन्न होने से अपने पूर्वजों के कद की अपेक्षा, उनका कद बड़ा होने का जो परिवर्तन मिलता है उससे यह किसी प्रकार भी सिद्ध नहीं होता कि स्वयं परिस्थिति द्वारा ही यह सचेतन परिवर्तन हुआ है।

ऐसी सब घटनाओं में सम-पित्र्यक (जीनोटाइप) नयी परिस्थिति के असर से बिलकुल अप्रभावित रहते हैं।

इस प्रकार से यद्यपि कोई भी जातिवैज्ञानिक जो अपने विषय को समझता है तथा कोई भी जननिकशास्त्री यह स्वीकार नहीं कर सकता, जैसा कि हंटिंगटन तथा शेपिरो ने भी नहीं किया है कि केवल अच्छी स्वास्थ्यसम्बन्धी दशाएँ, व्यायाम, खुराक इत्यादि ही पूर्णतया बढ़े हुए आकार के लिए उत्तरदायी हैं, फिर भी वे उस प्रसंकर शक्ति के प्रभाव की अवहेलना नहीं कर सकते जो कि माध्यमिक काल से आजकल तक धीरे-धीरे मनुष्यों की गतिविधि की स्वतन्त्रता से उत्पन्न हुई है।

उत्प्रवासियों के वंशजों में कद की वृद्धि के वास्तविक कारण

इसलिए, इसके विपरीत जो कुछ कहा जा सकता है उसके होते हुए भी अच्छे पोषण के बढ़ते हुए लाभों में एक यह भी है कि यह सम्बन्धित जातीय प्रकारों की सम्भावित सीमा के अन्दर अच्छे कद तथा वजन की वृद्धि उत्पन्न करने में एक आवश्यक कारक है। प्रसंकरोर्जा (हेटेरोसिस) ने भी काफी व्यावहारिक रूप से तथा बहुधा विस्तार से बाह्य समरूप को प्रभावित किया है जिससे कि कद में परिवर्त्तन हुआ।

इस प्रकार मनुष्य के विकास तथा कद से सम्बन्धित जटिल एवं परस्पर विरोधी-से प्रतीत होनेवाले इस तत्त्व की व्याख्या उस ज्ञान के आधार पर की जा सकती है जो हमें जातियों की आधारभूत समरूपी बनावट पर पड़नेवाले पोषण के प्रभाव के सम्बन्ध में होता है। इसके साथ ही प्रसंकरोर्जा (हेटेरोसिस) की जानकारी से भी उसकी व्याख्या हो सकती है जैसा कि वह बाह्य समरूप को प्रभावित करती है चाहे हम इस बात की व्याख्या कर रहे हों कि शहर तथा देहात के लोगों में अथवा आप्रवासितों तथा स्वदेश की जनसंख्या में इतनी विभिन्नता क्यों है। बढ़े हुए कद की बात हमारे जननिक ज्ञान से मेल खाती है और इससे इस मत का समर्थन कदापि नहीं होता कि वंशानुगति का

सिद्धान्त किसी भी मात्रा में "नये मानव विज्ञान" द्वारा परिवर्तित किया जा रहा है। यह "नव्य मानव विज्ञान" प्रभावतः ऐसा सिद्धान्त है जो उन सभी बातों को अस्वीकार करता है जो जाति-विज्ञान की शास्त्रीय व्याख्या पर वैज्ञानिक रूप से भली भाँति आधारित है।

अमेरिका में फ्रैन्ज बोआस ने संयुक्त राष्ट्र अमेरिका (United States of America) में यहूदी आप्रवासितों के कपाल के अनुपात पर जो कार्य किया है तथा उस कार्य को स्व० प्रोफेसर एल्सवर्थ हण्टिंगटन द्वारा जो समर्थन प्राप्त हुआ है, उसका प्रयत्न वास्तव में इस क्षेत्र के प्रारम्भिक लेखकों ने पहले ही शुरू कर दिया था। मुख्यतः जर्मनी में ऐसा हुआ जहाँ पर सामान्यतः परिस्थितीय दशाओं को दक्षिणी जर्मनी तथा मध्य यूरोप की जनसंख्या के चौड़े कपालों का कारण बतलाया है। इनमें से बहुतों ने पर्वतीय दशाओं तथा स्थान की अधिक ऊँचाई के आधार पर इसे समझाने का प्रयत्न किया है।

कपाल के आकार पर जलवायु का प्रभाव

जो हो, इन समर्थकों में एक महान् जातिवैज्ञानिक स्व० प्रोफेसर सर विलियम फ्लिंडर्स पेट्री (Professor Sir William Flinders Petrie) का नाम उल्लेखनीय है।[1]

उन्होंने परिस्थिति के प्रभाव का समर्थन करने में जलवायु की शक्ति का महत्त्व माना और यह सुझाव दिया कि कपाल का आकार समताप रेखाओं पर आधारित है।

इस मत के समर्थन में उन्होंने यह तथ्य प्रोद्धरित किया है कि लम्बार्डी (Lombordy) पर ५६८ ई० पूर्व में लैंगोबार्ड (Langobard) की लम्बे कपालवाले नार्डिक लोगों की ऐंग्लोसैक्सन जाति ने हमला किया था, परन्तु फिर भी आज लम्बार्डी यूरोप के सबसे छोटे कपालवाले क्षेत्रों में से एक है।

फिर भी यह तथ्य, जैसा कि पेट्री (Petrie) ने सोचा था, परिस्थितीय नियंत्रण के कारण नहीं है वरन् पूर्णतया मूल लैंगोबार्ड-निवासियों की जातीय अवनति के कारण है।

१. माइग्रेशन्स (Migrations) जर्नल आफ दि रायल एन्थ्रोपोलोजिकल इन्स्टीट्यट (Journal of the Royal Anthropological Inst.) भाग ३६, हक्सले भाषण, १९०६

हमारे मत से प्रोफेसर पार्सन्स[१] निःसन्देह ही ठीक कहते हैं जब वे पेट्री के विचारों की समालोचना करते समय उसका उत्तर देते हुए कहते हैं कि "हम यह बिना विचार किये नहीं रह सकते कि पेट्री अपने उत्साह में कुछ तथ्यों को छोड़ गये हैं जिन पर भी, कोई निर्णय देने के पूर्व, विचार करना आवश्यक था। जिस बात पर उन्होंने पूरा जोर नहीं दिया है वह है कि इटली के उत्तरी शेष भागों की भाँति लम्बार्डी, आल्प्स के काफ़ी निकट है, जो कि छोटे सिरवाली अल्पाइन जाति (Alpine race) का केन्द्र था। अन्य बात जो उन्होंने नहीं बतलायी यह है कि अल्पाइन जाति पिछले १२०० वर्षों से अल्पाइन केन्द्र से उत्तर तथा दक्षिण की ओर अपने लम्बे सिरवाले पड़ोसियों की ओर बराबर फैलती रही है।"

इस सबके उपरान्त यह बात भी बतलायी जा सकती है कि अल्पाइनवालों का चौड़ा कपाल, नार्डिक तथा मेडिटेरेनियन के सकरे कपालों पर प्रभावी है। इसीलिए इस प्रकार की नार्डे-अल्पाइनो-मेडिटेरेनियन मिश्रित जनसंख्या में चौड़े कपालवाले प्रकार का ब ह्य समरूपी प्रकटीकरण उसके समपित्र्यक से अधिक होगा।

इसलिए वास्तव में, उत्तरी इटली के लोग इतने अधिक अल्पाइनप्रभावित नहीं हैं जितना कि उनके कपाल के अनुपात से पता चलता है।

इसके आगे यदि यह भी जोड़ दिया जाय कि नार्डिक जातीय प्रकार गरम जलवायु के लिए कम उपयुक्त है और यह वर्तमान औषधियों, स्वच्छता के प्रयत्नों तथा उनके मलेरिया जैसे रोगों के नियन्त्रण के पूर्व मुख्य रूप से सत्य था, तो हम देखेंगे कि जहाँ तक लम्बे कपालों से चौड़े कपालों में वस्तुतः परिवर्तन हुआ है, जिससे कोई जातिवैज्ञानिक इनकार नहीं करता, ऐसा अंशतः जनसंख्या के नार्डिक तत्त्वों के विरुद्ध विपरीत चुनाव के कारण हुआ।

इस प्रकार, सन्तानोत्पादन की विभिन्न गति, जिससे नार्डिक की अपेक्षा अल्पाइन लोगों की शीघ्र वृद्धि हुई, फिर नार्डिक के विपरीत, बीमारी द्वारा विरुद्ध चुनाव होना तथा अन्त में कपाल के प्रभुत्व द्वारा जनसंख्या के नार्डिक तत्त्वों का ढक जाना और नार्डिक के ऊपर अल्पाइन रंग का प्रभाव (तथा जहाँ तक कि रंग का सम्बन्ध है मेडिटेरेनियन का) यह सब लम्बार्डी के लोगों के आकार में, नार्डिक से अल्पाइन में, परिवर्तित होने के कारण है।

१. **दि अर्लियर इनहैबिटेन्ट्स आफ़ लन्दन** (The Earlier Inhabitants of London), पृष्ठ ५५, १९३७

जब हमारे पास इतनी स्पष्ट व्याख्या है तब पता चलता है कि प्रोफेसर सर विलियम फ्लिन्डर्स पेट्री (Prof Sir William Flinders Petrie) द्वारा प्रतिपादित किये गये सिद्धान्त कितने अनावश्यक और सचमुच कितने वाहियात हैं।

लम्बे कपालों की तथाकथित प्राचीनता

बहुत से लेखक, जिनमें भौगोलिक निश्चयवादी भी हैं, लम्बे कपाल को प्राचीन बतलाते हैं, परन्तु वे मानव जातियों के उद्‌विकास को यूरेशिया (Eurasia) के मध्य में मानते हैं और दावा करते हैं कि चौड़े सिरवालों की उत्पत्ति बाद में हुई और इन्होंने धीरे-धीरे लम्बे सिरवालों को बाहर की ओर भगा दिया।

इससे भूगोलवेत्ताओं ने यह परिणाम निकाला कि लम्बे सिरवालों से जो सभ्यता की अच्छी बातों की उत्पत्ति हुई है, वह उनकी जातिगत योग्यता के कारण नहीं वरन् भौगोलिक सुविधाओं के कारण हुई है।

इस दृष्टिकोण में दो बातें हैं।

प्रथम तो लम्बे कपालवाली जातियों की प्राचीनता।

दूसरे, किसी सभ्यता को यदि लम्बे सिरवालों ने विकसित किया तो वह उनकी वंशानुगति के कारण नहीं हो सकती वरन् विभिन्न समय में सुविधाजनक भौगोलिक परिस्थितियों के कारण है।

वास्तव में तर्क के रूप में लम्बे कपाल की तथाकथित प्राचीनता का इतना महत्त्व है कि इसके आधार पर अनेक बड़ी सभ्यताओं के गुणों को वंशानुगति न बताकर परिस्थिति के कारण बतलाया जाता है और यही कारण है कि अनेक भौगोलिक लेखकों ने लम्बे कपालवालों के अपरिपक्व गुणों पर अधिक जोर दिया है।

कारण यह है कि यदि ये जातियाँ इतनी प्राचीन हैं कि ये सभ्यता की उत्पत्ति नहीं कर सकतीं तब इसका श्रेय भौगोलिक दशाओं को मिलना चाहिए।

हम निश्चयपूर्वक यह परिणाम नहीं निकालते कि अवश्य ही ऐसी प्रवृत्तियाँ पूरी तरह समझी गयी थीं तथा जान-बूझकर सभी अथवा अधिकांश निश्चयवादियों द्वारा इनका दुरुपयोग किया गया, परन्तु हमें विश्वास है कि कुछ उदाहरणों में, उनकी विचारधारा पर उनका प्रभाव पड़ा है इसलिए संक्षेप में ऐसे अभिकथनों की चर्चा करना आवश्यक है।

इस मत के माननेवाले विद्वानों में मुख्य प्रोफेसर एल्सवर्थ हंटिंगटन[१] हैं जिन्होंने

१. मेनस्प्रिंग्ज आफ़ सिविलाइजेशन, न्युयार्क तथा लन्दन, १९४५, पृष्ठ ५८

जब कि यह माना है कि "विश्व इतिहास में मेडिटेरेनियन तथा नार्डिक जातियों के लम्बे सिरवाले लोग वास्तव में एशिया के अल्पाइन तथा मंगोलायड चौड़े सिरवालों की अपेक्षा अपने कार्यों में अधिक प्रसिद्ध रहे हैं", तिस पर भी वे कहते हैं कि "यह विशिष्टता, फिर भी आन्तरिक योग्यता की अपेक्षा अधिकांशतः सुविधाजनक भौतिक परिस्थितियों के कारण है। समस्त युग के कुछ महान् लोगों में, लुई पाश्चर (Loius Pasteur) तथा विक्टर ह्यूगो (Victor-Hugo) की तरह, चौड़े सिरवाले अल्पाइन थे।"

वास्तव में कोई भी यह सोच सकता है कि केवल उनकी इस स्वीकारोक्ति के प्रकाश में ही इन भौगोलिक निश्चयवादियों के मतों की तर्कहीनता सिद्ध हो जाती है।

चूँकि यह मत उन्हीं के द्वारा प्रतिपादित किया गया है इसलिए प्रश्न यह नहीं है कि चौड़े कपाल के लोग अधिक बुद्धिमान्[1] हो सकते हैं अथवा नहीं, परन्तु यह कि विकास की प्रारम्भिक दशा में लम्बे सिरवाले प्राचीन हैं या नहीं।

संक्षेप में तथ्य यह है कि केवल चीन की सभ्यता को छोड़कर, जो कि समय की दृष्टि से बाद की हो सकती है तथा मध्य अमेरिका के मय तथा इनका (Mayas and Incas) की, जो कि अवश्य ही बाद की है, सबसे अधिक प्राचीन सभ्यताएँ पूर्णरूप से अथवा अंशतः लम्बे कपालवाले लोगों के कारण हैं जो कि सभी काकेसायड जातियाँ हैं। इस प्रकार से मिस्र, अमेरिका, बेबीलोनिया, यूनान, मेडिटेरेनियन बेसिन तथा भारत में सिन्धुघाटी की सभ्यताएँ उन लोगों की हैं जो कि मुख्यतः मेडिटेरेनियन जाति से आये हैं तथा यूनान और रोम में कुछ नार्डिक और कुछ डाइनारिक जाति का मिश्रण भी मिलता है।

बाद की ये सभ्यताएँ, जिन्होंने आर्यसभ्यता तथा इन्डो-यूरोपियन भाषाओं को जन्म दिया और जो कि पूर्व में भारत की आर्यसभ्यता से लेकर समय पाकर यूरोप में ईसाइयों तक फैली हुई हैं, अधिकतर नार्डिक जाति से सम्बन्धित हैं क्योंकि चाहे काकेसायड लोगों की अन्य कोई भी जाति शामिल हो, सब में उसी की सामान्य सन्तति (कॉमन स्ट्रेन) मिलेगी। जिन देशों में काकेसायड लोग रहते थे वहाँ की भूमि की भौगोलिक दशाएँ विभिन्न प्रकार की थीं जो कि भारत तथा मेसोपोटामिया में गरम से

१. किसी जातिवैज्ञानिक अथवा जननिक शास्त्री ने यह कभी नहीं कहा है कि वे नहीं थे, इसलिए पाश्चर तथा ह्यूगो तथा और अनेकों के नाम लेना निरर्थक है जिनको कि हम बतला सकते थे।

लेकर मेडिटेरेनियन की तथा ठंडे शीतोष्ण तक की मिलती हैं। परन्तु उनमें एक समान कारक के रूप में वह जातीय समूह रहा है जिसमें लम्बे सिरवाले सबसे महत्त्वपूर्ण रहे हैं। इसलिए, प्रोफेसर एल्सवर्थ हंटिंगटन का कथन केवल सत्य ही नहीं है वरन् उनके अपने इस सिद्धान्त को भी अयोग्य ठहराता है कि जहाँ तक इन सभ्यताओं का प्रश्न है, ये केवल आन्तरिक जातीय गुणों के कारण नहीं बल्कि भौगोलिक कारणों से विकसित हुई हैं।

अधिक प्राचीन जातियाँ लम्बे कपालवाली हैं

इन सब लेखकों का मुख्य आधार यह है, जैसा कि प्रोफ़ेसर ग्रिफिथ टेलर[१] ने तथा अन्य लेखकों[२] ने एक से अधिक बार जोर देकर कहा है, कि सभी प्रारम्भिक प्रकार के मनुष्य लम्बे कपालवाले थे।

दूसरे, बात केवल ऐसी ही नहीं है परन्तु, जैसी कि आशा करनी चाहिए, सबसे अधिक प्राचीन जातियाँ, जातियों के मानव-भूवृत्त-सम्बन्धी वितरण के सिद्धान्तों के आधार पर, महाद्वीपों के छोर में (जैसे कि केप आफ़ गुड होप) केपहार्न तथा तसमानिया में मिलती हैं। साथ ही वे दुर्गम पर्वतों, वनों तथा द्वीपों के शरण मिलनेवाले स्थानों में भी मिलती हैं जो कि यूरेशिया के मध्य से महाद्वीपों के किनारे के भागों तक फैले हुए हैं।

जब कि, भूभाग के मध्य में, जैसा कि उनका विचार है बाद में उत्पन्न होनेवाली चौड़े कपाल की जातियाँ पायी जाती हैं जिनको उन्होंने मनमाने तौर से अल्पाइन्स[३] कहा है।

१. **क्लाइमेटिक साइकिल्स एण्ड इवोल्युशन** (Climatic cycles and Evolutions) **ज्योग्रेफ़िकल रिव्यू** (Geographical Review), **दिसम्बर १९१९, भाग ८, पृष्ठ २८८ तथा इवोल्युशन एण्ड डिस्ट्रीब्युशन आफ़ रेस** (Evolution and Distribution of Race) **कल्चर एण्ड लैंगवेज** (Culture and Language) **ज्योग्रेफ़िकल रिव्यु १९२१, भाग २, पृष्ठ ५५**

२. **एल्सवर्थ हंटिंगटन, दि केरेक्टर आफ़ रेसेज** (The Character of Races. Chas. Scrbner's), **न्युयार्क, १९२४**

३. **उन जातीय समूहों के लिए जिनके लिए जातिवैज्ञानिक को अल्पाइन, पूर्वी बाल्टिक, डाइनारिक, आर्मनायड (चौड़े सिरवाले काकेसायड के लिए) तथा मंगोलायड (एशिया के चौड़े सिरवाले तथा पीले लोगों के लिए) वर्गीकरण का प्रयोग करना पड़ता है।**

लम्बे सिर तथा लम्बे सिर

फिर भी, प्रागैतिहासिक भूतकाल के प्राचीन निवासियों के साथ लम्बे कपाल-वालों का तथा सभ्यता के विकास से महाद्वीपों के छोरों का जो सम्बन्ध है, उसका यह सब बहुत छिछला संश्लेषण है।

बहुधा लम्बे कपालवालों की प्राचीनता के विषय में जो एक बात छोड़ दी जाती है वह यह है कि लम्बे सिरवाले भी कई वर्ग के मिलते हैं। काकेसायड (Caucasoid) वर्ग के बचे हुए दीर्घ कपालवाले (dolichocephalic) लोग प्रारम्भिक लम्बे कपालवाले मनुष्यों से उतने ही विकसित हुए हैं जितने चौड़े सिरवाले मंगोलायड हैं। ये शरीर-रचना-सम्बन्धी तथ्य हैं जिनकी पूर्णतया अवहेलना की गयी है।

जातियों के विकास में भौगोलिक परिस्थिति का कार्य

स्वभावतः भूगोल का एक अपना स्थान है परन्तु लम्बे कपाल की विशिष्टता, जैसा कि हंटिंगटन ने बतलाया है, "अधिकांशतः स्वाभाविक योग्यता के बजाय भौतिक परिस्थिति की सुविधा के कारण है," ऐसी बात नहीं है। किसी कलाकार के हाथ पीछे की ओर बाँध दिये जायँ तथा खींचने अथवा रंगने के सम्पूर्ण साधनों से उसे वंचित कर दिया जाय तब उसे अपनी कलात्मक योग्यता प्रदर्शित करने का बहुत थोड़ा अवसर मिलेगा अथवा बिलकुल ही नहीं मिलेगा, परन्तु यदि उसे हाथों की स्वतन्त्रता, पेन्सिल, कुछ ब्रश तथा रंग दे दिये जायँ तब उसकी बुद्धि का प्रदर्शन हो सकेगा।

ऐसा ही मानव के लिए भी है। कोई जातीय समूह चाहे उच्च कोटि की कला, प्राविधिक ज्ञान तथा विचारों के योग्य हो परन्तु यदि उसे प्राचीन वनों अथवा ध्रुव प्रदेशों (Arctic) में एकान्त में रख दिया जाय, तब उसका प्रदर्शन उस कोटि का नहीं होगा। यदि प्रकृति उसको भूमध्यसागरीय, पश्चिमी तथा उत्तर-पश्चिमी यूरोप में पहुँचा दे, जो कि सभ्यता के विकास के लिए सबसे अच्छे प्रदेश हैं, तो उसकी बुद्धि की प्रखरता प्रकट होगी, जैसा कि उन्हीं प्रदेशों में नार्डिकों तथा मेडिटेरेनियनों के साथ हुआ है। परन्तु यह "अधिकांशतः स्वाभाविक योग्यता की अपेक्षा सुविधाजनक भौतिक परिस्थिति के कारण" नहीं हुआ।

इसके विपरीत भूगोल ने इतना ही किया कि स्वाभाविक योग्यता को स्वयं प्रदर्शित करने का अवसर दिया।

यही भौगोलिक परिस्थिति का कार्य है।

यह बहुत महत्त्वपूर्ण है किन्तु है यह नकारात्मक ही; सकारात्मक या सर्जनात्मक शक्ति नहीं। सकारात्मक शक्ति, वंशानुगति में मिलती है तथा जितने तथ्यों का हमने

निरीक्षण किया है, वे न केवल इसका समर्थन करते हैं परन्तु भौगोलिक निश्चय-वादियों के मत को पूर्ण रूप से अप्रमाणित कर देते हैं।

कोई भी मानवशास्त्री भूगोल के उस महत्त्वपूर्ण कार्य की अवहेलना नहीं कर सकता जो उसने जातियों के चुनाव में, विद्यमान जातियों तथा उनकी योग्यता के विकास में तथा परिणामतः जिन सभ्यताओं की उत्पत्ति हुई है, उनमें प्रकृति के छाँटनेवाले हथियार के रूप में किया है। फिर भी हमें भूगोल के सम्बन्ध में बढ़ चढ़कर दावा नहीं करना चाहिए। वास्तव में उसका कार्य नकारात्मक या अप्रत्यक्ष रूप का है। वंशानुगति में ही सर्जनात्मक शक्ति मिलती है जिससे मनुष्य उन्नति कर सकता है; हालाँ कि, बिना उस छँटनी के जो कि भौगोलिक परिस्थिति से मिलती है, न तो ऊँचे प्रकार के मनुष्यों के उद्‌विकास के लिए आवश्यक चुनने की शक्ति वह पा सकता और न इनकी उत्पत्ति हो जाने पर उसे अपने आपको प्रदर्शित करने का अवसर ही मिलता।

कद की वृद्धि के अन्य कारण

जब जातियों तथा व्यक्तियों का नयी परिस्थितियों से सम्पर्क होता है, तब कद की जो वृद्धि होती है उसके विषय में हमने जो कहा है वह सम्पूर्ण नहीं है, परन्तु उसका उद्देश्य देशान्तरगमन होने पर जो घटनाएँ होती हैं उनके लिए काफी कारण प्रस्तुत करना है, जो कि एक ओर तो भूगोल तथा दूसरी ओर वहुत कठोर जननिक शास्त्र के कारकों के अनुरूप हो। जो हो, उन कारकों की व्याख्या के बिना जो कि देशान्तर गमन से उत्पन्न होते हैं तथा उसके विकास पर प्रभाव डालते हैं, इसे यहीं पर छोड़ देना अवांछनीय होगा।

अभी तक परिस्थिति के प्रभाव की व्याख्या करते समय हमने मुख्यतः परिस्थिति से उत्पन्न रहन-सहन की अच्छी दशाओं की चर्चा की है। हम यह भी स्वीकार कर चुके हैं कि वाह्य समरूपों को प्रभावित करने में और इस प्रकार लम्बे तथा बड़े कदवाले लोगों की उत्पत्ति करने में यह एक कारक हो सकता है अथवा जहाँ पर इसके विपरीत दशाएँ मिलती हैं इसके विपरीत हो सकता है। इसके साथ हमने प्रसंकर शक्ति के प्रभाव को भी रख दिया है।

परिस्थिति के साथ कतिपय अन्य कारक भी कार्य करते हुए मिल सकते हैं, जिनमें से निम्नलिखित कुछ महत्त्व के हो सकते है।

यह काफ़ी सम्भव है कि सूर्य का अधिक प्रकाश, जैसा कि उदाहरणार्थ संयुक्त राष्ट्र अमेरिका तथा आस्ट्रेलिया में मिलता है, कम सूर्य का प्रकाश मिलनेवाले उत्तर-पश्चिमी यूरोप से आये हुए लोगों के विकास को प्रभावित कर सकता है। इससे 'विटा-

मिन डी' (vitamin D) में जो वृद्धि होगी उसका प्रभाव बाढ़ पर अच्छा पड़ेगा। इसलिए सिर्फ इस कारण से ही समुद्रपार गये इन नये राष्ट्रों में कद तथा शरीर की बनावट में वृद्धि होने की आशा की जायगी।

साथ ही धरती के खनिज पदार्थ, जो कि पीने के पानी को प्रभावित करते हैं तथा भौगोलिक परिस्थिति से उत्पन्न बहुत से अन्य सूक्ष्म प्रभाव उसी प्रकार हमारी बाढ़ को रुद्ध अथवा विकसित कर सकते हैं, जिस प्रकार अपनी इच्छानुसार प्रकाश तथा कृत्रिम और प्राकृतिक खाद देकर हम पौधों के विकास को नियन्त्रित करते हैं। महत्त्वपूर्ण होने पर भी ये सब कारण केवल बाह्य समरूपों (phenotype) को ही प्रभावित करते हैं तथा उनका पारेषण नहीं होता। यदि वे पारेषित हो सकते हैं तो परिपोषण (nurture) के समर्थकों को हमें बतलाना चाहिए कि समपित्र्यक (genotype) किस प्रकार प्रभावित होता है।

इसलिए, हम फिर उसी तथ्य पर आ जाते हैं, जैसा कि जननिक अनुसन्धानों से पता चलता है, जब कि परिस्थिति में वंशानुगत तत्त्वों को किसी अन्य रूप में परिवर्तित करने की थोड़ी अथवा बिलकुल क्षमता नहीं है, वह उस क्षेत्र को प्रभावित कर सकती है जिसमें जाति कार्य करती है, जैसा कि कद के सम्बन्ध में हमने अभी देखा है।

इस प्रकार जैसा प्रोफेसर क्रू[1] (Prof. Crew) ने बतलाया है, पशुओं में यह साधारणतया देखा गया है कि एक ही वंशशाखा की भेड़ का आकार तथा उसके मांस का स्वाद, जलवायु की दशाओं के अनुसार काफी भिन्न मिलता है।

उदाहरण के लिए सुअरों में कुछ बच्चे मातृक-गलग्रन्थि (thyroid) की लघु-इंद्रिय-क्रिया (hypofunctioning) के कारण, पूर्णतया केशरहित उत्पन्न होते हैं। इसका उपचार, इस उदाहरण में पशुओं को हरा भोजन तथा आयोडीन देकर परिस्थिति में परिवर्तन करने से होता है।

इसलिए, यह स्पष्ट है कि यदि खाने में बाह्य अथवा परिस्थितीय दशाओं के कारण मूलभूत तत्त्वों की कमी होती है, जैसा कि हमने देखा है, तब कद की वृद्धि में रुकावट होती है।

१. एफ़० ए० ई० क्रू (F. A. E. Crew), M. D. D. Sc. Ph. D. F. R. SE. एनिमल जेनेटिक्स (Animal Genetics) एडिनबर्ग, १९२५, पृष्ठ १३९

यह कई बार बतलाया जा चुका है कि ये दशाएँ जननिक नहीं हैं और न यह वंशानुगति पर कोई ऐसा प्रभाव ही छोड़ती हैं कि यदि एक बार फिर पुरानी दशाएँ स्थापित कर दी जायँ तो सदैव पुनः वही साधारण तथा जाने हुए जातीय प्रकारों की उत्पत्ति होगी।

उपार्जित गुणवाद तथा भौगोलिक निश्चयवाद की उत्पत्ति के कारण

यह मत कि परिस्थिति तथा अन्य बाहरी कारण जीवित पदार्थों के तथा मनुष्यों के सचेतन कीटाणुओं में परिवर्तन कर सकते हैं, तथा जो उन विभिन्न सिद्धान्तों का आधार है, जिन्होंने बिना वैज्ञानिक प्रमाण के लोगों का ध्यान आकर्षित किया है और हमारी समस्त सामाजिक विचारधारा तथा हमारे राजनीतिक सिद्धान्त एवं दर्शन शास्त्र का आधार बन गये हैं तथा जिन्हें शुरू शुरू में लेमर्क ने स्थापित किया, यह समझने के पहले निर्मित हुआ था कि कीटाणुकोश शरीरकोश से विभाजित होते हैं।

जैसा कि प्रोफेसर क्रू[1] ने बतलाया है, जब इन दोनों कोशीय बनावटों की भिन्नता स्पष्ट रूप से प्रमाणित हो गयी, तब स्वभावतः इस खोज से एक पीढ़ी के लोगों को धक्का पहुँचा, जिनका अस्पष्ट विचार था कि जननकारी तत्त्व (reproductive elements) शरीर की एक शाखा मात्र है।

वास्तव में यह कहा जा सकता है कि यदि कीटाणु सचेतन तथा पित्रागति की विधि की खोज कुछ समय पहले हो गयी होती तो उपार्जित गुणों के पारेषण-सिद्धान्त तथा उसी पर आधारित उसके प्रतिरूप भौगोलिक निश्चयवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन ही न किया जाता।

परिस्थिति जातीय प्रकारों को प्रभावित नहीं कर सकती, इसके अन्तिम प्रमाण

गिनी सुअरों पर कासेल तथा फिलिप्स[2] (Castle and Philips) ने परीक्षण किया था जिसमें उन्होंने काले के अंडाशयों को सफ़ेद में डाल दिया तथा सफ़ेद

१. क्रू, पूर्वलिखित, पृष्ठ ३३९

२. डब्लू० ई० कासेल तथा जे० सी० फिलिप्स (W. E. Castle and J. C. Phillips) फरदर एक्सपेरीमेन्ट्स आन ओवेरियन ट्रान्सप्लान्टेशन इन गिनी पिग्ज (Further experiments on ovarian Transplantation in Guinea-pigs) साइन्स, १९१३, ३८, पृष्ठ ७८४

मादा का सफ़ेद नर के साथ मेल कराया। उससे केवल काली सन्तति की उत्पत्ति हुई जिससे यह सिद्ध होता है कि शरीर के कोश तथा ऊतियों का भी कीटाणुकोशों अथवा वंशानुगति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

इसलिए यदि, शरीर के कोशों का थोड़ा अथवा कोई आन्तरिक प्रभाव नहीं होता तब परिस्थिति का कैसे हो सकता है जो उनके द्वारा ही कार्य कर सकती है ?

उपार्जित गुणों के पारेषण के कथित प्रमाण

यह तर्क किया जा सकता है कि उपार्जित गुणों के पारेषण के कुछ प्रदर्शनों का ठीक से मूल्यांकन नहीं किया गया।

अवश्य ही यदि यह सत्य है तो इसका अर्थ होगा कि शरीर के कोश, कीटाणुकोशों को प्रभावित कर सकते हैं।

उपार्जित गुणवाद के लिए सबसे हानिकारक दावे वे हैं, जो लिसेन्को (Lysenko) तथा मास्को एकेडमी आफ साइन्सेज़ (Moscow Academy of Sciences) द्वारा प्रस्तुत किये गये हैं। ये दावे, स्पष्ट रूप से झूठे और बनावटी नहीं तो, पूर्णतया असत्य हैं, यह रूस के बाहर समस्त जातिवैज्ञानिक शाखाओं के किसी भी वैज्ञानिक की इस सम्बन्ध में की गयी व्याख्या से प्रकट होता है। इसलिए यहाँ हम उनकी अधिक विवेचना नहीं करना चाहते।

दूसरी ओर समय समय पर उनके लेखकों के सम्बन्ध में अधिक प्रतिष्ठितता के दावे किये जाते हैं। इस प्रकार के प्राचीन दावों में से एक फलों की मक्खी ड्रोसोफीला के सम्बन्ध में है।

इस उदाहरण में यह बतलाया गया है कि कुछ गुण कुछ अंशों तक वंशानुगति से स्वतन्त्र रूप से कार्य करते मिलते हैं जिसके फलस्वरूप कुछ लोगों ने इसको परिस्थिति का उससे अधिक महत्त्व प्रमाणित करने के लिए प्रयुक्त किया है जितना जननिक शास्त्री मानते हैं।

यह देखा गया है कि जिन फलों को ये मक्खियाँ खाती हैं यदि उन पर अधिक आर्द्रता होती है तो उनका पेट अधिक बड़ा हो जाता है परन्तु यदि भोजन सूखा होता है तो ऐसा नहीं होता।

अब यह आगे दिखलाया जायगा कि ऐसे भी उदाहरण हैं जिनमें बाह्य रूप से साधारण दीखनेवाली नस्लों में छिपे रूप से अथवा अपसारी रूप से अन्य गुण भी होते हैं। परन्तु यह जननिक गुण है, परिस्थिति द्वारा उत्पादित नहीं तथा जैसा कि क्रू (Crew) इस विशेष उदाहरण में बतलाते हैं, फल की मक्खियाँ, जिनकी बनावट

इस छिपी असामान्यता को ले जाने योग्य नहीं है, असामान्य मक्खियों की उत्पत्ति नहीं करतीं।

यहाँ भी वंशानुगति की क्रिया दृष्टिगोचर होती है जो कि अपने केवल थोड़े से निश्चित तत्त्वों के सम्बन्ध में ही उस असाधारण परिस्थिति द्वारा किञ्चित् प्रभावित होती है जिसमें वह कार्य करती है।

समय-समय पर वैज्ञानिक कार्यकर्ताओं के छोटे समूह मिलते हैं जैसे गायर तथा स्मिथ[१] (Guyer and Smith) जिन्होंने उपार्जित गुणवाद की उपकल्पना (Hypothesis) की स्थापना के लिए अधिक ठोस प्रयत्न किये हैं।

परन्तु इन सब में शंका का कारण मौजूद है कि इन लोगों ने क्या सचमुच वही उदाहरण लिये है जो असंदिग्ध रूप से उपार्जित गुणों की पित्रागति के प्रमाणों की स्पष्ट स्थापना करते हैं।

साथ ही, और यह बहुत महत्त्वपूर्ण है कि, बहुत प्रयत्न के पश्चात् जो थोड़ा सा तथ्य प्रमाण के रूप में बतलाया गया है उसके विपरीत हमारे पास राशि राशि ऐसे प्रमाण हैं कि, साधारण तथा सहज नियम के रूप में, उपार्जित गुणों की पित्रागति नहीं होती।

उपार्जित गुणों के पारेषण में "विश्वास करने की इच्छा"

इस विषय की समालोचना करते हुए क्रू[२] (Crew) कहते हैं "यह बतला देना चाहिए कि जननिक शास्त्री विशिष्ट उपार्जित गुणों की स्पष्ट पित्रागति के प्रदर्शन की अपेक्षा और किसी को अधिक महत्त्व नहीं दे सकते। उपार्जित गुणों की पित्रागति की सम्भावना के विरुद्ध कोई पूर्वनिर्धारित मत नहीं है। परन्तु यह समझना आवश्यक है कि उपार्जित गुणों की पित्रागति में 'विश्वास की इच्छा' मानव के व्यवहार में एक समझने लायक प्रवृत्ति है और यह ऐसी चीज है जिसे रोकना आवश्यक है।"

१. **एस० एफ़० गेयर तथा ई० ए० स्मिथ** (M. F. Guyer and E. A. Smith) **स्टडीज ऑन साइटोलिसिन्स। II. ट्रान्समिशन आफ़ इन्ड्युस्ड आई डिफेक्ट्स,** (Studies on Cytolysins. II. Transmission of Induced Eye Defects.) **जर्नल आफ़ एक्सपेरीमेंटल जूलोजी, १९२०, ३१, पृष्ठ १७१, फर्दर स्टडीज आन इनहेरिटेन्स ऑफ आई डिफेक्ट्स इंड्यूस्ड इन रैबिट्स** (Further studies on Inheritence of Eye Defects Induced in Rabbits) **जर्नल आफ़ जूलोजी, १९२४, ३८, पृष्ठ ४४९**

२. **क्रू, पूर्वलिखित, पृष्ठ ३५१**

हम यह सोचे बिना नहीं रह सकते कि भौगोलिक निश्चयवाद तथा उसके जननिक प्रतिरूप उपार्जित गुणवाद के पीछे 'विश्वास की इच्छा' एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण शक्ति है।

उन्नीसवी तथा बीसवी शताब्दी में भौतिक धन तथा सामग्री का अपरिमित विस्तार होता रहा है और इसमें प्रत्येक स्थान पर नये मनुष्यों ने शक्ति प्राप्त की है। वास्तव में यह स्वतः-निर्मित मनुष्य का युग है।

विश्व-इतिहास में शायद ऐसा युग कभी नहीं था जब कि मनुष्य भूतकाल के आभारी होने में इतने असहिष्णु थे, केवल परिवर्तन के लिए ही परिवर्तन के इतने इच्छुक तथा समस्त उत्पादक शक्तियों के ऊपर शासन करने के लिए इतने उतावले थे (intolerent) जितने आज हैं।

हमारी राय में इन मानसिक प्रवृत्तियों से ही शायद उस असहनशीलता की उत्पत्ति हुई है जो आज के मनुष्य के मन में वंशानुगति की शक्ति के प्रति विद्यमान है। यहाँ तक कि उसमें भौतिक मानवविज्ञान तथा जातिविज्ञान के अध्ययन को अनुत्साहित करने की भी प्रवृत्ति मिलती है, जो कि मनुष्य के वंशानुगत गुणों के जननिक आधारों के प्रति उदासीन नही हैं और न हो सकते हैं।

जब कि वर्तमान समय में समस्त मानवसमाज इन साधारण विचारों से सहमत है, दो बड़े राष्ट्रीय क्षेत्रों तथा उनसे प्रभावित स्थलों में सबसे अधिक यह चीज पायी जाती है।

हमारी राय में यह 'विश्वास की इच्छा' ही इस महत्त्वपूर्ण तथ्य का कारण है कि अमेरिका तथा रूस नव-उपार्जित गुणवादी विचार के केन्द्र हैं। पहले उदाहरण में तो हमारे समक्ष ऐसा नया पूँजीवादी देश है जिसे वंशानुगति की शक्ति के प्रति नियमित अरुचि है—बादशाहों तथा सम्पन्न जनों से पित्र्यकों तक मानो स्वभाव से ही अरुचि है और है अपनी प्रारब्ध को अपने हाथों से ठीक करने तथा भूतकाल के नियमों की दासता स्वीकार न करने की उत्कट इच्छा। जब कि दूसरी ओर एक ऐसा देश है जो ऐसे राजनीतिक सिद्धान्त से ओतप्रोत है जो उपार्जित गुणवाद के इस दर्शन पर आधारित है कि मनुष्य जो कुछ भी है अपनी सामाजिक तथा आर्थिक दशाओं के परिणामस्वरूप है तथा मनुष्य एक नये तथा क्रान्तिकारी प्रकार के जीवन के लिए "सामाजिक रूप से तैयार" किया जा सकता है।

इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि ये देश मुख्यतः प्रतिक्रिया के केन्द्र है और इसीलिए अन्य देशों की अपेक्षा नव-उपार्जित गुणवाद के गढ़ हैं।

अमेरिका के आप्रवासितों के सम्बन्ध में प्रोफेसर बोआस का कार्य, उनको परि-

र्तित करने में परिस्थिति की कही जानेवाली बड़ी शक्ति तथा प्रोफेसर एल्सवर्थ हंटिंगटन के मतों को, जान में अथवा अनजान में, ऐसे ही विचारों से अनुप्रेरित समझना चाहिए।

फिर भी, उपार्जित गुणवाद के समर्थन में बतलाये गये कुछ सम्परीक्षणों पर पुनः विचार करते समय ध्यान रखना चाहिए कि इनमें से अधिकांश सम्परीक्षणों ने, जिनमें उपार्जित गुणों की पित्रागति की बात प्रमाणित करने का (वास्तव में इतने कम परिणाम के साथ) प्रयत्न किया है, सम्बद्ध नस्लों को ऐसी कठिन दशाओं में रखने का प्रयास किया है जिनकी कि वास्तविक जीवन में मिलने की सम्भावना कम है।

इसलिए ऐसा प्रतीत होगा कि उपार्जित गुणों की पित्रागति ऐसी दशाओं में ही हो सकती है जो साधारणतया मनुष्यों के लिए घातक होगी—इस प्रकार व्यावहारिक मतलब के लिए इस प्रश्न ने जितना शायद उपयुक्त है उससे अधिक समय तथा ध्यान आकर्षित किया है।

अतः यह स्पष्ट है कि हमें उन्नीसवीं शताब्दी के दर्शन के प्रभावशाली विचारों को त्याग देना चाहिए, जो कि परिस्थितीय दशाओं से प्रभावित होकर नये गुण उपार्जित किये जा सकते हैं, उपार्जित गुणवाद के इस सिद्धान्त पर आधारित हैं, क्योंकि तथ्य हमें केवल इस परिणाम तक पहुँचायँगे कि वंशानुगति अथवा जाति की शक्ति की सत्यता स्वीकार की जाय; हालाँ कि उसके साथ ही परिस्थिति का भी अपना एक बहुत आवश्यक प्रभाव है तथा वह है, प्रत्येक पीढ़ी में वंशानुगति की शक्ति के विकास को प्रभावित करना। परन्तु जहाँ तक कीटाणु-प्राणरस में परिवर्तन करने और उसके द्वारा भविष्य के निर्माण की योग्यता का प्रश्न है, यदि वास्तव में उसमें है तो, उसका कार्य शायद बहुत ही कम है।

इस निर्णय पर पहुँचकर हम मुख्य वैज्ञानिकों के—जैसे अमेरिका के मारगन (Morgan), हालैण्ड के दि राइस (de Vries), डेनमार्क के जोहानसेन (Johansen), जर्मनी के कोरेन्स तथा बार (Corens and Baur), स्काटलैण्ड के क्रू (Crew), इंग्लैण्ड के हाल्डेन (Haldane)—तथा अधिकांश देशों के जीववैज्ञानिकों, प्राणिशास्त्रियों (Zoologists) और मानववैज्ञानिकों के बहुमत के अनुयायी बन जाते हैं।

मनुष्य के सम्बन्ध में भूगोल का कार्य

मनुष्य के विकास में भूगोल का क्या हाथ है? जैसा हमने पहले अनेकों बार जोर देकर बतलाया है, उसका कार्य नकारात्मक किन्तु फिर भी बहुत महत्त्वपूर्ण है,

क्योंकि यह निश्चय करता है कि मनुष्य कहाँ रह सकता है तथा कौन से मनुष्यों एवं जातियों की उन्नति इस स्थान पर होगी या कौन यहाँ नष्ट हो जायँगी। भूगोल छाँटनेवाले उपकरण के समान है जो जीवित पदार्थों से उन रूपों का नाश कर देता है जो वंशानुगति द्वारा अधिक मात्रा में उत्पादित होते हों तथा जो परिस्थिति के प्रतिकूल हों। परन्तु भूगोल किसी नये प्रकार की उत्पत्ति नहीं करता और न जीवन की प्रकृति को देखते हुए ऐसा कर ही सकता है। उसका प्रभाव घातक से लगाकर अनुज्ञात्मक तक हो सकता है।

भूगोल के त्रिगुणात्मक कार्य; सुजननिक (Eugenics) दुर्जननिक (Dysgenic) तथा मानसिक

जितना बतलाया जा चुका है उससे स्पष्ट है कि भूगोल के कई प्रभाव हो सकते है। ये सब बड़े महत्त्व के हैं परन्तु मनुष्य में मिलनेवाली जननिक प्रक्रिया को ये नियन्त्रित नहीं करते बल्कि उसके द्वारा कार्य करते हैं। प्राकृतिक चुनाव के यंत्र के रूप में भूगोल निर्बल प्रकारों को छाँटकर अलग कर दे सकता है तथा इस प्रकार सुजनन के स्वाभाविक प्रकार के पीछे एक शक्ति बन जाता है और जाति में से निर्बल तत्त्वों को नष्ट करके शक्तिशाली तथा योग्य सन्ततियों की उत्पत्ति करता है। परन्तु इन सन्ततियों का निर्माण वह नहीं करता, वे तो हमेशा से ही वहाँ पर थीं। इसने केवल अच्छी सन्ततियों के साथ मिश्रित निर्बलों को हटा दिया और इस प्रकार सन्तति के सम्पूर्ण औसत को ऊँचा कर दिया।

दूसरी ओर भूगोल इसकी विपरीत दिशा में भी कार्य कर सकता है और दुर्जननिक (डिसजेनिक) शक्ति का यंत्र बनकर जातीय ह्रास तथा संहार की ओर ले जाता है, जिसमें निर्बल जीवित रहते हैं तथा ऊँची और अच्छी सन्ततियों का नाश हो जाता है।

फिर भी वैकल्पिक क्रम से, भूगोल एक तीसरे प्रकार का भी कार्य करता है और वह है मस्तिष्क पर प्रभाव डालना। भौगोलिक निश्चयवादियों के चाहे जितने मतों को हम पायें हम सभी विचारों का समर्थन नहीं कर सकते, न केवल इस दृष्टि से कि वास्तव में वे क्या कहते हैं, वरन् इस दृष्टि से भी कि उनका तात्पर्य क्या रहता है। यह तात्पर्य जाति-विज्ञान के जननिक आधार के सम्यक् ज्ञान के इतना विपरीत होता है कि हम प्रोफेसर एस० एस० विशर[1] (Prof. S. S. Visher) से सहमत होते हैं, जब वे

१. क्लाइमेटिक इनफ्लुयेन्सेज (Climatic Influencs) ज्योग्रफी इन दि ट्वेन्टिएथ सेन्चुरी (Geography in the Twentieth Century) लन्दन, १९५३, पृष्ठ १९६

एल्सवर्थ हंटिंगटन के योगदान की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते है—जहाँ उन्होंने सभ्यता पर जलवायु का प्रभाव दिखलाया है।

यह स्वतः सिद्ध है कि मनुष्य के रहने योग्य स्थिति की अन्तिम सीमा पर रहनेवाले एस्किमो लोग भी ऐसी हालत में होंगे जहाँ परिस्थिति का प्रभाव उनके मस्तिष्क को सुस्त कर देता है जिससे कि सांस्कृतिक गतिहीनता उत्पन्न हो जाती है। उसी प्रकार से दूसरे छोर की चरम सीमा पर अति घने और सबसे अधिक नीची सतहवाले भूमध्यरेखा-स्थित दलदलों तथा वनों में इसी प्रकार का कुछ मिलना चाहिए।

इसके विपरीत, जैसा कि प्रोफेसर हंटिंगटन ने दिखलाया है, यह निःसन्देह ही सत्य है कि घर के बाहर का ५०° से ६०° फ० का औसत तापक्रम ऊँची सभ्यताओं के लिए सहायक है।

इससे इस तथ्य के कारण का पता चल सकता है कि, उदाहरण के लिए, क्यों नार्डिक लोग पिछले ३००० से ४००० वर्ष तक, अपेक्षाकृत पिछड़े हुए रहे।

साइबेरिया के मैदान के ठंडे पश्चिमी भाग में रहने के कारण उनकी शक्ति मुख्यतः जीवन को किसी तरह बनाये रखने के लिए ही आवश्यक थी, सभ्यता के विकास की ओर ध्यान देना उनके लिए संभव ही कहाँ था?

फिर भी एक बार हिमयुग के पश्चात् जब बर्फ कम हुई, और जब लोगों ने अपने आपको अपेक्षाकृत कम कठोर जलवायु में पाया, विशेष कर जब कि वे यूरोप में पश्चिम की ओर चलकर, भूमध्यसागर, ऐटलान्टिक सागर तथा उत्तरी सागर के सबसे अच्छे जलवायु के प्रदेश में पहुँचे, तब नार्डिकों ने जलवायुसम्बन्धी सरल दशाओं का अनुभव किया और वे लोग सभ्यता के विकास में शीघ्र उन्नति कर सके।

यद्यपि यह सब सत्य है तथा हम प्रोफेसर हंटिंगटन तथा अन्य लोगों के साथ इस बारे में सहमत हैं कि ये सब विकास भूगोल के कारण हुए, फिर भी इस विचार का समर्थन नहीं किया जा सकता कि भूगोल से नार्डिक जाति की विशिष्टता तथा उसकी सभ्यता की उत्पत्ति हुई है।

हुआ यह है कि उक्त जातीय वर्ग को जिसमें अपनी उद्विकास सम्बन्धी प्रगति के कारण आवश्यक जननिक गुण थे एक ऐसे प्रदेश में बसने का अवसर मिला जिसमें अत्यन्त प्राचीनकाल से वंशानुगत द्वारा पारेषित पित्रागत बौद्धिक गुण, पूर्ण विकसित हो सकते थे।

इसलिए, हालाँ कि प्रोफेसर हंटिंगटन उचित ही ५०°–६०° फ० तक संसार में सबसे उत्तम प्रदेशों के महत्त्व की ओर ध्यान आकर्षित करते है, यह सिद्ध नहीं होता कि यदि कोई अन्य जातीय वर्ग वहाँ पर जाकर बस गया होता तो भी वही परिणाम

निकलता। वास्तव मे, निग्रायड लोग पुरा-पाषाण काल मे भूमध्यसागरीय भूभागो तक पहुँच गये थे, फिर भी उससे निग्रायड जाति की कोई विशेष उन्नति नही हुई। साथ ही प्रोफेसर ग्रिफिथ टेलर जैसे अन्य भौगोलिक निश्चयवादियो ने अपनी मानवजाति की मानव-भूवृत्तीय वितरण की योजना मे, निग्रायड तथा निग्रिटो लोगो का मूल स्थान सम शीतोष्ण प्रदेश माना है। हम नही कह सकते कि उससे हम यह कल्पना करने को प्रेरित होते है कि उन प्रदेशों मे काले लोगों की सभ्यता का जन्म हुआ।

केप आफ़ गुड-होप का जवलायु भी भूमध्यसागर के जलवायु से अधिक भिन्न नही है इसलिए हम होटेनटाट्स तथा बुशमैन (Hottentots and Busman) से सांस्कृतिक दृष्टि से कुछ उन्नतिशील होने की आशा कर सकते, यदि सम-तापक्रम वाली रेखाओं में ही सर्जनात्मक शक्ति होती। दूसरी ओर टसमानिया में जहाँ पर नीग्रिटो (Negrito) जनसंख्या है और जलवायु की उत्तर-पश्चिमी फ्रान्स जैसी सबसे उत्तम दशाएं भी है, फिर भी वे नीग्रिटो के जीवन-स्तर को ऊँचा करने मे असफल रही जो कि सब स्थानों में नीचा है।

इसलिए, मुख्य बात यह है कि उचित जातीय सन्ततियो को ऐसे भौगोलिक प्रदेशों में जाना चाहिए जो उनकी योग्यता के लिए सबसे अधिक सहायक हों।

प्रोफेसर हंटिगटन के इस मत में काफ़ी तथ्य हो सकता है कि गृह-निर्माणविद्या की उन्नति, अधिक उपयुक्त भोजन, अधिक गर्म कपड़े तथा कार्य में सहायक अन्य दशाओ से ठंडे देशान्तरों की उन्नति होना सम्भव हो जाता है, इसलिए भूमध्यसागर से उत्तरी यूरोप तक सभ्यता का विकास हुआ।

जहाँ तक यह सत्य है, यह उस बात को सिद्ध करता है जिसे हम कहना चाहते हैं। क्योकि यहाँ पर मनुष्य ने अपनी सहज प्रतिभा तथा बौद्धिक योग्यता का प्रयोग करके, गर्म कपड़ों और उचित घरों को बनाकर, उत्तरी प्रदेशों द्वारा डाली गयी भौगोलिक बाधाओं को जीत लिया है।

इसलिए यह परिणाम निकलता है कि परस्पर प्रभाव डालने वाली दो बड़ी शक्तियाँ है—पृथ्वी तथा उसके ऊपर का जीवन। यही हमारे लिए भूगोल एवं मानवशास्त्र है। मनुष्य को अपनी परिस्थिति के साथ मिल जुलकर चलना चाहिए। यह कभी कभी उसे रोक सकती है या नष्ट कर दे सकती है और किसी समय उसके अनुकूल रुख भी ग्रहण कर सकती है। फिर भी मनुष्य उसकी रचना नहीं है। उसकी बनावट पित्रागत है जिसकी सामग्री से उसका विकास होता है। भूगोल की प्रत्यक्ष शक्ति एक

ओर चुनाव के रूप में उद्विकास को छाँटनेवाले उपकरण के रूप में और दूसरी ओर निष्क्रिय तथा अनुमोदक के रूप में अपना कार्य करती है।

इसलिए भूगोल स्वयं निश्चय नहीं करता कि क्या हो सकता है अथवा क्या होगा, क्योंकि उसे वंशानुगति द्वारा प्रस्तुत पूर्वनिश्चित सामग्री के दायरे के भीतर ही अपना चुनाव कार्य करना पड़ता है।

शब्द-व्याख्या

जाति-विज्ञान (Ethnology) **तथा जाति-जननिक विद्या** (Ethno-genetic) **में प्रयुक्त महत्त्वपूर्ण प्राविधिक तथा अन्यविशेष रूप से व्याख्यायोग्य कुछ शब्दों की संक्षिप्त परिभाषा नीचे दी जाती है।**

अपसारी (Recessive)

गुणों, कारकों अथवा पित्र्यकों के लिए प्रयोग किया गया शब्द, जो कि संकरण की प्रथम पीढ़ी में नहीं दिखलाई पड़ते। यह प्रभावी (dominant) का उलटा है।

अभिवर्ण (चमकीले रंग का पदार्थ, रंजितक chromatin)

यह धब्बा डालनेवाला एक प्राणरसीय पदार्थ है। यह अभिवर्ण त्वचा, आँखों तथा बालों के रंग के लिए उत्तरदायी है। जब उसका विभाजन नहीं हो रहा हो तब एक कोश की न्यष्टि में अभिवर्ण एक जाल की भाँति लगता है। जब कोश का विभाजन होता है तब अभिवर्ण पदार्थ अनेक भागों में बँट जाता है जिसे पित्र्यसूत्र (chromosome) कहते हैं। (पित्र्यसूत्र देखिए)।

अभिजनन (Breed) **(प्रसवन)**

पशु-प्रसवन में कृत्रिम रूप से, अथवा मनुष्य में प्राकृतिक चुनाव, आकस्मिक चुनाव तथा जननिक परिवर्तन से होने वाले परिणाम को कहते हैं, जिसमें शुद्ध अभिजनन दो या अधिक जातियों के संकरण के कुछ गुणों का पृथक्करण होता है तथा साथ ही पैत्रिक सन्ततियों से पित्रागत पित्र्यकों से पुनः संयोजन होता है।

इस प्रकार से यदि पीत केश तथा नीली आँखों वाली जाति का काले केश तथा भूरी आँखों वाली जाति से संकरण किया जाय और यह मान लिया जाय कि केश तथा आँखों के गुण ग्रथित नहीं हैं तब कुछ समय बाद संकरण से पीत केश तथा नीली आँखें, काले केश तथा भूरी आँखें, पीत केश तथा भूरी आँखें तथा काले केश एवं नीली आँखें लिये हुए व्यक्ति मिलेंगे।

प्रथम दो प्रारम्भिक दो जातियों के तद्गुणी (अथवा लिये प्रकार) हैं। यदि यह दो नष्ट हो जायँ और केवल दो नये प्रकार जीवित रहें और अपने वितरण तथा संख्या में बढ़ जायँ जिससे कि वे सरलता से पारस्परिक अन्तः प्रसवन कर सकें तब वे दो नये अभिजनन बन जायँगे।

हम, अल्पाइन, डाइनारिक-आर्मेनायड तथा पूर्वी बाल्टिक वालों को जातियाँ नहीं, परन्तु इस प्रकार अभिजनन (नस्लें) समझते हैं।

अमेरिन्ड जाति (Amerind Race)

अमेरिका महाद्वीप के मूल निवासियों के लिए इस शब्द का प्रयोग किया जाता है जो कि मंगोलायड जाति की प्रारम्भिक शाखा है।

अर्धसूत्रण (Meiosis)

कीटाणु अथवा प्रजनन-कोशों में कीटाणु विभाजन की क्रिया जिसमें कि जन्युओं (gametes) के निर्माण के लिए पित्र्यसूत्र आधे रह जाते हैं, जो कि विपरीत लिंग-वाले से जब मिलते हैं तब जातियों के पित्र्यसूत्रों की वही संख्या स्थापित कर देते हैं जैसी कि प्रारम्भिक कोशों में मिलती है।

इस क्रिया से सूत्रभाजन (mitosis) का भ्रम न होना चाहिए।

अलिंग सूत्रसम्बन्धी ग्रथन (Autosomal Linkage)

जब गुण उसी पित्र्यसूत्र में मिलते हैं जो कि लिंग-पित्र्यसूत्र नहीं है।

लिंग-ग्रथन देखिए

अल्पाइन (Alpine)

एक जातीय अभिजनन जो कि काकेसायड (Caucasoid) जातियों की एक शाखा है जो कि मध्य फ्रान्स के पहाड़ी क्षेत्रों से पूर्व की ओर दक्षिण जर्मनी तक, स्विटजरलैंड, उत्तरी इटली से पूर्वी यूरोप तक, मुख्य रूप से अल्पाइन प्रदेशों तथा पर्वतों में विकसित हुई है।

आँखों का रंग (Eye Colour)

इनके अनेकों वर्गीकरण हैं। इनमें डा० बेडो (Dr. Beddoe) का सबसे शास्त्रीय है जिसमें कि हलकी आँखें (light eyes)—नीली अथवा धूसर काली आँखें (dark eyes)—पीली लालपन लिए हुए भूरी अथवा काली; अन्य लेखक (वर्तमान लेखक सहित, पीली) लालपन लिए हुए को मध्यम कह कर अलग कर देते हैं तथा इन वर्गों का और भी उप-विभाजन करते हैं।

आँखों-बालों के रंग की देशना (Eye-hair-Colour Index)

यह डा० कोलिगनन (Dr. Collignon) की है और इसे हलके बाल (L. H.) तथा आँखें (L. E.) तथा काले बाल (D. H.) और आँखों (D.E.) के प्रतिशत को लेकर निकाला जाता है, उससे निम्नलिखित देशना बनती है।

$\frac{(LH) + (LE)}{2} - \frac{(DH)-(DE)}{2}$ अन्य के ऊपर एक की अपेक्षिक अधिकता।

आँखों के रंग की देशना (Eye-Colour Index)

डा० बेडो (Dr. J. Beddoe) ने इसका आविष्कार किया है तथा काली-हलकी देशना से निकाला है।

आँख का तारा (Iris)

मानव की आँख का रँगा भाग जो पुतली को घेरे रहता है।

ईथियोपियन (Ethiopian)

नीग्रायड (Negroid) अथवा मेलेनीसियन (Melanesian) अथवा काली जाति के लिए प्रयुक्त पुराना शब्द।

उत्परिवर्तन (Mutations)

पित्र्यकों अथवा पित्र्यसूत्रों में अनपेक्षित परिवर्तनों को उत्परिवर्तन कहते हैं जिसमें जारी न रहनेवाली विभिन्नता मिलती है।

उन्मत्त उदासी (Maniac depression)

एक प्रकार का पागलपन जो शरीर की बनावट पर आधारित है।

उप-जातियाँ (Sub-races)

जातियों के उपविभाग।

जैसे मेडिटेरेनियन जाति दो प्रकारों में विभाजित की जा सकती है, एक तो पश्चिमी या मुख्य मेडिटेरेनियन जाति तथा दूसरी पूर्वी मेडिटेरेनियन जाति।

उपार्जित-गुणवाद (Lamarkism)

फ्रान्स के प्रकृतिवादी (पदार्थशास्त्रज्ञ) शिवेलियर दे लेमार्क (Chevalior de Lamark) ने (१७४४–१८२९) यह सिद्धान्त चलाया। उन्होंने उपार्जित गुणों की पित्रागति के मत का प्रतिज्ञापन किया जिसने कुछ सीमा तक चार्ल्स डारविन पर प्रभाव डाला परन्तु जो मेण्डेल के कार्य द्वारा पूर्णतया अग्राह्य ठहरा दिया गया है। मुख्यतः जर्मनी के प्रतिष्ठित जीववैज्ञानिक वीजमैन (Weismann) ने अपने प्रदर्शनों द्वारा उसे गलत सिद्ध कर दिया है।

डारविन का पैनजेनेसिस (Pangenesis) का सिद्धान्त इससे सम्बन्धित है।

ऊँचाई देशना, चौड़ाई के सम्बन्ध में (Altitudinal Index, in relation to breadth)

सिर अथवा कपाल की ऊँचाई को एक सौ से गुणा करके चौड़ाई से भाग देने पर यह मिलता है। कपाल की ऊंचाई की देशनाओं को देखिए।

ऊँचाई देशना, लम्बाई के सम्बन्ध में (Altitudinal Index, in relation to length)

सिर अथवा कपाल की ऊँचाई को एक सौ से गुणा करके लम्बाई से भाग देने पर यह मिलता है। कपाल की ऊंचाई की देशनाओं को देखिए।

एंडालूसियन (Andalusian)

कुक्कुटों का एक प्रसव जो कि काले, सफेद तथा नीले होते हैं। नीले अपूर्ण प्रभावी हैं जिनका अन्तःप्रसवन होने पर पित्रागति (मेण्डालियन सिद्धान्त) के अनुपात में, २५ प्रतिशत काले, ५० प्रतिशत नीले तथा २५ प्रतिशत सफेद, तद्गुणी रूप में मिलते हैं।

यह अपूर्ण प्रभुत्व का शास्त्रीय उदाहरण है।

एक-युग्मिक जुड़वाँ (Monozygotic Twins)

'जुड़वाँ' देखिए।

एटलाण्टिक जाति (Atlantic Race)

यह शब्द कुछ मानव भूवृतज्ञाताओं द्वारा गलत तथा अस्पष्ट रूप में प्रयोग किया जाता है जिसमें सभी चौड़े कपाल वाली जातियाँ सम्मिलित की जाती हैं। जैसे कि मंगोलायड जातियाँ, जो कि काकेसायड जातियों की एक शाखा है और मुख्यतः आयरलैण्ड (Ireland), पश्चिमी स्काटलैण्ड (Western Scotland), स्वीडेन में डलोर्ना (Dalorna), जर्मनी के वेस्टफेलिया में कहीं-कहीं, कार्नवाल (Cornwall), ब्रिटेनी (Brittany) से यूरोप के पश्चिमी तट तक, डर्डोगोयर में (Dordogire), फ्रान्स के मैसिफसेण्ट्रल ('Massif Centrale') के पश्चिम में और उत्तरी अफ्रीका के बर्बर (Berbers) लोगों में पायी जाती हैं।

इसमें आदि मेधावी मानव (Cro-Mognon Man) से कुछ समानता मिलती है—जो कि इस जाति की प्रारम्भिक शाखा के हो सकते हैं जिनमें लम्बा कद, छोटा निचला चेहरा, ठीक प्रकार से विकसित भ्रकुटि (Supraorbital ridges) अथवा मस्तिष्क का बड़ा आकार मिलता है।

आँखें साधारण नीले रंग की, त्वचा बहुत गौरवर्ण, कम उम्र की स्त्रियों में श्वेत तथा लाल मिला हुआ रंग और काले बाल मिलते हैं।

शरीर की गठन नार्डिक की अपेक्षा दृढ़ है।

जर्मन तथा स्कैन्डिनेवियन लेखकों ने उसे वेस्टफ़ेलिया के आधार पर फेलिक (Faelic) एटलान्टिश तथा डर्लेनियन और हूटन (Hootan) ने अप फ्राम दि एप्स (up from the Apes) में उसे केल्टिक (Keltic) कहा है।

काली जातियाँ (Black Races)

मेलानायड जातियों (Melanoid Races) के लिए प्रयुक्त शब्द है।

कापालिक देशनाओं की ऊँचाई (Height of Skull Indices)

कपाल में खड़ी ऊँचाइयों का वर्गीकरण, लम्बाई तथा चौड़ाई की तुलनात्मक देशनाओं में नीचे दिया है—

	ऊँचाई-लम्बाई देशना	ऊँचाई-चौड़ाई देशना
Platycephalic	–६७	–८३
Mesocephalic	६७–७०	८३–८५
Hypsicephalic	७०+	८५+

कापालिक देशना (Cephalic Index)

जहाँ तक कि मानवमितीय (anthropometrical) नियमों का दावा है—कापालिक देशना, जो —और कुछ सीमा तक यह उचित ही है—जाति-विज्ञान की मुख्य सहायक कही गयी है, यह चौड़ाई को एक सौ से गुणा कर लम्बाई से भाग देकर निकाली जाती है।

सिर तथा कपाल मुख्यत: दीर्घ कपालसम्बन्धी (dolichocephalic), माध्यमिक कपाल सम्बन्धी (mesaticephalic) तथा पृथु-कपाल सम्बन्धी (brachycephalic) अर्थात् लम्बे, माध्यमिक तथा चौड़े (अथवा छोटे) वर्गों में विभाजित होते हैं। इन प्रकारों की विभाजनरेखा के सम्बन्ध में बड़ी अनिश्चितता है। हम लम्बे कापालिक अथवा दीर्घ कपालवाले ७८ से कम तथा पृथु कापालिक ८१ अथवा ८२ से अधिक को समझते हैं।

काकेसायड (Caucasoid)

साधारणतया, इस पुस्तक में निरन्तर श्वेत जाति के लिए इसका प्रयोग हुआ है जो कि होमो योरोपिअस (Homo Europaeus) भी कहलाती है। सर्जी (Sergi) ने योराफ्रिकन तथा डिक्सन (Dixon) ने उसे कैस्पियन भी कहा है। इसमें हलके भूरे से पीले और कालापन लिये हुए तथा श्वेत तक सम्मिलित हैं। इन सब में घुँघराले बालों की प्रवृत्ति मिलती है। यह मुख्यतः, यूरोप, उत्तरी अफ्रीका, निकट-पूर्वी प्रदेश, पश्चिमी मध्य एशिया तथा दक्षिण-पूर्वी भारत में मिलती है। न्यूजीलैण्ड के पालीने-शियन तथा मावरीज मुख्यतः इसी प्रकार के हैं। हमारी राय में ऐस्कीमो निवासियों में उसी वंशक्रम का आधारभूत तत्त्व मिलता है। यह पूर्व की ओर मिश्रित रूप में पूर्वी एशिया के मंचुओं में मिलती है। उत्तरी-पूर्वी अमेरिण्ड निवासियों में भी कुछ काके-सायड तत्त्व मिलते थे।

कारक (Factor)

कीटाणुकोश में एक पदार्थ का नाम जिससे कि कीटाणुकोश में विशिष्ट गुण विकसित होता है जैसा कि बौनेपन के विपरीत लम्बापन है। ए० डी० डर्बीशायर (A. D. Derbyshire), ब्रीडिंग एण्ड दि मेण्डेलियन डिस्कवरी, लन्दन, १९१३, पृष्ठ २७६। सदैव नहीं परन्तु साधारणतया मेण्डल का प्रारम्भिक शब्द कहा जाता है जो कि बाद में पित्र्यक (जीन्स) कहलाया है।

कीटाणु कोश (Germ Cell)

जन्यु (gametes गैमीट) को ही कहते हैं।

केल्टिक जाति (Keltic Race)

एटलाण्टिक जाति देखिए।

केल्टिक (Celtic)

केल्टिक लोगों की सेण्टम आर्यभाषाओं, संस्कृति तथा राष्ट्रीयताओं से सम्बन्धित जो कि प्रारम्भ में सम्भवतः नार्डिक अथवा मुख्यतः नार्डिक लोग थे। ये पहले मध्य यूरोप में थे परन्तु अब उनके तत्त्व यूरोप के उत्तर-पश्चिम तटीय भागों में स्काटलैण्ड के गाल्स (Gauls, Erse) मैन्क्स (Manx), वेल्स निवासी, कार्नवालनिवासी तथा ब्रिटेनी (Brittany) के लोगों में मिलते हैं। इन सभी में कुछ अन्य जातीय तत्त्व भी हैं जिनको उन्होंने आत्मसात् कर लिया है।

केशों का रंग (Hair colour)

डा० बेडो (Dr. Beddoe) ने ब्रिटिश बालों के रंग के महत्त्वपूर्ण विवेचन में

निम्न केशों के रंग को लिया—

लाल; साफ अथवा हलका भूरा; भूरा; काला अथवा गहरा भूरा; काला;

अवश्य ही, साफ़ रंग को स्वर्ण केशों से पृथक रखना चाहिए। स्वर्ण केश सुनहले या भूरापन लिये सुनहले हों। प्लैटिनम ब्लैण्ड वे है जो कि श्वेतता लिये पीले हों।

केशों का आकार (Hair-form)

केशों के आकार को निम्न प्रकार में विभाजित किया गया है—

ऊर्ण केश (Ulotrichi)—छल्लेदार केश (Frizzy hair)। अफ्रीका मे नीग्रो, बैन्टू, बुशमैन, नेग्रिल्लो तथा एशिया एवं मैलेनेशिया (Melanesia) में नेग्रिटो लोगों में मिलते हैं।

स्निग्ध केश (Leiotrichi)—सीधे केश। मध्य तथा उत्तरी एशिया एवं अमेरिका के आदिवासियों में देख पड़ते हैं।

निजीर केश (Cymotrichi)—लहरदार केश वाले (Wavy haired)—(अ) आस्ट्रालायड (Australoid), (आ) जापान के एनस (Ainus), (इ) पोलीनेसिया निवासी तथा (ई) मुख्य काकेसायड लोग सम्मिलित है।

कैस्पियन (Caspian)

स्व० प्रोफेसर रोनाल्ड डिक्सन तथा ग्रिफिथ टेलर (Prof. Ronald Dixon and Griffith Taylor) ने काकेसायड के लिए इस शब्द का प्रयोग किया है।

गौर वर्ण, स्वर्ण केश (Blond)

स्वर्ण केशों वाले काकेसायड, नार्डिक तथा पूर्वी बाल्टिक (Caucasoids, Nordic and East Baltic) वालों से अभिप्राय है।

ग्रथन तथा अलगाव (Coupling and repulsion)

यह वैसा ही है जैसा कि ग्रथन (Linkage), देखो 'ग्रथित गुण।'

ग्रथित गुण (Linked characters)

ये सदैव एक साथ मिलते है तथा उसी एक ही पित्र्यसूत्र (Chromosome) पर स्थित होने के कारण ग्रथित होते है।

लिंगग्रथन (Sex Linkage) और अलिंग-सूत्रसम्बन्धी ग्रथन (Autosomal Linkage) देखिए।

घुंघराले बाल (curly hair)

यह लहरवाले बालों का उन्नत प्रकार है और कभी कभी छल्लेदार बालों (frizzy hairs) के संकरण से ये मिलते है।

चितकबरा भेड़ का बच्चा (Roan)

माता-पिता के रंगों के बीच का रंग जो कि पशुओं तथा घोड़ों में मिलता है और अपूर्ण प्रभाविता का फल है। नीले एंडालूसियन कुक्कुट में नीला रंग उसी के समान है। उदाहरण के लिए लाल पशु की उत्पत्ति लाल तथा सफेद पशु के संकरण से होती है।

चिपट नासा (Platyrrhine)

नासा, नाक देखिये।

छल्लेदार बाल (Frizzy hair)

केशों का आकार देखिये।

छल्लेदार केश (Wooly hair)

यह कभी-कभी छल्लेदार (frizzy hair) केशों के लिए प्रयुक्त होता है। केश-आकार देखिए।

जन्यु (Gametes)

नर अथवा मादा का प्रजनन-कोश जो कि शारीरिक कोशों की भाँति पित्र्यसूत्रों की आधी संख्या से बनता है।

जाति (Race)

किसी किस्म का एक सचेतन या जीविज (आरगैनिक) उपविभाग, जिसके सम्पूर्ण सदस्य उन्हीं पूर्वजों से तथा रक्त से सम्बन्धित, समान जातीय गुणवाले पूर्वजों के ही गुणवाले होते हैं तथा उद्विकास के कारण होनेवाले परिवर्तन ही उनमें होते हैं।

इस प्रकार से काकेसायड वर्ग की नार्डिक, मेडिटेरेनियन तथा एटलान्टिक, ये तीन जातियाँ हैं।

जातिकशिका (Ethnomonads)

इस शब्द का प्रयोग इस पुस्तक में यूनीजेन (Unigen) के साथ साथ, जिसे कुछ लोग जातीय एकक कहते हैं उस अर्थ में किया गया है। यह 'एथनास' और 'मोरास' से लिया गया है, जिनका अर्थ क्रमशः लोग तथा एकक है।

उदाहरण के लिए फीजी-निवासी अथवा आइस-लैण्डनिवासी, जाति-कशिका (ethnomonadic) हैं जो कि काफी समान, अन्तः प्रसूत तथा स्थिर जनसंख्या वाले हैं। ये, उदाहरण के लिए, मैक्सिको निवासियों से भिन्न हैं।

जाति-विज्ञान (Raciology)

जाति-विज्ञान (Ethnology) देखिए।

जाति-विज्ञान (Ethnology)

संस्कृति से सम्बन्धित मनुष्य का सम्पूर्ण तुलनात्मक अध्ययन, उसके प्रकारों (जातियों) तथा संस्कृतियों को (जैसे लोग और राष्ट्र) ध्यान में रखते हुए।

जाति-वृत्त (Ethnography)

कभी-कभी जाति-वृत्त का प्रयोग जातिविज्ञान (ethnology) के अर्थ में ही किया जाता है परन्तु हमने उसका प्रयोग जातिविशेष, या विशिष्ट देश के निवासियों अथवा क्षेत्र-विशेष के वर्णनात्मक अर्थ में किया है। प्राक्कथन देखिए।

जातीय शास्त्र (Racial Science)

जाति-विज्ञान (Ethnology) देखिए।

जातीय एकक (Ethnic unit)

किसी समूह के लिए जो कि न जाति और न अभिजाति है परन्तु जिसमें कि अन्तः-प्रसवन अथवा अपने व्यक्तियों की कुछ समान उत्पत्ति द्वारा जननिक स्थिरता मिलती है, जैसे पुराने राष्ट्रीय समूह, जैसे यहूदी अथवा आयरिश, इंग्लिश, स्पेनिश इत्यादि हैं।

जातीयवाद, जातित्ववाद (Racialism)

जाति-विज्ञान अथवा जातीय शास्त्र पर आधारित बतलाये गये मत और राजनीतिक दर्शन—परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है, यह जातिविज्ञान के कुछ पहलुओं की केवल एक संक्षिप्त व्याख्या है।

जुड़वाँ, एक-युग्मिक (Twins, monozygotic)

समान जुड़वों के लिए प्रयुक्त।

जुड़वाँ, भाई-सम्बन्धी (twins, fraternal)

जुड़वाँ जो कि समान अथवा युग्मैकगुणी नहीं है।

जुड़वाँ, समान (Twins, identical)

एक ही अण्डे से उत्पन्न जुड़वाँ हैं; कभी कभी युग्मैकगुणी कहलाते हैं।

जैन्थस (Xanthous)

हलके के अर्थ में। परन्तु कभी-कभी अस्पष्ट रूप में मंगलायड अथवा पीतवर्ण अथवा मंगोलायड जातियों के लिए इसका प्रयोग होता है। (ए० सी० हेडन के दि स्टडी आफ़ मैन, १८९८, पृष्ठ ७४ देखिए)

जैन्थोक्रोइक (Xanthocroic)

यह उत्तरी यूरोप के 'अतिश्वेत', जैसे कि नार्डिक (Nordic) के लिए आता है।

ट्युटानिक (Teutonic)

उन जर्मन तथा गोथिक लोगों की आर्य भाषाओं, संस्कृतियों तथा राष्ट्रीयता सम्बन्धी, जो कि मूल रूप में नार्डिक (Nordic) अथवा मुख्यतः नार्डिक थे और अब उत्तर-पश्चिमी अथवा मध्य यूरोप में स्थित हैं। भाषा की दृष्टि से ये स्कैन्डिनेवियन या गोथेनिक, नार्वेजियन, डेनिश, स्वीडिश तथा आइसलैन्डिक ऐंग्लो-सैक्सन तथा निचली जर्मन (इंगलिश तथा फ्रीजियन) और ऊँची जर्मन (जर्मन तथा डच) में विभाजित है।

डलार्नियन जाति (Dalarnian Race)

एटलान्टिक जाति देखिए।

डाइनारिक जाति (Dinaric Race)

वह जाति जो यूरोप के दक्षिण-पूर्वी पर्वतीय प्रदेशों में तथा मुख्यतः डाइनारिक आल्प्स (Dinaric Alps) से उत्तर-पूर्वी फ्रांस तक, दक्षिण-पश्चिमी बेल्जियम, जर्मनी तथा उत्तर में एबर्डीनशायर तक (जहाँ पर उसके चिन्ह आबादी में देखे जा सकते हैं), डेनमार्क में, कार्पेथियन में (Carpathians) और पश्चिम की ओर आल्प्स पहाड़ पर तथा स्विटजरलैण्ड में पायी जाती हैं। जर्मनी तथा आस्ट्रिया के बहुत से फ़ौजी परिवारों में इसकी विशेषताएँ मिलती हैं।

इस जाति के लोग लम्बे तथा गठीले बने होते हैं। साथ ही लम्बे से माध्यमिक चेहरा, लम्बी नाक, जो तथाकथित रोमनिवासियों की नाक से मिलती जुलती सी प्रतीत होती हो, छोटे कपाल, माध्यमिक से लम्बी काली आँखें तथा बालवाले मिलते हैं। जर्मनी तथा उत्तरी देशों के बहुत से प्रसंकर प्रकारों में बाल तथा आँखें हलके रंग की हैं।

डी० डी० (D. D.)—यह प्रभावशाली युग्मैकगुण का चिह्न है।

ड्रुसेज (Druses)

फिलस्तीन के लेबनान में एक वन्य जाति, जो कि जनसंख्या में कंजी आँखों तथा हल्के बालों के अनुपात के लिए प्रसिद्ध है। साधारणतया यह आक्रमणकारियों के कारण बतलायी जाती है परन्तु यह अधिकांशतः अरेमाइट्स (Aramites) के कारण हैं जो कि मिस्री यादगारों (monuments) को देखते हुए, अधिकांश में नार्डिक थे।

तद्‌यु-रूपी (Reversion)

दो प्रकारों के संकरण से तीसरे की उत्पत्ति को कहते हैं जो कि भूतकाल के इन दोनों के किसी पूर्वज का गुण लिये हो।

दीर्घ-कापालिक (Dolchocephalic)

कापालिक देशना (cephalic index) देखिये।

दीर्घ नासा (Leptorrhine)

नाकसम्बन्धी देशना देखिए।

द्वियुग्मिक जुड़वाँ (Dizygotic Twins)

भ्राता सम्बन्धी जुड़वाँ देखिये।

द्वैधीकरण (Duplex)

उन आँखों के लिए इसका प्रयोग होता है जिनमें कि आँख के तारे (iris) के आगे भूरे रंग की एक परत होती है जिससे नीले के स्थान पर दूसरे प्रकार की रंगीन आँखें मिलती हैं। एक अन्य अर्थ में भी इसका प्रयोग किया जाता है जब कि कहा जाता है कि किसी एक दिये हुए गुण के उत्पादन में पित्र्यक के भिन्नयुग्मिक जोड़े के दोनों पित्र्यकों से सम्बन्ध है।

नव-उपार्जित गुणवाद (Neo Lamarkism)

उपार्जित गुणवाद का पुनःकथन तथा पुनरुत्थान १९वीं शताब्दी में मुख्यतः अमेरिका में हुआ और वर्तमान समय में भी मुख्यतः अमेरिका तथा रूस में प्रचलित है।

नाकों के प्रकार (Nose types)

फ्रान्स के महान् मानवशास्त्री टोपीनर्ड (Topinard) ने अपने Elements de' 'Anthropologie Generale' में जो प्राचीन वर्गीकरण स्थापित किया वह आज भी उतना ही ठीक है। वह इस प्रकार है—

१. सीधी, समानान्तर आधार के साथ।
२. उद्बुज (convex) दबे हुए आधार के साथ।
३. गड्ढेदार अथवा उठे हुए आधार के साथ।
४. रोमन, ऊँची बँधी हुई अथवा बस्क (busque)।
५. टेढ़ी नाक (sinnous)।
६. चपटी नाक, चौड़ी मलेनेसियन प्रकार की।
७. सीधी, छोटी, चौड़ी नेग्रायड की भाँति।
८. चपटी, सीधे प्रकार, मंगलायड प्रकार की।

अधिक विस्तृत वर्गीकरण रूडोल्फ मार्टिन ने अपने (Lehrback der Anthropologie) में किया है।

नार्डिक (Nordic)

काकेसायड जाति की एक शाखा जो कि मुख्यतः उत्तरी सागर के चारों ओर स्थित है तथा ऊँचा कद, लम्बा-चेहरा, लम्बा और ऊंचा सिर, हलकी से माध्यमिक गठन, लम्बे से माध्यमिक, सकरी नाक, हलकी आँखें (नीली या धूसर), हल्के बाल (भूरे से सुनहले), हलकी त्वचा तथा लहरीले बाल आदि उसके कुछ गुण हैं।

नासा-आकारदेशना (Nasal form index)

इस देशना में नथुने के प्रकार के आधार पर वर्गीकरण किया जाता है जो कि आकृति से भिन्न है।

नासा की ऊँचाई (Nasal height)

इसमें जड़ के केन्द्र बिन्दु से कोण में मिलनेवाले उस बिन्दु तक की, जो कि ऊपर के ओठ तथा सेप्टम (septum) से बनता है, रेखा को नापा जाता है।

नासा आयाम (Nasal length)

नाक की जड़ से छोर तक नापने से मिलता है।

नासा की गहराई (Nasal depth)

यह नथुने के छोर से उपनथुने के बिन्दु तक नापने से मिलती है।

नासाविस्तार (Nasal Breadth)

नथुने की सबसे अधिक चौड़ाई को नापने से मिलता है।

नासादेशना (Nasal Index)

नाक के अनुपातों का एक-दूसरे से सम्बन्ध। जीवित मनुष्यों की नाक की चौड़ाई को १०० से गुणा करके ऊँचाई से भाग दिया जाता है।

क्रेनियल नथुने की देशना चौड़ाई को १०० से गुणा करके, ऊँचाई से भाग देकर निकाली जाती है।

देशनाएँ तीन विभागों में बाँटी जाती हैं, चाहे कपाल अथवा सिर में हों—

वर्ग	देशनाएं	
	सिर की	कपाल की
लेप्टरहाइन	–७०	–४७ अथवा ४८
मेसरहाइन	७०–८५	४७ से ५१ अथवा ५३
प्लेटिरहाइन	+८५	५१ + से ५३ + तक

निकाला हुआ (Extracted)

यह शब्द तद्‌गुणी भाव के लिए प्रयुक्त किया जाता है। उदाहरण के लिए A A का a a से संकरण किया जाता है, प्रथम पीढ़ी (Fi) Aa की होगी। जब उनमें अन्तः-प्रसवन होता है तब दूसरी पीढ़ी F^2 की सन्तति में A A २५ प्रतिशत, Aa ५० प्रतिशत तथा aa २५ प्रतिशत मिलेगा। यह A A तथा aa व्यक्ति सन्तति के प्रारम्भिक माता-पिता से तद्‌गुणी (थ्रोबेक) हैं और इसी लिए ये निकाले हुए A A तथा निकाले हुए aa हो जाते हैं।

निश्चयवाद, भौगोलिक (Geographic Determinism)

यह सिद्धान्त कि मनुष्य की संस्कृति तथा सभ्यता का, साथ ही उसके भौतिक प्रकारों का विकास भौगोलिक परिस्थिति द्वारा निश्चित होता है, बादवाले पहलू में यह जीवविज्ञान के उपार्जित गुणवाद सिद्धान्त का भौगोलिक रूप है।

'रुको और जाओ', निश्चयवाद को देखिये।

नीग्रेसेन्स की देशना (Index Negrescence)

इसका आविष्कार डा० जान बेडो (Dr. John Beddoe) ने किया है। यदि D = काले बाल वाला हो, R = लाल बालवाला, F = हल्के बालवाला, तब निम्न सूत्र बनता है—

$$D+2N-R-F \quad = \quad \text{देशना।}$$

पिंगल, असित केश (Brunets)

इसका, काले केशोंवाले काकेसायड (Caucasoids) से—मेडिटेरेनियन, अल्पाइन, डाइनारिक, आर्मेनायड, तथा अटलान्टिक से—अभिप्राय है।

यह शब्द साधारणतया काले केशों वाले मेलानायड तथा मंगोलायड (Melanoids and Mongoloids) के लिए प्रयुक्त नहीं किया जाता, क्योंकि उनके काले बाल भिन्न-जननिक उत्पत्ति के हैं।

पित्र्यसूत्र (Chromosome)

ये सूक्ष्म जन्तु हैं जिनकी जीवित पदार्थों की प्रत्येक जाति में बराबर संख्या मिलती है जो कि कोशों में मिलते हैं। शरीरकोशों में पित्र्यसूत्र जननकोशों अथवा कीटाणु-कोशों की अपेक्षा दुगुनी संख्या में मिलते हैं।

इनका यह नाम (अंग्रेजी) इसलिए रखा गया क्योंकि इनमें कुछ रंगों द्वारा रंगे जाने की क्षमता है (क्रोमो = रंग) जिसके कारण वे पहचाने जाते हैं तथा अणुवीक्षण यंत्र द्वारा उनका अध्ययन किया जा सकता है।

पूर्वी जाति (Eastern Race)

मेडिटेरेनियन जाति देखिए।

पूर्वी बाल्टिक (East Baltic)

पूर्वी बाल्टिक जाति, बाल्टिक सागर के पूर्व में पायी जाती है।

हालां कि उसका प्रभाव उक्त समुद्र के चारों ओर तथा सुदूर पूर्व और दक्षिण-पूर्व के लोगों तक में मिलता है।

यह अल्पाइन जाति (Alpine racc) से मिलती जुलती है, सिर्फ इसकी त्वचा का, बालों का तथा आँखों का रंग हलका होता है। बाल रूपहले हलके रंग के तथा आँखें बहुत हलकी, सूक्ष्म, नीली तथा भूरी होती हैं।

पृथक्करण (Segregation)

प्रथम पीढ़ी के प्रसंकरों (hybrids) में जब अन्तःप्रसवन होता है, जैसे कि A a (जो कि माता-पिता A A तथा a a से मिलता है और जिससे, २५ प्रतिशत A A, ५० प्रतिशत A a तथा २५ प्रतिशत a a की उत्पत्ति होती है, तो यह प्रारम्भिक माता-पिता के A A तथा a a गुणों का पृथक्करण कहलाता है।

पृथु कपाल (Brachycephalic)

कापालिक देशना (Cephalic indcx) देखिए।

पैलिओ एल्पाइन (Paleo Alpine)

कुछ मानव-भूवृत्तवेत्ताओं द्वारा अल्पाइन जाति के लिए इस शब्द का प्रयोग किया गया है, क्योंकि अल्पाइन शब्द वे मंगोलायड के लिए प्रयुक्त करते हैं।

ऐसे प्रयोगों को रोकना चाहिए क्योंकि इससे गड़बड़ी होती है, जब कि भली-भांति प्रचलित शब्द मौजूद हैं जो उनका प्रयोग दूसरे अर्थ में करते हैं।

पैनजेनेसिस (Pangenesis)

चार्ल्स डारविन ने पित्रागति की समस्या पर इस दृष्टिकोण से विचार किया कि बच्चों के कीटाणुकोशों में माता-पिता के गुण कैसे आ जाते हैं। उसने परिणाम निकाला कि प्रत्येक शरीरकोश से कुछ अंश अलग होकर कीटाणु कोश बनाते हैं।

इस प्रकार से यह मत, जिसको उसने पैनजेनेसिस (Pangenesis) कहा, उपार्जित गुणवाद के सिद्धान्त को, जो कि उपार्जित गुणों की पित्रागति में विश्वास करता है, अधिक बुद्धिसंगत बना देता है।

पैनेजैनेसिस, जैसा कि अब हम जानते हैं, पूर्णतया गलत था। गाल्टन द्वारा

नकारात्मक परिणाम निकलने पर तथा वीजमैन द्वारा उसके विरोध में जोरदार आवाज उठाने पर विद्वानों ने उसे अमान्य ठहरा दिया।

वीज़मैन ने बिलकुल विरोधी पक्ष लिया—यह नहीं कि शरीर के सचेतन अंग किस प्रकार कीटाणुकोशों को प्रभावित करते हैं, वरन् कीटाणुकोशों द्वारा शरीर के गुण किस प्रकार उत्पन्न होते हैं। मेन्डल के कार्य ने वीज़मैन का पूर्ण समर्थन किया और पैनजैनेसिस बिलकुल अस्वीकृत कर दिया गया।

प्रकार (Variety)

एक साधारण प्रकार की भिन्नता अथवा उपविभाग, जैसे कि किस्म या शाखा है। जैसे काकेसायड की एक किस्म मानी जाय तो उसको प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है, जो अर्थ-विस्तार में जाति से बड़े होंगे। प्रकार (Type) भी है।

प्रभावी (Dominant)

यह शब्द उन गुणों, कारकों अथवा पित्र्यकों (genes) के लिए प्रयुक्त होता है जो कि दो व्यक्तियों के संकरण से प्रथम पीढ़ी में प्रदर्शित होते हैं जिसमें केवल एक भिन्नयुग्म (allelomorph) पित्रागति से आता प्रतीत होता है तथा दूसरा या तो मिल जाता है अथवा अपसारी हो जाता है। इस प्रकार एक माता या पिता में से एक में A A प्रभावी पित्र्यक हैं तथा दूसरे में a a भिन्नयुग्म हैं, तब सन्तति A a होगी परन्तु केवल A के गुण समरूप में दिखलाई देंगे। इसलिए a का प्रभावी A है जो कि उसका अपसारी है।

प्राकृतिक चुनाव (Natural selection)

इस सिद्धान्त का प्रतिज्ञापन चार्ल्स डारविन ने किया है। संक्षेप में यह इस प्रकार बतलाया गया है—"वंशानुगति तथा परिवर्तन के कुछ सिद्धान्तों के साथ कार्य करते हुए अस्तित्व बनाये रखने के लिए प्रतियोगियों का युद्ध जिसके फलस्वरूप जातियाँ धीरे धीरे तथा लगातार बदलती रहती हैं।" आर० सी० पुनेट, एफ० आर० एस० मेन्डलिज्म, मैकमिलन एण्ड कम्पनी लिमिटेड, लन्दन, १९१९, पृष्ठ, १०

प्राणरस (Protoplasm), जीवद्रव्य

प्राणरस जीवन का आधार और जीवित कोशों का एक मुख्य भाग है।

फ, (F_1)—यह वह चिह्न है जो कि प्रथम पैतृक अथवा प्रसंकर पीढ़ी के लिए आता है। इसी तरह F_2, F_3 इत्यादि दूसरी तीसरी प्रसंकर पीढ़ी के लिए है।

फेनो-उग्रियन (Fenno-Ugrian)

फ़िनो उग्रियन लोगों की अनार्य (non-Aryan) भाषाओं, संस्कृतियों तथा

राष्ट्रीयताओं के लिए प्रयुक्त शब्द। इनमें ये लोग शामिल हैं—मध्य यूरोप में मगयार या हंगरीनिवासी, फ़िनलैण्ड के पश्चिमी फ़िन निवासी, बाल्टिक के फिन लोग, अथवा इथोनियानिवासी तथा लिवोनिया के लोग, दक्षिण-पूर्वी फिनलैण्ड के केरेलियन्स, पूर्वी फ़िन लोग अथवा उग्रियन तथा लेप लोग।

ये सब लोग मुख्यतः अथवा अंशतः काकेसायड हैं तथा हो सकता है कि भूतकाल में ये भाषाएँ गलती से तूरानिया अथवा मंगोल की समझी गयी थीं।

फैलिक (Faelic)

एटलान्टिक जाति (Atlantic Race) देखिए।

बहुमूत्रता (Diabetes Mellitus)

शरीर से सम्बन्धित असामान्य दशा परन्तु साथ ही वंशानुगत कारकों से भी सम्बन्धित।

भिन्नपित्र्यक (Diversigen)

इस पुस्तक में यह शब्द उन विजातीय जातिवैज्ञानिक एककों के लिए प्रयुक्त हुआ है जिनमें विभिन्न उत्पत्तियों के व्यक्ति सम्मिलित हैं जो एक समान भौगोलिक प्रदेश अथवा एक नये राजनीतिक एकक में कुछ ही दिन पूर्व एक दूसरे के साथ आये हैं। इन्होंने अन्तःप्रसवन आरम्भ किया अथवा एक ही विवाहक्षेत्र निर्धारित कर दिया जिससे कुछ समय बाद साधारण अन्तःप्रसवन होने लगेगा।

नये राष्ट्र तथा राज्य, जैसे कि नई दुनिया के हैं, जाति कशिका अथवा जातीय एककों (ethnic units) से भिन्न उन भिन्नपित्र्यक अथवा युग्मोभयगुण एकक के उदाहरण हैं जो प्राचीन समूह हैं तथा भली भांति अन्तःप्रसूत हैं और जिन प्रकारों का पुनः उत्पादन करते हैं उनके रूप में वे काफ़ी दृढ़ हैं तथा भिन्नपित्र्यक (diversigens) और अभिजाति (नस्ल) के मध्य में आते हैं।

इस शब्द का निर्माण लैटिन शब्द डाइवर्सी जेनेरिस (diversi generis) से करना पड़ा है जिसका अर्थ है विभिन्न वर्गों से आये हुए, क्योंकि साधारण अंग्रेजी शब्द विजात (mongrel), जिसका भी अर्थ वही है, बहुत से अन्य अप्रिय अर्थों में भी लिया जाता है जिनको इस शब्द के प्रयोग से मिश्रित नहीं करना चाहिए।

भिन्नयुग्म (Allelomorph)

(मेण्डल के) पित्रागति सिद्धान्त के जोड़े के गुणों में से एक। इसका विशेषण रूप 'भिन्न युग्मिक' उपयोगी है क्योंकि कथन में उसका प्रयोग जो इस प्रकार होता है कि गोल "गुण का सिकुड़े" गुण से वही सम्बन्ध है जो कि पित्रागति सिद्धान्त के जोड़े के

दोनों गुणों में से एक का दूसरे से होता है। उसे संक्षेप में इस प्रकार कह सकते हैं कि गोल सिकुड़े के प्रति भिन्नयुग्मिक है।

भौतिक मानवशास्त्र (Physical Ahthropology)

भौतिक रूप में मनुष्य का, उसके शरीर तथा ढाँचे की बनावट का तथा उसके सम्बन्धों का अध्ययन है।

मंगोलायड जातियाँ (Mongoloid Races)

मोटे काले बालोंवाले, पीली त्वचा के (अमेरिन्ड में लाल त्वचा के) चौड़े कपाल, आकृति चपटी, छोटे कदवाली जातियाँ, जिनके वितरण का केन्द्र पूर्वी मध्य एशिया है।

मध्य नासा (Mesorrhine)

नाकसम्बन्धी देशना देखिए।

माध्यमिक कापालिक (Mesaticephalic)

कापालिक देशना (Cephalic Index) देखिए।

माध्यमिक कापालिक (Mesocephalic)

उन सिरों का वर्णन है जो ऊँचाई-लम्बाई देशना अथवा ऊँचाई-चौड़ाई देशना के सम्बन्ध में माध्यमिक लम्बाई के हों।

मानव-भूगोल (Human-Geography)

परिस्थिति के सम्बन्ध में बिना जातियों में विभक्त मानव के सम्पूर्ण अध्ययन के तथा भौगोलिक परिस्थिति की दशाओं के प्रति उनकी क्रिया तथा परिस्थिति पर उनका प्रभाव है। इसलिए मानव भूगोल एक पारिस्थितिक अध्ययन है।

मानव-भूवृत्त (Anthropogeography)

मानव-भूवृत्त, मानव भूगोल (Human Geography) से इस बात में भिन्न है कि यह इस तथ्य के प्रति संकेत है कि समस्या पूर्णतया केवल परिस्थिति के सम्बन्ध में मनुष्य की ही नहीं है, परन्तु दो जातियों, उपजातियों, अभिजनन तथा जाति-वैज्ञानिक अन्य प्रकार के समूहों की भी है।

मानव-भूवृत्त, मानव-भूगोल की अपेक्षा अधिक वैज्ञानिक तथा सत्यतापूर्ण है।

मेडिटेरेनियन जाति (Mediterranean Race)

काकेसायड जातियों की एक छोटी किस्म, जो कि दो शाखाओं अथवा उपजातियों में मिलती है। पश्चिमी शाखा अथवा मुख्य भूमध्यसागरीय शाखा यूरोप तथा अफ्रीका के भूमध्यसागरीय तटों पर स्थित पायी जाती है। उसमें छोटा गठा कद, लम्बे कपाल

तथा चेहरे, काले केश और आँखें, लहरीले से लगाकर घुँघराले तक बाल, हलका पीत वर्ण, माध्यमिक ऊँचाई की बहुत कुछ सीधी नाक मिलती है।

इस जाति का पूर्वी भाग जिसे जर्मन लेखक पूर्वी जाति (Oriental Race) कहते हैं, मेडिटेरेनियन से पूर्व की ओर अरेबिया, ईराक और आगे तक फैला पाया जाता है।

मेलेनस (Melanous)

काली त्वचावाले।

मेलानायड जाति (Melanoid Race)

इसके अन्तर्गत ऊर्णकेश (ulotrichic) काले छल्लेदार बाल, काली तथा गहरी त्वचावाली जातियाँ आती हैं जो नेग्रायड, नेग्रियेटो (जिनमें कि नेग्रिल्लोज़ भी हैं) तथा आस्ट्रेलायड, सम्मिलित कहलाती हैं।

मेलानोक्रोइक(Melanochroic)

दक्षिणी यूरोप के कम गौर वर्णवालों—मेडिटेरेनियन, सेमाइट तथा हेमाइट—के लिए, साथ ही भारत के अधिक काले काकेसायड लोगों तथा मेडिटेरेनियनों के लिए भी इसका प्रयोग किया गया है।

यथाक्रमिक मिलन (Assortative Mating)

समान की अपने ही समान का साथ करने की प्रवृत्ति। यह पशुओं में साधारण क्रम है और मनुष्यों में भी प्रायः ऐसा ही मिलता है। मनुष्यों की जातिगत विभिन्नता को बनाये रखने में यह एक महत्त्वपूर्ण कारक है।

युग्म, युग्मक (Zygote)

दो कीटाणुकोशों अथवा जन्युओं (gametes) के योग से निर्मित एक पूर्ण अण्ड।

युग्मोभय गुणी (Heterozygot)

युग्मानेकगुणी, जन्युओं का योग है और यह उन माता-पिता से मिलता है जो कि उसमें असमान कारकों का पारेषण करते हैं जिनमें से एक अपसारी (recessive) तथा दूसरा प्रभावी (dominant) होता है।

युग्मक (Zygote) अथवा युग्मैकगुणी (homozygote) देखिए।

"DR" चिन्ह का प्रयोग युग्मानेकगुणी कोश अथवा जन्यु का अर्थ व्यक्त करने के लिए किया गया है।

युग्मैकगुण (Homozygote)

युग्मैकगुण, जन्युओं का योग है जो उन माता पिता से मिलता है जो कि उसमें

समान कारकों का पारेषण करते हैं जिनमें से दोनों प्रभावी अथवा अपसारी हो सकते हैं।

DD चिन्ह एक युग्मैकगुणी को प्रदर्शित करता है। गुण दोनों माता-पिता से पित्रागत तथा प्रभावी हैं।

RR चिन्ह एक युग्मैकगुणी को प्रदर्शित करता है जिसके गुण दोनों माता-पिता से पित्रागत तथा अपसारी हैं।

यूनीजेन (**एकपित्र्यक**, Unigen)

इस पुस्तक में जाति के एकक अथवा जाति-कणिका (etnnomonad) के अर्थ में इसका प्रयोग किया गया है जिसका अर्थ भिन्नपित्र्यक (diversigen) के विपरीत है। उनका तात्पर्य अन्तःप्रसावित व्यक्तियों के प्राचीन जातीय समूह से है जिन्होंने यथाक्रमिक मिलन, आकस्मिक चुनाव, जननिक परिवर्तन तथा प्राकृतिक चुनाव, इनमें एक-एक अथवा कई की संयुक्त क्रिया द्वारा करीब एक नये प्रकार की उत्पत्ति की है।

जितनी समानता भिन्नपित्र्यक (diversigen) में है, उससे इसमें बहुत अधिक समानता है। इसमें नस्ल से कम तथा जाति से और भी कम समानता मिलती है।

यहूदियों के अन्तःप्रसवन तथा उनमें आर्मीनायड गुणों के कुछ हद तक मिलने के कारण उनकी राष्ट्रीयता को यूनीजेन कहना उचित होगा।

कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि यूनीजेन पूर्णतया एक ही जाति से निर्मित होता है। उस अवस्था में वह एक उपजाति होगा और न वह शुद्ध नस्ल की इस दशा को पहुँच सका है जिसे जातीय नस्ल कहा जाय। परन्तु इस तथ्य पर जोर देना आवश्यक है कि कुछ प्राचीन जातिवैज्ञानिक समूह हैं जिनको विजात (mongrel) कहकर हम टाल नहीं सकते तथा जिनमें जनसंख्या के अधिकांश व्यक्तियों में प्रकार की कोई समानता नहीं होती।

यूरेफ्रिकन जाति (Eurafrican Race)

यह शब्द प्रोफेसर जीसेप सर्जी ने (Prof. Giuseppe Sergi) मेडिटेरेनियन जाति (Mediterranean Race) के लिए प्रयुक्त किया है परन्तु इसका सम्पूर्ण काकेसायड जाति के लिए भी प्रयोग किया गया है।

रुधिरसम्बन्धी (Erythrism)

रटिलिज्म (Rutilism) अथवा लाल बाल।

रासेनविशेनशैफ्ट (Rassenwissenshaft)

जातीय-शास्त्र (जातिविज्ञान) के लिए जर्मन शब्द।

राशेनकुन्ते (Rassenkunte)

रासेनविशेनशैफ्ट (Rasscnwissenshaft) देखिए।

राष्ट्रवाद (Nationalism)

जातित्ववाद (रेशलिज्म) का दूसरा रूप, जो कि राष्ट्र को वही अथवा वैसे ही गुण प्रदान करता है जो कि जातित्ववाद जाति को। इस प्रकार जर्मनी में नात्सी राज्य की अधीनता में राष्ट्रवाद तथा जातित्ववाद वास्तव में अभिन्न थे।

राष्ट्रीयता (Nationality)

यह शब्द एक राष्ट्र होने को प्रकट करता है जो कि एक राजनीतिक अथवा सामाजिक समूहन है जो जातिसम्बन्धी अन्तःस्थित प्रवृत्ति को सूचित करता है। यह अन्तः प्रवृत्ति यथाक्रमिक मिलन से भी प्रकट होती है जिसमें यह विश्वास करने की इच्छा सम्मिलित रहती है कि कोई समूह, जिससे किसी व्यक्ति का सम्बन्ध होता है, एक ही उत्पत्ति का है, या नही तो अपने सभी सदस्यों से सम्बन्धित है अथवा जो किसी न किसी प्रकार अपने प्रकार के लोगों से सम्बद्ध रहने की इच्छा को व्यक्त करता है, जिससे उसके सभी सदस्यों में अधिकार और कर्तव्य की भावना आ जाती है।

एक समान नाम रखने से, जैसे फ्रान्सीसी, जर्मन, अमेरिकन, राष्ट्रीयता का सिद्धान्त सम्भव हो सका। कभी कभी इसका निर्माण समान भाषा होने तथा हमारे समय में एक राज्य के रूप में समान राजनीतिक संघ द्वारा हो सका है, जहाँ पर सरहद के भीतर रहनेवालों में समान नागरिकता के कारण समान बन्धन की उत्पत्ति हुई।

पारिवारिक समूहो अथवा झुन्डों में रहना जातिसम्बन्धी अन्तःप्रवृत्ति का दूसरा रूप है।

वास्तव में यह शब्द लैटिन के नैस्कर (Nascor) से आया है जिसका अर्थ 'उत्पत्ति' है, तब उसे रक्त के रिश्ते से सम्बन्धित होना चाहिए तथा इसी लिए यह जाति ('रेस') के बराबर होगा। इसमें सन्देह नहीं कि, चाहे गलत ही क्यों न हो पर प्राचीन काल के लोगों ने राष्ट्र को जाति के भाव में लिया, क्योंकि बहुधा राष्ट्रीयता को बतलाने के लिए समान पूर्वजों की बात कही जाती थी। परन्तु आज इसी शब्द का ऐसा प्रयोग किया जाता है जिसमें जातिसम्बन्धी कोई वस्तु नही आती, चाहे किसी राष्ट्र के सदस्य अर्ध चेतन रूप से उसे जातीय शक्ति की भावना से युक्त बनाने का प्रयत्न क्यों न करें। जैसा कि हमने बतलाया है, जातीय अन्तःप्रसवन तथा पृथक्करण की सचेतन अन्तः-प्रवृत्ति का यह दूसरा रूप है। परिणामतः जाति के लिए इसका प्रयोग नहीं होना चाहिए।

रुको और जाओ निश्चयवाद (Stop and go determinism)

वर्तमान भौगोलिक निश्चयवाद का प्रोफेसर ग्रिफिथ टेलर द्वारा पुनर्कथन (भौगोलिक निश्चयवाद देखिए)। वास्तव में यह उपार्जित गुणवादी विचारों के भौगोलिक निश्चयवाद का त्याग है (अध्याय १५ देखिए)।

लहरदार केश (wavy hair)

केश आकार देखिए।

लघुकपालिक (platycephalic)

उन सिरों का वर्णन है जो कि ऊँचाई लम्बाई देशना अथवा ऊंचाई-चौड़ाई देशना से नीचे हैं।

लिंग-ग्रथन (Sex Linkage)

जब कि गुण एक ही लिंग पित्र्यसूत्रों में मिलते हैं।

अलिंग सूत्र ग्रथन (Autosomal Linkage) देखिए।

लिंग-पित्र्यसूत्र (Sex-Chromosomes)

ये X X तथा X Y पित्र्यसूत्र हैं तथा ये प्रजननकोशों (reproductive cells) में मिलते हैं और निषेचन (fertilisation) होने पर संयोजनों के अनुसार सन्तति का लिंग निर्धारित होता है।

लेथो-लिथुआनियन (Letho-Lithuanian)

लिथुआनिया तथा लैटविया (अब रूस के अन्तर्गत) के बाल्टिक राज्यों की आर्य भाषा, संस्कृति तथा राष्ट्रीयता से अर्थ है।

लैटिन अथवा रोमैन्स (Latin or Romance)

यह रोमेन्स (Romance) लोगों की सेण्टम् आर्य जाति भाषाओं, संस्कृतियों तथा राष्ट्रवादिता को प्रकट करता है, जो कि प्रारम्भ में शायद नार्डिक थे परन्तु अब उनमें मेडिटेरेनियन, अल्पाइन, एटलान्टिक जातीय सन्ततियाँ शामिल हैं जो इटली, फ्रान्स, स्विटजरलैण्ड, स्पेन, पुर्तगाल में निवास करती हैं तथा पूर्व में रूमानिया के पृथु कपालिक (brachycephalic) लोग भी सम्मिलित हैं।

वर्ग (stock)

अभिजनन- (नस्ल) या प्रसवन-समूह के लिए प्रयुक्त साधारण शब्द, जैसे किस्में, किस्मों का भेद, जाति या जाति का उपविभाग अथवा अनिश्चित जातीय समूह, जैसे कि ब्रिटिश अथवा फ्रान्सीसी वर्ग।

वृहत् कापालिक (Hypsicephalic)

यह वे सिर हैं जो कि ऊँचाई-लम्बाई देशना अथवा ऊँचाई-चौड़ाई देशना के सम्बन्ध में ऊँचे है।

समान जुड़वें (Identitical Twins)

जुड़वाँ देखिए।

सम्भववाद (Possibilism)

भूगोलवेत्ताओं का एक सिद्धान्त जो निश्चयवाद के विरुद्ध है। उनका विश्वास है कि भूगोल द्वारा ही कुछ विकास सम्भव है परन्तु भगोल बाध्य नही करता।

समानता का गुणांक (Coefficiemt of Likeness)

मनुष्यों में समानता का सांख्यिकीय मूल्याक 10 कोई समानता नही तथा I दो व्यक्तियों में पूर्ण समानता का प्रदर्शन करता है। इस प्रकार से माता-पिता और बच्चों में तथा भाइयों में यह ·५ है।

सांस्कृतिक मानवशास्त्र (Cultural Anthropology)

इसमें मनुष्य की कला, दस्तकारी, प्राविधिक विज्ञान तथा भाषा सम्मिलित है।

साइजोफ्रेनिया (Schizophrenia)

अस्वस्थ मानसिक अवस्था, साधारण मानसिक अव्यवस्था, कभी कभी डेमेन्शिया प्रेकाक्स कहलाती है जो कि प्रारम्भिक प्रकार का पागलपन है।

साधारण (Simplex)

आँखों के लिए प्रयुक्त शब्द, द्वैधीकरण (duplex) आँखो के विपरीत। साधारणतया, साधारण आँखें नीली अथवा धूसर (ग्रे) होती है परन्तु द्वैधीकरण में माध्यमिक से भूरी तक मिलती हैं।

साधारण आँखें वह है जिनमें भूरा रंग (चमकीला पदार्थ— chromatin) आँख के तारे (iris) के ऊपरी भाग में नही होता।

इस शब्द का प्रयोग उस समय भी किया जाता है जब कि यह कहा जाता है कि द्वैधीकरण (duplex) से भिन्न किसी गुण की उत्पत्ति में भिन्नयुग्मिक पित्र्यकों के जोड़े में से एक का सम्बन्ध है।

सादृश्य (concordance)

किसी दी हुई जनसंख्या में किसी जाति के विशिष्ट जातीय गुणों में एक से अधिक मिलने पर इसका प्रयोग होता है।

इस प्रकार यदि हम कहें कि पूर्वी ऐंग्लिया (East Anglia) में बाल, आँख, त्वचा, कपाल और कद आदि जातीय गुणों की समानता है, तो यह जानते हुए कि जन-संख्या पूर्णतया नार्डिक है, इसका अर्थ होगा कि अधिकांश लोगों के स्वर्ण केश, कंजी आँखें तथा त्वचा, लम्बा कपाल और लम्बा कद होगा—जो सब नार्डिक जाति के गुण हैं। यदि बाल काले हों तब ये लोग असदृश होंगे।

सीधे केश (straight hair)

केशों के आकार को देखिए।

सेमेटिक (Semitic)

मानव का एक भाषावार तथा सांस्कृतिक विभाग जिसके अन्दर असीरिया, फोनीशिया, सीरिया (शाम), हीब्रू, अरामेइक, कनानान्टिश (Cananantish) तथा आजकल की अरेबिया की भाषाएँ सम्मिलित हैं। इस वर्गीकरण में मेडिटेरेनियन जाति के पूर्वी भाग की जातियाँ सम्मिलित हैं।

सूखा रोग (Rickets)

विटामिन डी (Vitamin D) की कमी से उत्पन्न दशा जो वंशानुगति के आधार पर भी होती है।

सूत्रभाजन (Mitosis)

शरीरकोश के सभी पित्र्यसूत्रों का, उनका दो कोशों में विभाजन होने के पूर्व, समान भागों में अलग होना सूत्रभाजन है।

इस प्रकार, उदाहरण के लिए चार पित्र्यसूत्र वाले शारीरिक कोश में ये लम्बाई में बँट जाते हैं और आठ अर्ध पित्र्यसूत्र बनकर चार पित्र्यसूत्रों के दो जोड़े हो जाते हैं जो कि प्रारम्भिक कोश से बने इन दो नये कोशों की न्यष्टि बन जाते हैं।

इस क्रिया को सूत्र भाजन कहते हैं। इसे अर्धसूत्रण न समझ लेना चाहिए।

स्लाविक अथवा स्लावोनिक (Slavic or Slavonic)

साटेम-आर्य (Satem-Arya) भाषाओं सम्बन्धी स्लावोनिक लोगों की संस्कृति तथा राष्ट्रीयता—जिसमें पोल्स, स्लोवाक्स, स्लोविनीज, रूदेनियन्स, सर्बस, वेन्डस, मान्टेनेग्रियन्स, बल्गारियन्स, युक्रेनियन तथा अनेक रोमन समूह सम्मिलित हैं।

शरीरसम्बन्धी कोश (Somatic Cells)

सोमा (Soma) या बाडी (body) शरीर शब्द से लिया गया है जिसका अर्थ शारीरिक कोश, कीटाणु कोश (germ cells) से भिन्न है।

इनमें प्रजननकोशों की भाँति पित्र्यसूत्रों की संख्या दुगुनी है।

शुद्ध (Pure)

जातियों, नस्लों तथा व्यक्तियों के लिए प्रयोग किया जाता है जो आपस में अन्तः-प्रसवन होने पर अपने ही समान सन्तति उत्पन्न करते हैं।

श्वेतता (Albinism), **धवलांगता**

त्वचा, बाल तथा आँखों में रंग की कमी जो कि सभी जातियो में हो सकती है। यह एक रोगसम्बन्धी दशा है जो कि जननिक प्रकार से पारेषित होती है।

श्वेत जातियाँ (White races)

काकेसायड जातियों के लिए प्रयुक्त शब्द।

हथेली का उभरा भाग (Thenar eminence)

अँगूठे के नीचे हथेली का उभरा भाग।

हथेली का बायाँ ऊंचा भाग (Hypothenar-eminence)

घूँसे का उभरा भाग।

हेलेन-इलीरियन (Helene Illyrian)

यूनान की आर्य भाषाओं, संस्कृतियों तथा राष्ट्रीयता से सम्बन्धित।

होमो मंगोलिकस (Homo Mongolicus)

मंगोलायड जाति के लिए प्रयोग किया गया शब्द।

होमो एनाटिकस (Homo Anaticus)

मंगोलायड जाति Mongloid Race) के लिए प्रयोग किया गया शब्द।

होमो यूरोपीयस (Homo Europaeus)

काकेसायड जातियों (Caucasoids) के लिए प्रयोग किया गया शब्द।

होमो एफ्रीकानस (Homo Africanus)

नेग्रायड जाति (Negroid) के लिए प्रयोग किया गया शब्द।

हेमिटिक (Hamitic)

मानव का एक भाषावार तथा सांस्कृतिक विभाग, जिसमें ऐसी भाषावाले सम्मिलित हैं जैसे प्राचीन मिस्र की तथा उत्तरी अफ्रीका की, तब की और अब की बर्बर भाषाएं। यह भाषा बोलनेवाले लोग तब और अब भी जातीय वर्गीकरण में मेडिटेरेनियन प्रकार से हेमिटिक (Hamitic) तक से भिन्न हैं। हम उन्हें जाति वैज्ञानिक दृष्टि से कुछ मेलानायड (Melanoid) रक्त के साथ मेडिटेरेनियन मानते है।

पारिभाषिक शब्द-सूची

अंत: प्रसवन inbreeding
अंत: प्रसूत inbred
अणुजीव micro-organism
अतिजीवन survival
अतिजीवन का युद्ध struggle for survival
अतिमानव superman
अधिरक्त स्राव haemaphila
अनुभवजन्य empirical
अपसारी* recessive
अभिजनन* breeding
अभिवर्ण* chromatin, रंजितक
अभिजाति breed, दे० सन्तति
अर्धसूत्रण* meiosis
अवबोध conception
अवरोक्त latter
आधारक matrix (क्षेत्रवस्तु)
आनुवंशिकी genetics, दे० जननिक-शास्त्र
आप्रवासित, आप्रवासी immigrant
आवृत्ति (बारम्बारता) frequency
उत्परिवर्तन* mutation
उत्प्रवासन emigration
उत्प्रवासी emigrant
उद्विकास evolution, उद्भव
उपजाति sub-race; species दे० 'किस्म'
उपधारणा postulate
उपरिचर्म epidermis
उपार्जित गुणवाद* Lamarkism
ऊतक tissue, तन्तु
एक – अंडक – दे० एकयुग्मिक
एकक unit
एकपित्र्यक* unigen
एकयुग्मिक*monozygotic
"जोड़वाँ"* monozygotic twins
एकसंकर monohybrid
कापालिक देशना Cephalic index
कारक factoı,घटक; पित्र्यक*
किस्म species (उपजाति)
कीटाणुकोश gamete जन्यु
कोश (कोशिका) cell
कोशद्रव्य cytoplasm
क्ष-रश्मि X-ray
गलग्रंथि thyroid
गुणांक coefficient (गुणक)
ग्रथन linkage (सहवर्त्तिता)
ग्रथित गुण* linked characters
घात power, विस्तारचिह्न
चमकीला पदार्थ – दे० 'रंजितक'
चुनाव की बंधुता elective affinity
चिपटनासा* platyrrhine
जनकबीज, जनकबिंदु – दे० 'पित्र्यक'
जननग्रंथि gonad
जनन-विद्या genetics
जननिक जातिविज्ञान genetic ethnology
जननिक परिवर्तन genetic drift
जननिक विद्या,-शास्त्र genetics
जन्यव gametic
जन्यु gamete
जातिकशिका* Ethnomonads
जातिगत (जातीय) racial
जातित्ववाद* racialism
जातिविज्ञान* (प्रजातिविज्ञान) ethnology

जातिवृत्त ethnography
जातिसंकरण race-crossing
जातीय प्रकार ethnic type
जातीय शास्त्र* racial science,
दे० जातिविज्ञान
जीवमितीय biometrical
जीवविज्ञान biology
जीवन-विस्तार life span
जीविज organic
जुड़वाँ* twins
जुड़वाँ, समान या एकरूपधारी identical twins
जुड़वाँ, साधारण ordinary twins
डिम्ब (स्त्रीबीज) ovum
तत्संकरण back crossing
तद्गुणी throw back
त्रिसंकर trihybrid
दीर्घ कपाल* dolichocephal
दुर्जननिक dysgenic
देशना index
देशान्तर-गमन migration
दो अंडक dizygotic
द्विसंकर dihybrid
धवलांग* albino, श्वेत
नवउपार्जित गुणवाद* Neo-Lamarkism
नस्ल breed (अभिजाति)
निचर्म dermis
निश्चयवाद* determinism
निषेकहीन डिम्ब ovule
निषेचन fertilization
न्यष्टि nucleus
पदचिन्ह सदृश – दे० 'लुप्तप्राय पंख'
निर्वंश जीवशास्त्र palaeontology
पदार्थ वैज्ञानिक, – शास्त्रज्ञ naturalist
परिकल्पना hypothesis
परिस्थितिवाद environmentalism
परिस्थितिवादी environment list
पाटलक rosetted गुलाबरंग-रंजित
पारेषण transmission
पित्रागति inheritance
पित्रागति नियम (सिद्धान्त) Mendalism
पित्र्यक (जनकबिंदु) gene
पित्र्यसूत्र* Chromosome
पुराजाति विज्ञान Palaeo-Ethnology
पुरापाषाण काल palaeolithic
पुरासात्विकी विभाग Palaeontology
पूर्वावयव premises (प्रतिज्ञावाक्य)
पृथक्करण* segregation (विसंयोजन)
पृथु कपाल* brachycephalic
पोष्य बालक foster child
प्रकृतिवादी naturalist (पदार्थ शास्त्रज्ञ)
प्रक्रिया mechanism
प्रजनन reproduction
प्रतिज्ञा वाक्य premises (पूर्वावयव)
प्रतिष्ठित साहित्य classical literature
प्रभावी* dominant
प्रवसन migration
प्रसंकर hybrid
प्रसंकर शक्ति hybrid vigour
प्रसंकरोर्जा heterosis (प्रसंकर शक्ति)
प्राकृतिक चुनाव* natural selection
प्राकृतिक शास्त्र natural science
प्राणरस* protoplasm जीवद्रव्य, आदि-जीवरस
प्राणिशास्त्री Zoologist
प्रादेशिक पृथक्करण regional segregation
प्राविधिक technical
बंधुता का सम्बन्ध affinity
बहुकोशीय mulit-cellular
बहुयुग्म – दे० भिन्नयुग्म
बाह्यसमरूप phenotype
भिन्नपित्र्यक* diversigen
भिन्नयुग्म* allelomorph (बहुयुग्म)
भिन्नयुग्मिक पित्र्यक allelomorphic genes
भिन्नरूप idiotype
भूदृश्य landscape

भौगोलिक निश्चयवादी geographical determinist
मध्य मान mean
मानव ईक्षीय anthroposcopical
मानव भूवृत्त* Anthropo-geography
मानव विज्ञान Anthropology
मुख्य वर्ग genus, प्रवर्ग
मूलजाति समूह stock, मूलवंश
युग्मक, युग्मकोश Zygote
युग्मानेक गुण (विषम युग्मीय) heterozygous
युग्मैक गुण* (समयुग्मिक) homozygous
रंजितक Chromatin (दे० अभिवर्ण*)
राष्ट्रवाद* Nationalism
रुको और जाओ निश्चयवाद* Stop and go determinism
रूप-वर्णनात्मक morphological
लघु-इंद्रिय क्रिया hypofunctioning
लघु कपालिक* platycephalic
लम्ब वृत्त loop (गांठ)
लामार्कवाद Lamarkism, उपार्जित गुणवाद
लिंग ग्रथन* sex linkage
लिंग पित्र्यसूत्र sex chromosomes
लुप्तप्राय पंख vestivigial wing
वंशक्रम pedigree
वंशानुगति heredity
वन्य जाति tribe
वर्ग stock (मूलवंश, मूलजातिसमूह)
विकिरण radiation
विजात समूह mongrel collection
विद्युदणु electron
विभासन irradiation (रश्मीकरण)
व्यत्यसन crossing over
शरीर सूत्र विभाजन metosis, सूत्रभाजन
संकरज cross-breed
संकरण cross-breeding
संतति strain, दे० अभिजाति
संतुलित जाति-समूह unigen
संपरीक्षण experiment
संभववाद* possibilism
संयोजन combination
सबन्धुता kinship
सपितृक, समातृक बच्चे sibling समान माता या समान पिता के बच्चे
समजात, समांग homogeneous
समजातता, समजातित्व homogeneity
समविभाजन metosis दे० शरीर सूत्र विभाजन
समपित्र्यक genotype
समयुग्मिक homozygous
समरूपता homogenity
समान जुड़वाँ identical twins
समान माता पिता के बच्चे sibling
सुजननिक विज्ञान, सुजननविद्या eugenics
सूत्रभाजन* mitosis
स्थूल चरण club foot
हथेली का उभरा भाग thenar eminence
हिमनदी glacier

[नोट—तारकांकित शब्दों की व्याख्या 'शब्द-व्याख्या' में देखिए।]